संसार और समाधि

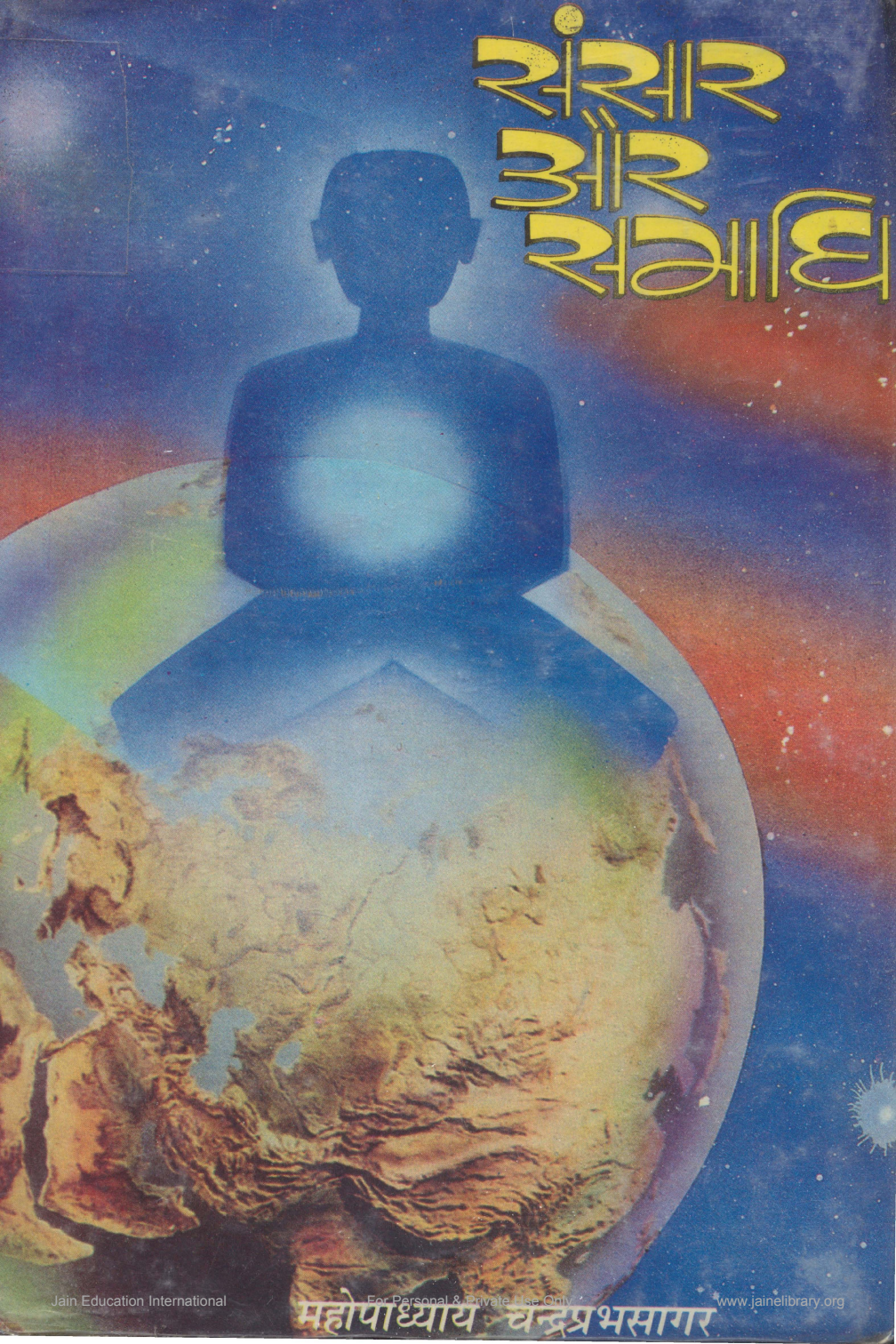

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर

संसार और समाधि

महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर

श्री जितयशाश्री फाउंडेशन, कलकत्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसार और समाधि : चन्द्रप्रभ

सौजन्य
श्रीमती राजकुमारी जी इन्द्रचन्द जी भंसाली की
पुण्य स्मृति में
श्री कौशलकुमार, अशोककुमार भंसाली, दिल्ली

प्रकाशक
श्री जितयशाश्री फाउंडेशन,
9 सी, एस्प्लानेड रो (ईस्ट)
कलकत्ता-600069

प्रथम-संस्करण :
जनवरी, 1991

कम्प्यूटर-टाईप
तीसरा-प्रहर, जोधपुर

मुद्रक :
श्रीराम प्रिंटर्स, दिल्ली

मूल्य : 15/-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसार और समाधि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नवीनतम प्रकाशन

- जीवन-यात्रा
- मैं तो तेरे पास में
- अधर में लटका अध्यात्म
- ज्योति जले बिन बाती
- महाजीवन की खोज
- प्याले में तूफान
- मैं कौन हूँ ?
- समाधि की छांह
- देह में देहातीत
- प्रार्थना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसार और समाधि
चन्द्रप्रभ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रवेश से पूर्व

घुटन भरी जिन्दगी में शान्ति की तलाश हमारी आवश्यकता है । ध्यान जीवन के अभिशप्त-अन्धे गलियारों में रोशनी की चन्दन-सी बौछार है । इस सिलसिले में हमारा मार्गदर्शन कर रहे हैं – जीवन-सर्जक महोपाध्याय श्री चन्द्रप्रभसागर ।

श्री चन्द्रप्रभ चैतन्य के शिखर हैं । उनके वक्तव्य जीवन के लिए हैं, सम्बोधि और समाधि के लिए हैं । प्रस्तुत पुस्तक 'संसार और समाधि' उन्हीं के अमृत वचनों का संकलन है ।

श्री चन्द्रप्रभ ने संसार को अपनी दृष्टि से निहारा है और उसके रहस्यों को भरपूर उघाड़ा है । उनके अनुसार संसार अपने-आप में पूर्ण है । हर प्रलय के बाद भी संसार अपने अस्तित्व में रहेगा । हमारे लिए वह संसार क्षणभंगुर, बन्धनकर और कष्टकर है, जिसका निर्माण स्वयं हमने/हमारे मन ने किया है । हमें चाहिये कि हम आरोपित-प्रत्यारोपित संसार के प्रति जगें और कमल की पंखुड़ियों की तरह उससे ऊपर उठें ।

अतिक्रमण के परिवेश में जीने वालों को शान्ति और समाधि के लिए ध्यान में डूबना चाहिये । इससे न केवल जीवन का अनुशासन बनेगा, अपितु जीवन का आनन्द भी आत्मसात होगा । ध्यान हमारे वैयक्तिक जीवन में चैतन्य के फूल को समग्रता से खिला सकता है । चेतना का परम रूप से खिलना ही परमात्मा से साक्षात्कार है । श्री चन्द्रप्रभ के ऐसे विचार पुस्तक में खुलकर आएं हैं । चाहे इन्हें सुनो या पढ़ो; जीवन और विचारों में एक नई क्रान्ति मुखर हो उठती है । निश्चय ही श्री चन्द्रप्रभ ने जीवन को जीया है, उसे मथा है और वह स्वस्थ शैली अर्जित की है जिसकी आम आदमी को जरूरत है । आइये, हम प्रवेश करें उनके अमृत वचनों में, संसार से समाधि में ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

	विषय	पृष्ठ
1.	यह जटिल संसार क्या है ?	1
2.	ऐसा है संसार	15
3.	मैं : सम्मोहन के दायरे में	26
4.	जहर घुले परिवेश में	38
5.	क्षणभंगुरता का आकर्षण	46
6.	व्यर्थ का फैलाव	56
7.	लाभ से लोभ की ओर	66
8.	आँख दो : रोशनी एक	78
9.	महत्त्व दें आत्म-मूल्यों को	93
10.	आइये, करें जीवन-कल्प	98
11.	घुटन का आत्म-समर्पण	105
12.	स्वयं के मार्ग में	111
13.	चलें, मन-के-पार	121
14.	दस्तक शून्य के द्वार पर	129
15.	ध्यानः स्वयं के आर-पार	137
16.	यह है विशुद्धि का मार्ग	142
17.	करें चैतन्य-दर्शन	148
18.	समाधि की छाँह में	153

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

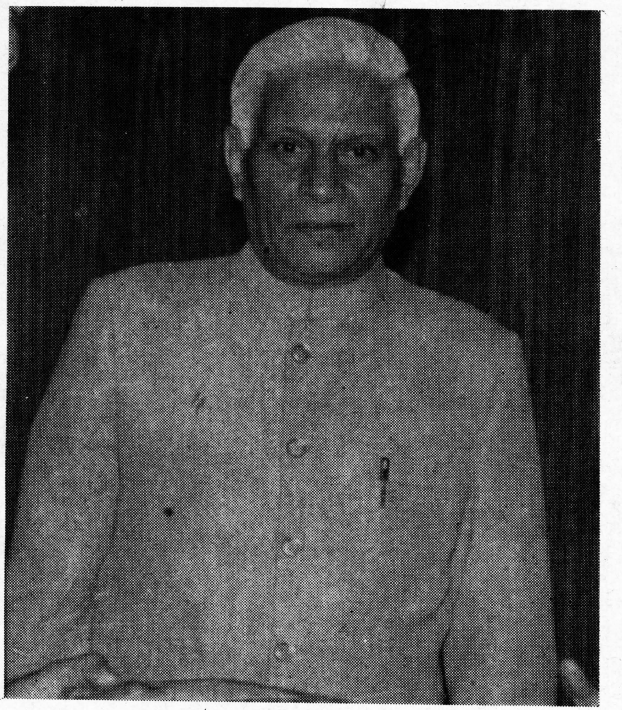

स्व० श्री इन्द्र चन्द जी भंसाली

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह जटिल संसार क्या है?

यह जटिल संसार क्या है?
डूबते मरुधार में नर के लिए पतवार क्या है?
जो सताये जा रहा उस देव का मनुहार क्या है?
है नहीं कुछ सार जिसमें देह से फिर प्यार क्या है?
टीस जो दबती नहीं उस दर्द का उपचार क्या है?
जो भुलावे में पड़ा उसका भला उद्धार क्या है?
संधि जिससे हो गई उस शत्रु का प्रतिकार क्या है?
इस तरफ तो प्यार है उस पार का आधार क्या है?
है स्वजन इस पार में उस पार में परिवार क्या है?
कौन जाने स्वर्ग में नर के लिए अधिकार क्या है?
है नहीं कुछ सार इसमें तो वहां का सार क्या है?
क्या बता सकते वहां के लोग का व्यवहार क्या है?

यह गीत एक प्रश्न-माला है। ये प्रश्न एक दिन मेरे मन के किसी कोने से उपजे थे। जिस कोने से प्रश्न उपजे थे, उसी के बगल वाले कोने से जवाब भी मिले थे।

प्रश्न और उत्तर एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं, जुड़वे बच्चे हैं। आईने में हम झांकते हैं, तो जो झलक दिखाई देती है, वही तो उत्तर होता है हमारे जीवन का। आईने के सामने सारी समस्याओं का हल मिलता है। आईना समस्या नहीं है, समस्या तो जीवन है। आईना पहेली नहीं है, पहेली तो संसार है।

प्रश्न और उत्तर वास्तव में बिम्ब-प्रतिबिम्ब हैं। संसार एक प्रश्न है और आईना उसका उत्तर। जैसा प्रश्न वैसा उत्तर। एक इंच भी फर्क नहीं पड़ता। चित्रकार फर्क डाल सकता है, फोटोग्राफर भी फर्क कर देता है, पर आईना तो हूबहू पेश करता है। इसलिए जो व्यक्ति अपने आपको जानने समझने में कुछ कठिनाई महसूस करता है, वह आईने को जरूर अपनाए। आईना हमारी प्रतिकृति है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसीलिए तो रोजाना आइने में स्वयं को निहारते हैं। सुबह उठे, आईना देखा। नहाए, तो आईना देखा। बाल संवारे, तो आईना देखा। और घर से तो जितनी बार निकले, उतनी ही बार आईने में स्वयं को देखा। आईने में देख लिया तो परीक्षा हो गई। कहीं कुछ बेठीक नहीं होना चाहिए। इसलिए आईने को अपना लेते हैं। आईना स्वयं की मन-पसन्दगी के साथ स्वयं को निहारने-परखने का उपाय है। जैसे सोने की परख के लिए कसौटी है वैसे ही खुद की परख के लिए आईना है।

आईना तो सभी देखते हैं। बे-ठीक भी देखते हैं और ठीक भी। आंखों वाला ही मात्र आइने में नहीं देखता, काना भी देखता है। कारण हर आदमी अपने को खूबसूरत-से-खूबसूरत पेश करना चाहता है। इस दिखाऊगिरी के मंच पर काले, गोरे, गेहुंएं, राते, काने, लूले, निहत्थे, अमीर, गरीब—सभी शामिल हैं।

व्यक्ति स्वयं को संसार के सामने एक विशिष्ट व्यक्तित्व के रूप में पेश करना चाहता है। व्यक्ति की यह महत्त्वाकांक्षा कोई बहुत बुरी नहीं है। यह बात नहीं है कि केवल सिकन्दर को ही महत्त्वाकांक्षा थी, डायोजनीज को भी थी। फर्कदोनों के सोचने-करने के रास्तों में था। आकांक्षा उड़ान है और महत् अहंकार है।

आम आदमी आईने में स्वयं को झांकता है, और जो उससे कुछ विशिष्ट है, वह संसार में स्वयं को झांकता है। जिनकी जिंदादिली उन दोनों से भी ऊंची है, वह स्वयं में स्वयं को झांकता है।

व्यक्ति झांक-झांककर ही स्वयं की या संसार की ध्रुवता-क्षणभंगुरता के पाठ पढ़ता है। झांकना संसार की पाठशाला की पहली कक्षा है। झांकने का मतलब है किसी चीज को उत्सुकता के साथ कुछ क्षण के लिए देखना। वैसे झांकने में और देखने में फर्कहै। झांकना बहुत थोड़ी देर में होता है और देखना तो बहुत समय का भी हो सकता है।

जब झांकना सोचने के साथ जुड़ जाता है, तो परिणाम मिल जाता है। जो पहले देखता है, झांकता है, बाद में सोचता है, विचारता है, वह सही ज्ञान पा रहा है। उनका अनुभव स्वयं के लिए सही होगा। शास्त्र में न भी मिले उसके विचार, पर वह स्वयं ही जन्माएगा स्वयं का शास्त्र। यों ही तो रचे गये हैं सारे शास्त्र। सामर्थ्य से बढ़कर कोई शास्त्र नहीं है। शास्त्र मर्यादा बखानते हैं। मर्यादा हमेशा सार्वजनिक रूप से बनाई जाती है। सामर्थ्य व्यक्तिगत है। वह आत्म-जागरण है। शास्ता का सामर्थ्य ही अनुशासन की मर्यादा में शास्त्र है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसार का परिदर्शन गहराई से करने के बाद ही किसी ने उसकी अध्रुवता और भंगुरता के गीत गाये होंगे। संसार को गहराई से झांकते समय उसे अपने विचारों को कसौटी पर कसते हुए ही यह विचार उठा होगा—'यह जटिल संसार क्या है?'

संसार के प्रति यह एक जिज्ञासा है। यह शास्त्र नहीं है, वरन् व्यक्ति के चिन्तन-केन्द्र में होने वाले उथल पुथल की एक अभिव्यक्ति है।

संसार वह है, जहां संसरण होता है, हलन-चलन होती है। संसरण यानी सरकना। संसरण को समझने के लिए आप अपनी चाल को समझ लें। आप चलते हैं दो पैरों के सहारे। आगे कदम बढ़ाने के लिए पीछे का कदम उठाना होगा। जो कदम पीछे था, वह आगे हो गया और जो आगे था, वह पीछे हो गया। कदम का आगे बढ़ना जन्म है और पीछे छूटना मृत्यु है। इन दो कदमों के बीच ही, जन्म और मृत्यु के बीच ही यह शरीर है, यह जीवन है।

यह चलना शाश्वत नहीं है। जैसे चलना अध्रुव है, अशाश्वत है, अस्थिर है, वैसे ही है यह संसार। संसार एक संसरणशील चाल है। यहां हर पल उथल-पुथल-हलचल मची रहती है। इसीलिए तो संसार को समुन्दर की उपमा दी जाती है। वह क्यों? क्या समुन्दर संसार की तरह पापी है? पुण्यात्मा है? नहीं, समुन्दर संसार की तरह ही संसरणशील है। वह लहरों में सरकता है। भाप भी वही है, बादल भी वही है, बारिस भी वही है। सागर की तरह ही है संसार। इसलिए दोनों को एक दूसरे की उपमा दी जाती है।

मुझे संसार के बारे में कोई बहुत गहनतम अनुभव नहीं है। क्योंकि मैं सांसारिक नहीं हूं। मैंने अपना कोई संसार बसाया नहीं। इसलिए मैं सांसारिक नहीं हूं। पर किसी और के बसाये-बनाये संसार में मैं रहा हूं। पक्षी आखिर जनमता तो किसी-न-किसी नीड़ में ही है। वह नीड़ ही तो संसार है। इस नाते संसार में कोई प्राणी ऐसा नहीं है, जो यह कह सके कि संसार के बारे में वह कुछ नहीं जानता। वह जानता तो है, पर मुकरता है। यों करके व्यक्ति वास्तव में अपनी जन्म-घटना को झुठला रहा है।

हकीकत तो यह है कि संसार की कहानी जितनी एक वैरागी को मालुम होती है, उतनी किसी रागी को नहीं। रागी तो एक घर की कहानी जानता है और वैरागी घर-घर की। मुझे ही ले लीजिये। रोजाना कितने लोगों से मुझे मिलना पड़ता है। हजारों घरों में तो मैं जा आया हूं और हजारों लोगों ने मुझे अपनी-अपनी मनोगाथाएं सुनाई हैं। मैं भी लोगों को सान्त्वना तो देता हूं, पर सान्त्वना का रहस्य भी मैं जानता हूं। सान्त्वना पाकर लोग चले जाते है, पर मेरा मन गुनगुनाता है—'यह जटिल संसार क्या है?'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक बार कपिल मुनि से चोरों का पाला पड़ गया। चोर आये लूटने, पर मुनि के पास लुंटवाने को क्या मिलेगा। चोरों के लिए वह रीता पात्र है। और जो चीजें मुनि के पास थीं सच्चाई और अचौर्य की, सो चोरों के कोई काम की नहीं थी। चोरों के लिए मुनि निर्धन की कुटिया है।

मुनि का तो काम ही दूसरों को उपदेश देना है। कपिल मुनि भी चोरों को देने लग गये उपदेश। आजकल का बाजारू उपदेश देना तो उन्हें आता नहीं था। वो तो गाने लगे—

अधुवे असासयम्मि, संसारम्मि दुक्ख पउराए।
किं नाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाहं दुग्गइं न गच्छेज्जा।।

चोरों ने कपिल का यह संगान सुना तो वे अवाक् रह गये। उन्होंने इसे बारीकी से सुना। ध्यानपूर्वक, मनोयोगपूर्वक सुना। पता नहीं, मुनि के शब्दों में क्या ताकत थी कि उनके शब्दों ने चोरों के दिल की सोयी वीणा का तार-तार झंकृत कर दिया। चोरों को लगा कि यह संगान जीवन का ध्रुव सत्य है। अब वे चोर नहीं रहे। चोर के वेश में उनके जीवन के क्षितिज में भोर हो गया था। वेश चोर का, पर अन्तस् मुनित्व के आयोजन में। चोर भी गाने लगे—

अधुवे असासयम्मि, संसारम्मि दुक्ख पराउए।
किं नाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाहं दुग्गइं न गच्छेज्जा।।

वे भर उठे अहोभाव से। यह अधूरा गीत ही परमात्मा की महागीता को निमंत्रण था। दम गीत में नहीं होता, दम होता है, अहोभाव में, उन संस्कारों में जो किन्हीं गंवारु शब्दों से भी जग सकता है। बुद्ध को जो चीज पंडित न दे पाए उसे पनिहारिनों ने दे दिया। चोर न सुधर सकेजेलों की यंत्रणा से। वे सुधरे सत्य की जिज्ञासा से, सत्य की सम्बोधि से, दीप के सम्पर्कसे।

चोरों को लगा ये दो वाक्य कोरे नहीं हैं। यह महागीता है। गीता को जन्माने के लिए केवल कृष्ण ही नहीं चाहिए, अर्जुन भी चाहिये। यह गाथा जीवन की जिज्ञासा है।

अर्जुन-सी स्थिति बनी हुई है। अर्जुन युद्ध के मैदान में खड़ा है और चोर घर में। अर्जुन के सामने कृष्ण है और चोरों के सामने कपिल। कृष्ण अर्जुन को प्रभावित करते हैं और कपिल चोरों को। फर्कयही है कि अर्जुन युद्ध करने के लिए अपने कदम बढ़ा देता है, जबकि चोर अपने कदम पीछे खिसका लेते हैं चोरी के मार्ग से।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चोर अपने घुटने जमीन पर टेके, हाथ फैलाये, आकश की ओर मुंह किये हैं। वे पूछ रहे हैं प्रभो! यह संसार अध्रुव है, अशाश्वत है। इस संसार में हम ऐसा कौन सा कर्म करें, जिससे हम दुर्गति में न जाएं। हे प्रभो! हमने जान लिया है इस संसार को। यहाँ हमने बहुत लूटपाट की, भोग भोगा, पर वे सब दुःख-दर्द के चाबुक साबित हुए। यहां सिवा दुःख के कुछ नहीं मिला। फूल मिलने से पहले भी कांटे हाथ लगे। फूल पाने के बाद भी कांटे मिले। स्वर्ग की कल्पनाएँ बनायीं, पर मिला नरक ही। सुख के फूल हाथ लगते-लगते कांटे बन गये। आखिर, सुख के बादल कितनी देर रहेंगे। उमड़े, बरसे और खो गये। आकाश फिर नंगा-का-नंगा हो गया। जीवन में आखिर दुःख के अलावा मिलता ही क्या है। सुख सिर पर अखबारी छाँह है। दुःख तो चरम है। दुःख संसार का एक परम सत्य है, आर्य सत्य है।

एक बात पक्की है कि जीवन से चाहे सुख मिले या दुःख, पर हैं सभी क्षणभंगुर। कभी धूप, कभी छांह। कभी दिन, कभी रात। मौसम की तरह बदलता है यहां सब कुछ। आप युगों की सोचते हैं। मैं तो कहता हूं हर पल नया युग है। संसार में सब कुछ नया है, हर पल बदला हुआ है। जो हैं, वे खतम होते चले जा रहे हैं। जो नहीं हैं वे आते चले जा रहे हैं। इसलिए संसार के सभी धर्मशास्त्रों का सार यही समझें कि इस समय जो तुम्हारे पास है, वह खतम हो जायेगा। सुख है तो सुख और दुःख है तो दुःख। सब बीत जायेंगे। लहरों की तरह हर कोई अनित्य है।

इसे यों समझें, एक बार एक राजा ने अपने प्रदेश के सभी बुद्धिमानों को बुलाया। राजा ने कहा, मुझे जीवन में अपनाने के लिए एक सूत्र चाहिये। वह ऐसा सूत्र हो, जिसके सामने दुनिया भर के सारे सूत्र और सारे ग्रन्थ बौने हों पर वह सूत्र स्वयं सबसे छोटा हो। उस एक सूत्र में दुनिया के सारे सूत्र आ जाने चाहिये।

बुद्धिमानों ने अपने-अपने शास्त्रों से एक-एक सूत्र चुनकर राजा को दिया। पर राजा को कोई सूत्र जचा नहीं। बड़ी झंझट खड़ी हो गई। राजा की जिज्ञासा अनसुलझी पहेली बन गई। राजा को सूत्र चाहिये। और किसी बुद्धिमान का बताया सूत्र राजा को दमदार न लगा।

आखिर एक बुड्ढे सलाहकार ने राजा को सलाह दी, राजन्! अपनी राज्य-सीमा के बाहर एक सन्त फकीर रहता है। वह बड़ा औलिया और फक्कड़ सन्त है। उसकी प्रज्ञा सधी हुई है, बुद्धत्व उसकी लालिमा है। उसने शास्त्र न पढ़े हों, पर उसकी बातें बड़े-बड़े शास्त्रों से ऊपर हैं। मैं तो कहूंगा आप इस मामले में एक बार उस साधु से जरूर मिलें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा साधु से मिला। राजा लोग या बड़े-बड़े नेता लोग साधुओं से यूं ही नहीं मिलते। मिलने में जरूर कोई-न-कोई राज रहता है उन लोगों का। स्वार्थ से बढ़कर राज और क्या होगा? साधु से राजा का मिलना भी स्वार्थ-पूर्ति का एक रूप था।

साधु ने राजा की बात सुनी, उसकी बेचैनी को भी पहचाना, सूत्र पाने की जिज्ञासा भी उसे चरम लगी। साधु ने राजा के हाथ में सूत्र के नाम पर अपनी भुजा पर बंधा एक ताबीज दिया। कहा, इसे पहन लो। इस ताबीज में एक कागज का टुकड़ा है, जिस पर सूत्र लिखा है। यह सूत्र मेरे परमज्ञानी गुरु ने मुझे दिया था। मैं इसे तुम्हें दे रहा हूं, पर इसे अभी खोलकर मत पढ़ना। यह सूत्र जीवन की आत्यन्तिक अनुभूति है। इसका उपयोग तभी करना जब तुम्हें लगे कि तेरी जीवन-नैया अब डूबने के करीब है। जब तुम अपने आपको गहन दुःखी महसूस करो, जब तुम वेदना की आखिरी सीढ़ी पर चलने लगो, जब तुम स्वयं को बेसहारा और अकेला पाओ, उस समय इस ताबीज के सूत्र को पढ़ना। यों ही बिना किसी कारण इस सूत्र को पढ़ना बेकार है।

राजा ने साधु की बात मंजूर कर ली। राजा ताबीज को लिये महल में आया। उसकी कई बार इच्छा होती ताबीज में बंधे उस कागज के टुकड़े को पढ़ने की। मगर संत की कही बात याद आ जाने से वह ताबीज खोल नहीं पाता। वादा जो किया था।

पर किसी पड़ौसी राजा ने अप्रत्याशित हमला कर दिया। वह राजा हार गया। तो अपने घोड़े पर वह युद्ध के मैदान से भाग निकला और जंगल की तरफ अपना घोड़ा दौड़ाने लगा। राजा को भगाते देख दुश्मन उसका पीछा करने लगे। दौड़ते-दौड़ते सांझ पड़ गयी। अंधेरा छाने लगा। राजा अपने घोड़े को अभी भी दौड़ाये चला जा रहा है। उसे अपना पीछा करते हुए दुश्मन तो नहीं दिखाई दिये, पर घोड़ों की टापें तो सुनाई दे रही थीं। अचानक राजा ने पाया कि सामने जंगल का रास्त बंद हो गया। पीछे लौट नहीं सकता। कारण पीछे शत्रु है। आगे जा नहीं सकता। कारण सामने टेढ़ा खड़ा पत्थर है। चारों तरफ कंटीली भयंकर झाड़ियां। राजा एक पल के लिए हक्का-बक्का रह गया।

सहसा उसे याद आयी ताबीज की, उस गोपनीय यन्त्र की, उस बहुमूल्यवान् सूत्र की। उसने अपने-आपको उस स्थिति में पाया, जो उसे सन्त ने कही थी। उसने ताबीज खोला, कागज पढ़ा और एक लम्बी सांस छोड़ी। उसमें लिखा था— यह भी बीत जायेगा।

राजा को लगा, सूत्र सही है। राजा न रहा, राज्य चला गया। वैभव बीत गया। जब राज्य, सुख, वैभव सब चले गये, तो यह दुःख भी, यह आपत्ति भी इस सूत्र के अनुसार बीत जानी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये। राजा सोचने लगा, अब मैं क्या करूँ? करने को क्या रह गया। करते-करते तो आज की मुसीबत-भरी घड़ी आई है। अब तो जो हो रहा है, उसे देखना है। अब कर्त्ता नहीं, अब द्रष्टा बनकर खड़े रहना है।

सूत्र ने राजा की सारी उद्विग्नता को, मन की उथल-पुथल को समाप्त कर दिया। उसके मन के किसी कोने में सोयी वीणा के तार छिड़ पड़े। राजा को लगा, जो अब तक हुआ, वह मात्र एक सपने जैसा था। खरेखर सपना ही था।

संयोग की बात! घोड़ों की टापों की आवाज कम होती चली गयी। राजा को लगा कि दुश्मन और रास्ते से गुजर गये हैं। अब तो घोड़ों की आवाज बिल्कुल बंद हो गई। राजा ने चैन की सांस ली और गुनगुनाया—यह भी बीत गया।

करीब दो-तीन घंटे बाद राजा के मित्रजन उसे ढूंढते-ढूंढते वहां पहुंच गये। राजा ने अपनी शक्ति कुछ दिनों में ही वापस बटोर ली। दुश्मन पर हमला किया। उसे हराया, अपने राज्य से खदेड़ा। दुश्मन राज्य की बागडोर भी उसे मिल गयी। वह फिर से राजा बन गया, बड़ा राजा बन गया, सम्राट बन गया। चारों तरफ खुशियां छाई हुई थीं। राजा का चेहरा खुशी से फूला न समा रहा था। अचानक उसे अपनी आप-बीती कहानी की याद हो आयी। उसने फिर ताबीज खोला, पढा और उदास हो गया।

सारी सभा में सन्नाट छा गया। महाराज अचानक कैसे उदास हो गये, सभा ने राजा से कारण पूछा। राजा ने कहा, यह सूत्र—यह भी बीत जाएगा। कुछ दिन पहले मैं जिस पर गर्व करता था, वह बीत गया। जो विपदाएं आईं, वे टल गयीं। वापस राज्य-साम्राज्य-वैभव-सुख मिला, तो क्या ये भी नहीं बीतेंगे। यहां सब कुछ बीतता जा रहा है। न सुख है, न दुःख है। दोनों ही टिकाऊ नहीं हैं। इसलिए संसार में दुःख के कारण कैसा क्रन्दन, सुख के कारण कैसा आनंद, विजय का कैसा उल्लास, हार का कैसा धोखा, वैभव का कैसा दम्भ! इनमें से किसी में नित्यता नहीं है, थिरता नहीं है। यह छोटा-सा सूत्र संसार का सबसे बड़ा शास्त्र है, धर्मग्रन्थ है।

राजा तत्काल सिंहासन से खड़ा हुआ और जमीन पर घुटने टेककर गाने लगा—

अधुवे असासयम्मि, संसारम्मि दुक्ख पउराए।
किं नाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाहं दुग्गइं न गच्छेज्जा।।

इस अधुव, अशाश्वत, दुःख-बहुल संसार में ऐसा कौन-सा कर्म है, जिससे मैं दुर्गति में न जाऊं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शंकर की भाषा में—

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।
इह संसारे बहुदुस्तारे, कृपयापारे पाही मुरारे!

हे मुरारी! हे भगवान्! जहां बार-बार जन्म लेना है, बार-बार मरना है और बार-बार मां के गर्भ में सोना है, ऐसे इस 'बहुदस्तारे' बड़ी मुश्किल से पार किये जाने वाले संसार से मेरी रक्षा करो, मुझे पार लगाओ।

शंकर बारीक-बुद्धि सम्पन्न आचार्य हैं। संसार से तारने की प्रार्थना में संसार का स्केच भी खींच लिया है। शंकर ने संसार का स्वरूप आंका है। संसार क्या है, तो कहा-जहां बार-बार जन्म होता है, बार-बार मरण होता है, मां के गर्भ में बार-बार रहना पड़ता है। शंकर द्वारा बार-बार पुनरपि-पुनरपि कहना संसार की संसरणशीलता का ही परिचय देता है। इस संसरणशीलता का दूसरा चहेता नाम ही अध्रुवता है।

एक बात पक्की है कि संसार अध्रुव है, अशाश्वत है। सब कुछ प्रतिक्षण बदलता जा रहा है यहां। जैसे गिरगिट अपना रंग बदलता है, वैसे ही संसार का भी अपना रूप बदलता जा रहा है। दल-बदल करना संसार का निजी धर्म है। पानी में लकीर खींचो। कितनी देर रहेगी! खींचते-खींचते ही मिट जायेगी। ऐसा ही है संसार। पलक झपकते-झपकते ही संसार में बदलाहट आ जाती है। देखते-देखते ही आदमी लुढ़क पड़ता है।

जैनों ने तीन शब्द दिये हैं—आस्रव, संवर और निर्जरा। जैसे ये तीन बातें जीव के साथ लागू होती हैं, वैसे ही संसार के साथ भी। आस्रव यानी आना, संवर यानी रुकना और निर्जरा यानी हटना। इन तीनों को ही दूसरे शब्दों में जन्म, जीवन और मृत्यु कह सकते हैं। जन्म और मृत्यु के कारण जिन्दगी तो एक दिन ठुकराएगी ही। जिन्दगी तो बेवफा है। मृत्यु जिन्दगी की महबूबा है, जो साथ लेकर जाएगी। चाहे हंसते चलो, या रोते सुबकते, आखिर जाना तो है ही।

संसार में आये गीत गाने के लिए। गीत गाने के समान जुटाये। बाजे, यंत्र मंगवाये। जैसे ही गीत गाना शुरु किया कि विदाई की वेला आ गयी। संसार में जन्मे, उसी के साथ ही मृत्यु का आग्रह शुरु हो गया। सूर्य पूर्व में उगा, उसी के साथ पश्चिम की ओर रवाना हो चुका। जिंदगी का हर क्षण मौत के द्वार पर दस्तक है।

यह जीवन, यह शरीर अंजुलि में रहे हुए पानी के समान है। धीरे-धीरे रिसता है। बहुत जल्दी रीती हो जाती है यह अंजलि। बादलों में बिजली चमकती है। यह जीवन भी उसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बिजली की तरह है। बिजली चमकती है, चकाचौंध करती है और ओझल हो जाती है। जीवन भी ऐसा ही है। किसी से जुड़े, किसी से टूटे और पता भी नहीं चल पाता कि कब जीवन धराशायी हुआ। इसलिए सोचो, कहां है ध्रुवता, कहां है शाश्वतता। सबकुछ तो बिखरता चला जा रहा है, कोई खुदरा तो कोई थोक। कोई कण-कण तो कोई मन-मन।

लोग सोचते हैं यह धन-दौलत टिकाऊ है, थिर है। इसे ज्यादा से ज्यादा कमाया जाये। यों आदमी का सारा जीवन दौलत के जाल में उलझा रहता है। आदमी की दृष्टि में उसकी कीमत है। इसलिए वह उसे पाने में अपनी जिन्दगी खर्च कर देता है। दौलत के भार से दबकर वह अपने प्राण खो देता है। फिर दौलत का कोई भरोसा नहीं है। कब आयी और कब चली गई। अतः दौलत शाश्वत कहां है, सुखकर कहां है!

सोचते हैं मकान स्थायी रहेगा। इसलिए आदमी उसे अपनी मंजिल समझ लेता है। अपनत्व का उस पर आरोपण हो जाने के कारण व्यक्ति उसे अपनी अंतिम मंजिल मान बैठता है। मगर यह अन्तिम मुकाम कहां है!

शरीर को हम अपना समझते है, सोचते हैं कि यह तो अपने साथ रहेगा। मगर नहीं। यह शरीर भी एक दिन पीले पत्ते की तरह गिरने वाला है। हम परिजनों को भी अपना मानकर सोचते हैं कि ये मेरा हमेशा साथ देंगे। पर मरने के बाद वे ही हमारे शरीर पर कफन ओढ़ायेंगे और राम-राम सत है, कहते हुए हमें ले चल पड़ेंगे मरघट की ओर। पत्नी घर के दरवाजे तक पहुंचाती है। इसलिए सोचो अपने रिश्तों में छिपी क्षुद्रता को, अशाश्वतता को। कहां है यहां ध्रुवता! कुछ भी तो नहीं है ध्रुव-शाश्वत। समय बदलता जा रहा है। मनुष्य बदल रहे हैं। मां-बाप बदल रहे हैं। पत्नियां, बच्चे, मकान सब कुछ बदलते जा रहे हैं। आज जो मेरा बाप है कल वही मेरा बेटा हो सकता है। आज जो महल है कल वही खंडहर हो सकता है।

वास्तव में यह संसार सपने के समान है। अभी दिख रहा है। सपना आया, मुंह में लड्डू था। जैसे ही आंख खोली तो पाया कि मुंह खाली-का-खाली है। लड्डू खाने का सपना तो देखा, पर जब पेट को देखा तो आंखों से आंसू ढुलक पड़े। वह तो पाताल में बैठा था। संसार भी तो ऐसा ही है। सब अपने लगते हैं पर अपना कोई नहीं रह पाता। जीवन की देहरी पर बहुत बार यह जीवन एक धोखा लगता है, सूना-सूना लगता है। खाली-खाली, खोया-खोया लगता है। जिनका संसार से मोह है, वे संसार के जलने पर रोते है और जिनका संसार से मोह टूट गया वे स्वयं संसार को जलाकर निकल जाते है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कबीरा खड़ा बाजार में, लिये लकुटिया हाथ।
जो घर फूंके आपना, चले हमारे साथ।।

फूंको अपना मोह, मोह का घर। जिंदगी तो चार दिन की उधार है। बड़ी मुश्किल से यह उधार मिलती है। आरजू और इंतजारी में ही इसे मत बिताओ। जागो, दिन में बनाये सपनों से। सपनों में सरको मत। मजे की बात यह है कि यहां सपना हर कोई देखता है। संसार जन्म-जन्मान्तरों से जुड़ा है, तो सपना भी जुड़ा है। सारा संसार सपनों के रंग में भीगा है। उसका बीता हुआ समय भी एक सपना था। वर्तमान भी एक सपना है। भविष्य भी एक सपना होगा। सपने ही तो उसके भावी जीवन को मोड़ते है। एक बात पक्की है कि सपने आखिर नश्वर हैं। मुंदी आंखों का दर्शन है। चूंकि सपने नश्वर है, अतः यह सपनों का बना संसार भी नश्वर है।

बहुत से लोग सोये-सोये सपने देखते हैं, तो बहुत-से जगे-जगे। बहुत सारे लोग रात को सपना देखते हैं और बहक पड़ते है। मैंने अपने कई साथियों के साथ यों होते देखा है।

मेरा एक दोस्त रात को बहुत बहकता था। मैंने अपने एक अन्य साथी को पूछा, भाई! गिलास कहां है? उसी समय हमारे पास सोया वह दोस्त बहका, 'रेपिडेक्स इंगलिस स्पीकिंग कोर्स' में। हम सब हंस पड़े। वह दोस्त उस समय उसी की पढ़ाई किया करता था। अतः जब वह सपना देखेगा या बहकेगा, तो निश्चित ही वही मुख से निकलेगा।

इसीलिए मैंने कहा कि संसार को सपने की तरह देखो। संसार का मतलब है संसरण करना, गति करना। जन्म-मरण के चाक के सहारे गति करना। गति चालू रहती है, व्यक्ति कुछ दिनों की जिंदगी जीता है और खाली हाथ, हाथ पसारे चला जाता है। इस चार-दिन की जिंदगी में बहुत से आदमी अपनी चादर को उजली कर लेते हैं, तो बहुत से मैली। आखिर वही चादर ओढ़कर जाता है। कबीरा हो तो जैसी की तैसी धरि दीन्ही चदरिया कहते। हम तो बस कथरी पर ही गुमान कर रहे हैं।

माटी री आ काया, आखिर माटी में मिल जावे है।
क्यां रो गरव करे रे मनवा, क्यां पर तूं इतरावे है।
जिण तन ने मीठा माल खवा, तूं निशादिन पाळे पोसे है।
अपणे इक पेट री आग बुझावण, कित्तां रा मन रोसे है।
थोड़े जीणे रे खातिर क्यूं, भारी पाप कमावे है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आ सांसों रो विश्वास नहीं, कद आती-आती रुक जावे।
जीवण में झुकणों नहीं जाण्यो, बो जम रे आगे झुक जावे।
एक कदम तो उठग्यो दूजो, कुण जाणें उठ पावे है।
ओ तो चार दिनों रो चांदणियों, सुण फेर अंधेरी रातां है।
थारी छतड़ी सारी चूवे है, ऐ सावण री बरसातां है।
जो जागे है सो पावे है, जो सोवे सो पछतावे है।

यह देह तो माटी का ढेला है। माटी से उपजी है और जीवन-भर माटी को ही संजोती है। आखिर जाकर भी माटी में मिलती है। फिर किस बात का गर्व! शरीर का सम्मोहन क्यों? उससे प्राप्त होने वाले अनुभवों के साथ स्वयं का तादात्म्य क्यों?

देह तो हर समय दधकती है, जलती है। दधकना दुःख का परिचय-पत्र है, इसीलिए संसार में सारे जीव दधक रहे हैं, दुःख में सड़बड़ा रहे हैं। पर आदमी है ऐसा, जो दुःख को नकारता रहता है। पतंगा जानता है दीपक उसका मित्र नहीं, वरन काल-मुख है। फिर भी वह चकाचौंध के फाके में आकर दीपक की लौ में स्वयं को खतम कर देता है।

लोग साधना की पगडंडी पर बहुत जल्दी चढ़ जाते हैं। यह अच्छा जरुर है, पर यह चढ़ना किसी के बहकावे में आकर होता है। इसलिए उसकी साधना उसके लिए एक धोखा बन जाती है। पहले यह सोचें कि ऐसी क्या जरुरत है, जिसके कारण साधना करनी जरुरी हो गई है। बिना आवश्यकता के कोई काम करना ऊखल में सिर डालना है। साधना की पगडंडी पर कदम बढ़ाने से पहले कई भूमिकाओं से गुजरना पड़ता है।

जरा सोचें कि साधना क्यों की जा रही है! सुख पाने के लिए साधना कर रहे हैं न आप! पर पहले यह तो निश्चत हो जाये कि मैं दुःखी हूं। जीवन के अन्तरंग में, तार-तार में दुःख की अनुगूंज तो पहले पा लो। दुःख की अनुभूति हुई नहीं और सुख पाने के लिए निकल पड़े। अगर सुख मिल भी गया, तो आप पहचानेंगे कैसे कि यह सुख ही है। सुख की सही पहचान करने के लिए दुःख की सही पहचान अनिवार्य है।

कुछ दिन पहले मैं एक समारोह में निमंत्रित था। वहां कइयों ने प्रवचन-भाषण दिये। समारोह के बाद मैंने एक प्रवचनकार से पूछा, आपने शादी की? वे बोले, मैं बचपन में ही साधु बन गया। मैं तो ब्रह्मचारी हूं। तो मैंने पूछा, क्या आपके पिता भी साधु बने है? उन्होंने कहा, नहीं। वे अभी भी गृहस्थी में है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मैंने कहा, गुस्ताखी माफ करें आपने जो प्रवचन दिया, वह आम लोगों के लिए तो ठीक था। कृपया आप अपने पर उस प्रवचन को घटाएं। आपने नारी की निन्दा की, और उसे करने में कोई कमी नहीं छोड़ी। क्यों? क्या आपको अपनी व्यक्तिगत जिन्दगी में नारी के बारे में ऐसा कोई अनुभव है? बोले, नहीं।

मैंने कहा, आप जरा सोचिये कि पुरुष के लिए स्त्री ही मोक्ष में बाधा है तो स्त्री के लिए मोक्ष में क्या बाधा है! यदि मोक्ष में स्त्री बाधा है, तो यह दोष जितना स्त्री के माथे मंढता है, उतना ही पुरुष के माथे पर। हकीकत तो यह है कि पुरुषों ने ही स्त्री के मोक्ष में बाधाएँ डाली हैं। मेरी समझ से पुरुष के लिए मोक्ष में न तो स्त्री बाधा है, और न ही स्त्री के लिए पुरुष। स्त्री और पुरुष दोनों एक-दूसरे के विपरीत है और विपरीत के प्रति जो आकर्षण है, वही वास्तव में बाधा है।

जिस व्यक्ति को अनुभव है, वह तो उससे दूर नहीं हटा है और जो कभी नारी से प्राप्त होने वाले सुख-दुःख के पास ही नहीं फटका है, वह नारी का यों विरोध करे? आप जिस विषय पर इतना कुछ कह रहे हैं, उसका निजी जीवन में कुछ-न-कुछ तो अनुभव होना चाहिये। आप व्यक्ति को ब्रह्मचर्य की सुवास देना चाहते हैं, तो पहले उसे यह अनुभव होना चाहिये कि मैंने जो रास्ता अपना रखा है, वह दुःख का है। उसे अनुभव होना चाहिये कि काम-भोग दुःखकर है। पहले आदमी के दिमाग में यह तो बैठना चाहिये की रेत में से तेल नहीं निकलता। रेत में से तेल निकालना निरर्थक श्रम करना है। यह काम आखिर दुःख ही देगा।

बुद्ध ने इस गहराई को पहचाना। महावीर इस तथ्य की चरमसीमा तक गये। लोग कहते है जैनों के तीर्थङ्कर जन्म से ही ज्ञात-मनस्वी होते हैं, तो क्या उन्हें ज्ञान नहीं था कि कामभोग दुःखकर है? उन्होंने विवाह क्यों रचा? लोगों का सोचना वाजिब है। ज्ञान रहा होगा उन्हें, पर वह ज्ञान आम था, व्यक्तिगत नहीं था। व्यक्तिगत अनुभूति तो तब हुई जब वे दुःख देने वाले साधनों के गलियारों से गुजरे।

बुद्ध जन्म से ही असाधारण थे। बोध की झलकें उन्हें जन्म से ही प्राप्त थीं। पर दुःख की गहरी अनुभूति व्यक्तिगत है, निजी है। हमारे दुःख को हम जितना गहरा अनुभव कर सकते है, उतना और कोई नहीं। अनुभव निजी हुआ करते हैं।

बुद्ध ने शादी की, रोगी देखे, मुर्दे देखे, जर्जर काया देखी, गर्भवती महिलाओं को देखा। तब कहीं जाकर आखिर अभिनिष्क्रमण हुआ। महावीर और बुद्ध ने दुःखी जीवन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को गहराई से निहारा। वे परिचित थे स्वयं से जनमने वाले दुःखों से और दूसरों के दुखों से। यही कारण है कि उन्होंने दुःख की गहरी-से-गहरी चर्चाएं कीं।

नेहरु ने तो आरोप भी लगाया कि महावीर और बुद्ध ने भारत को दुःखवाद की बातें सुनाकर पंगु बनाया है। मेरी समझ से नेहरु गहराई तक नहीं गये।

मैं आपसे पूछता हूं कि आप डॉक्टर के पास जाते हैं तो क्या डॉक्टर आपसे यह पूछता है कि बोलो, तुम स्वस्थ हो? नहीं। डॉक्टर तो सीधा यही पूछता है कि बोलो, तुम्हें क्या बीमारी है? वह आपसे हाथ नहीं मिलाता, वह सीधा नाड़ी सम्हालता है। क्योंकि डॉक्टर का यही व्यवहार होना चाहिये। डॉक्टर को मालूम है कि मेरे पास वही व्यक्ति आएगा, जो बीमार है। न्यायालय में वही व्यक्ति पहुंचेगा, जो किसी उलझन में उलझा है।

महावीर और बुद्ध जीवन के सर्जन हैं। वे हर इन्सान की चिकित्सा करते हैं। उनके पास जाओ, तो वे सुख की मुरली नहीं बजाएंगे। वे सीधे दुःख का फोड़ा फोड़ेंगे। हमारे व्रणों को, घावों को धोएंगे। वे जो काम करने जा रहे हैं, जो बातें कहने जा रहे हैं, वे घावों को मिटाने जैसी हैं। वे गम के गीत नहीं, गम विसारने के गीत हैं।

जब डॉक्टर हमारे फोड़े को दबाएंगे, तो तकलीफ तो होगी। मवाद निकलेगा। खून बहेगा। मन पीड़ा से कराहेगा। सब कुछ होते हुए भी हमें उसे सहन करना पड़ता है। आखिर यही तो प्रक्रिया है, जिससे घाव मिटेगा, जड़ से मिटेगा। डॉक्टर का यह काम चाहे आपकी भाषा में बुरा हो, दर्ददायक हो, पर बिना इस प्रक्रिया के स्वास्थ्य लाभ नहीं हो सकता। रोगमुक्त होना स्वास्थ्य लाभ की अनिवार्य शर्त है।

महावीर ने, बुद्ध ने दुःख की बहुत चर्चाएं कीं। क्रोध, मोह, माया-लोभ की चाण्डाल-चौकड़ी को उस दुःख का कारण जाना और दुःख के रोगों के उन्मूलन के लिए प्रयास करते रहे। अपने अनुभवों की बैग थामे गांव-गांव, गली-गलीघूमे और उपचार किया।

हकीकत तो यह है कि महावीर और बुद्ध ने भारत को पंगु नहीं बनाया। वह तो पंगु था, उसे चलने के लिए पैर दिये। उन्होंने भारत को दुःख नहीं दिया। अपितु दुख के कारण बताकर उससे छुटकारा पाने की बातें कहीं। महावीर और बुद्ध तो परम सुखवादी हैं। वे दुनिया को ऐसा सुख देना चाहते है, जिसमें दुख की जड़ें न हों। संसार के दुखों से छुटकारा पाने के लिए ही तो उन्हें मोक्ष ओर निर्वाण की लो जगमगानी पड़ी। किसी के पैरों में जूते पहनाने से पहले पैर में गड़ा कांट तो निकाल दो। जूता चलने में सहायक जरूर है, पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कांटा बाधक है। सुख बांटने वाले तो बहुत हुए है, पर दुःख मिटाने वाले कम। यदि दुःख मिटाने वाला दुःखवादी है, तो संसार में कोई भी सुखवादी नहीं है।

मैंने महावीर और बुद्ध को गहराई से समझने की चेष्टा की है। वे घावों को धोते हैं, सड़ रहे बीजों को सम्हालते है। यह काम छोटा भले ही लगे कुछ लोगों को, पर संसार में सुख की सुरभि बिखरने से पहले दुःख की दुरभि हटानी खास जरुरी है। और उसे हटाने के लिए उसके कारण को हटाना जरुरी है।

जो संसार के सागर में गहराई से गोते खाता है, वह जानता है, यहां दुख के अलावा कुछ नहीं है। पैठो सागर में, किसी भी कोने से, किसी भी सीमा से, किसी भी क्षेत्र से, किसी भी समय में। उसका पानी खारा ही मिलेगा। देश बदल सकता है, समय बदल सकता है, योजनाएं बदल सकती है, भावनाएं बदल सकती है, पर संसार का स्वरुप नहीं बदलता। उसकी नश्वरता नहीं बदलती। क्या आपने कभी किसी सागर का पानी मीठा है, ऐसा सुना है? यदि सुना है, तो वह सत्य नहीं है। जरूर कहीं-न-कहीं धोखा है। और आदमी संसार में जीता ही धोखे के सहारे है, झूठ के सहारे जीता है। संसार में झूठ के बिना जीना कठिन है।

इसलिए तो हमारी जिंदगी पूरी की पूरी यों ही गुजर जाती है। यात्रा तो जिंदगी भर होती है, पर बिना मंजिल की। हाथ में दिया तो हर घड़ी थामे रखा, पर बिना ज्योति का। यही कारण है कि जिंदगी भटक रही है अंधेर खलाओं में। पेड़ की डालियां तो काटीं। जन्मों-जन्मों से काटीं। पर पेड़ फिर भी बना रहा। कारण, जड़ें अब भी बनी हुई है। इसलिए उतरो जड़ों में, जमीन की गहराई में। बिना जड़ को काटे पेड़ को खतम करना जटिलता है। जिसने यह बात समझ ली, उसके लिए संसार का जटिलताएं सरलता और सुगमता में बदल जाएगी। सच्चाई की रोशनी हाथ में थामो। समझो, बूझो। मैंने इतना कहा, यानी कहकर हाथ में आपके दीया थमाया। आजमाइश अभी बाकी है। अब आप स्वयं खोजें इस दीये के सहारे सत्य को। स्वयं की खोज से जो सच्चा अनुभव मिलता है, वही असली है, वही शास्त्रार्थ है, वही सामर्थ्ययोग है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा है संसार

संसार को रहस्यमय माना जाता है। यह उन लोगों के लिए रहस्यमय है, जो खुली हथेली आए हैं, पर मुट्ठी बांधकर पूरा जीवन बिताते हैं। एक जागरूक व्यक्ति के लिए यह संसार एक खुली हुई किताब है। चूंकि किताब है, इसलिए एक ही अध्याय नहीं है। कई अध्यायों की जिल्द का नाम किताब है। जो संसार को उलझन मानते हैं, उन्होंने संसार की किताब पूरी नहीं पढ़ी है। संसार की किताब को स्वाध्याय-शृंखला की पहली कड़ी बनाइये और उसे गहराई से पढ़िये।

कहा जाता है संसार कीचड़ है। इसका रहस्य जानना चाहिये कि यह कीचड़ कैसे है। संसार केवल कीचड़ ही नहीं है, कमल भी है। इसकी एक आंख में प्रेमिका की सूरत है तो दूसरी आंख में मां की ममतामयी मूरत है। इसमें लहरों-सी चंचलता भी है, तो समाधि-सी शान्ति भी। यहां भीड़ भी है, तो एकाकीपन भी है। बाजार भी है, तो गुफा भी। संसार अनेक विचित्रताओं को समेटे है।

नरक, पशु-पेड़, स्वर्ग और मनुष्य—ये सब संसार के ही अंग हैं। मुक्ति संसार में कमल की तरह है। वह संसार के उस छोर पर है, जो आखिरी है। जीव वहां तक संसरण तो करता है, किन्तु वहां से नीचे की ओर संसरण नहीं करता। नरक संसार के इस छोर की आखिरी कड़ी है। इसलिए सारे जीव संसार में ही हैं। जहां-जहां अवकाश है, वहां-वहां संसार की सम्भावना है। अवकाश आकाश का ही नाम है। इसलिए संसार को दूसरा नाम लोकाकाश भी दिया जा सकता है।

आप जिस संसार को देख रहे हैं, वह तो है ही संसार। इस दृश्यमान संसार के परे भी संसार है। वह संसार रहस्यमय ज्यादा है। नरक भी एक संसार है। स्वर्ग भी एक संसार है। जो लोग इन्हें संसार कहना पसंद नहीं करते, वे उन्हें लोक कह देते हैं।

कहा जाता है— ब्रह्म सत्यं, जगत् मिथ्या। यानी ब्रह्म सच्चा है और संसार झूठा। यह बात विचारने जैसी है। मुझे तो लगता है कि यह भक्ति का अतिरेक है। जिसे देखा नहीं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाना नहीं, वह तो सच्चा और जिसे गहराई से जाना है, वह झूठा। मेरी समझ से तो जैसे ब्रह्म सच्चा है, वैसे ही यह संसार भी सच्चा है। गहराई से सोचता हूं तो लगता है कि संसार से बड़ा सत्य यहां और कोई नहीं है। संसार की न शुरुआत है न समापन। यह अनादि है और अनन्त है।

यदि कोई यह कहता है कि यह परी-सी सुन्दर सृष्टि परमात्मा की बनाई हुई है, तो जैसा स्रष्टा है, वैसी ही उसकी सृष्टि है। जब स्रष्टा अनश्वर है, तो उसका सर्जन नश्वर कैसे!

संसार यथार्थ है।यह न माया है न मिथ्या। इसलिए यह भ्रम भी नहीं है। निःसंदेह यह संदेहों से परे है। इसलिए यहां शाश्वतता के स्वर गूंजते हैं। यदि क्षणभंगुर होता, तो शाश्वतता के गीत न तो कभी बोले जाते और न ही सुने जाते। क्या क्षणभंगुर लिख सकते हैं शाश्वतता का इतिहास? यदि लेखक शाश्वत नहीं है, तो लेखन भी नहीं है, लेखन का विषय भी नहीं है। इस तरह झुठला जाएंगे वेद, आगम, पिटक।

संसार पराया नहीं है। यह जीवमात्र का घर है, मंदिर है, आराध्य है। यह भगवान का भी घर है और इंसान का भी।

संसार शाश्वत है। जैसे सत्य और शिव शाश्वत है, वैसे ही संसार भी है। काल के पंजे इसे झपट नहीं पाते। सत्य को किसी तरह की आंच नहीं आती, परमात्मा की मौत नहीं होती और संसार कभी भंगुर नहीं होता। संसार कल भी था, आज भी है और कल भी रहेगा। सर्जन और विसर्जन के पहले भी था और पीछे भी रहेगा। चाहे एक बार ही क्यों, हजारों-हजारों बार प्रलय क्यों न हो जाये, पर संसार का अस्तित्व हर प्रलय के बाद बना रहेगा। पहले जब प्रलय हुआ था, उससे पहले भी पेड़, पौधे, पहाड़ वगैरह थे, उसके बाद भी हैं। मूल सत्ता के रूप में सब कुछ शाश्वत है। जो परिवर्तन दिखाई देता है, वह चोलों का है, मौसम का है, गिरगिटिये रंगों का है।

कहा जाता है संसार क्षणभंगुर है, सपना है, असत्य है। यह हमारे देश की आम भाषा है। भारत में सत्य उसे कहा जाता है, जो शाश्वत है। क्षणभंगुर को सत्य नहीं कहा जाता है। उसे सपना कहा जाता है। सपने का मतलब है, जो पहले नहीं था, अभी है और भविष्य में नहीं रहेगा। सत्य वह है जो अभी है, पहले भी था, और भविष्य में भी रहेगा। सपना तो लहर है आया और चला गया। सत्य सागर है, जो सपनों की हर लहर में रहता है। संसार के सपनीले रूप तो खूब कहे गये है। हमें समझने चाहिये उसके सागर जैसे रूप को भी। पर यह तब समझेंगे, जब उसके प्रति घृणा की नहीं, प्यार की दृष्टि अपनायेंगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए संसार घृणा करने जैसा नहीं है, प्यार करने जैसा है। क्योंकि यह स्थायी निधि है। जब हम नहीं रहेंगे, तब भी यह निधि रहेगी। महावीर और बुद्ध के मोक्ष के पहले भी संसार था और बाद में भी बना हुआ है। किसी के रहने या न रहने से संसार में कोई फर्क नहीं पड़ता। भला, संसार कभी मिटता है! यहां कितने ही जन्मते हैं और कितने ही मर जाते हैं। मगर संसार की ध्रुवता को हथोड़े से तोड़ना सम्भव नहीं है।

पर इसका मतलब यह नहीं है कि संसार कभी क्षणभंगुर नहीं हुआ करता। संसार की ध्रुवता का पक्ष तो समझा। अब समझें उसकी अध्रुवता-भंगुरता के पक्ष को।

संसार क्षणभंगुर है—यों कहना बोलती जिन्दगी की एक लहर है। क्षणभंगुर तो वह संसार है, जिसकी सृष्टि हमने की है, जिसे हमारे मन ने रचा है, जिसे हमारी कल्पनाओं ने बनाया बसाया है, जिसे हमारे मोह ने जनमाया है। मां, बाप, बहू, बेटे, दोस्त, दुश्मन—इनकी परिधि में बना-बसा संसार क्षणभंगुर है। यहां पर पाला-पोसा गया प्रेम टिकाऊ नहीं है। हम संसार की शाश्वतता पर मोह, राग, और वैर के जो पर्दे लगा देते हैं, जो झिल्लियां चढ़ा लेते हैं, वे ही वास्तव में नश्वर हैं। चूंकि हमारा मन हर समय उथल-पुथल मचाता है, उटपटांग बातें बनाता है, जिससे जंच गयी, उसी से सांठगांठ कर लेता है। इसीलिए हमारे लिए यह संसार चपल, चंचल, अस्थिर और क्षणभंगुर बना हुआ है।

संसार एक गिरगिट है। रंग और रूप का परिवर्तन उसकी बपौती है। वह चाहे जितने अपने रंग और रूप बदल ले, पर फिर भी अभंगुर है। आकाश में कितने बादल उभरते हैं, इन्द्रधनुष बनते हैं, चांद उगता है, सूरज डूबता है, तारे टिमटिमाते हैं! कुदरत की इस सारी रास-लीला में आकाश तो ज्यों-का-त्यों ही बना रहता है। जो आकाश दिन में उजला और नीला है, वही रात में काला हो जाता है। रंगों के इस फेर-बदल में आकाश कहीं गायब नहीं होता। इसलिए संसार की क्षणभंगुरता और शाश्वतता खासकर टिकी है हमारी मनोदृष्टि पर।

मैं कभी संसार की निन्दा नहीं करता। भला, जो चीज शाश्वत है, उसकी निन्दा की भी कैसे जा सकती है। संसार का महत्त्व ईश्वर, तीर्थंकर और बुद्ध से कम नहीं है। संसार न रहेगा, तो ईश्वर को कौन पूछेगा, कौन पूजेगा? बिना संसार का ईश्वर अपूज्य है। बिना संसार का ईश्वर अकेला है। और उपनिषदों की भाषा में अकेलापन उसे सुहाता नहीं है। इसीलिए तो उसने स्वयं को बांट-बिखेरा। ये मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे वास्तव में भगवान् के निवासस्थान नहीं है, अपितु हमारी श्रद्धा का प्रगट रूपान्तरण है। मंदिर का निर्माण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् के हस्ते नहीं हुआ, संसार के हस्ते हुआ है। इसलिए संसार जरूरी है। संसार ही सबका जनक है और संसार ही सबका जन्मस्थल। और जननी, जनक तथा जन्मस्थल की गरिमा स्वर्ग से भी ज्यादा है।

मगर संसार निन्दनीय भी है। वह संसार निन्दनीय है, जो सम्बन्धों से जुड़ा है। जिसके स्रष्टा हम हैं, वह सारा खोटा है। वह वास्तविक नहीं, वरन् आरोपित है। मेरा नाम चन्द्रप्रभ है। यह बात नहीं है कि चन्द्रप्रभ शब्द झूठा है। वह तो सच्चा है, पर झूठी है वह संज्ञा जो मेरे जीवन पर आरोपित की गई है। झुठा है वह सेतु जिसने नाम और व्यक्ति का तादात्म्य बनाया। संसार दुःखी है आरोपणों के कारण। आरोपित संसार कृत्रिम है, बनावटी है। कृत्रिमता अस्वाभाविक है, इसलिए त्याज्य है। क्योंकि वह संसार सम्मोहन, आकर्षण, मोह, मिथ्यात्व और दुःख से सना है। ऐसा संसार अशाश्वत है, चपल है, चंचल है, क्षणभंगुर है।

आरोपण संबंधों का अपर नाम है। जिससे हमने संबंध जोड़ा, वह सत्य नहीं, धोखा है, गुठली को गूदा मानकर चूसना है। इन संबंधों को हमने हर जन्म में बनाया है। पत्नी से संबंध बनाया। संबंध आरोपित था। पत्नी एक स्त्री थी। हमने उससे विवाह किया। अपनी मानी। अपनेपन का, मोह और आसक्ति का आरोपण किया। आज इतने साल हो गये पत्नी के साथ रहते, पर क्या आपको विश्वास है कि आप अपनी पत्नी को जान गये? भले ही कह दो, हां, पर नहीं। वह हामी नकामी है। अगले दिन पत्नी क्या करेगी, क्या आप भविष्यवाणी कर सकते हैं? दो मिनट पहले नाराज थी, और अभी खुश है। दो मिनट बाद फिर नाराज हो सकती है। जो संबंध है, वह मात्र आरोपण है। ऊपर-ऊपर का परिचय है, बाहरी रिश्ता-नाता है।

एक जबरदस्त आचार्य हुए शंकर। उन्होंने कहा—

का ते कान्ता कस्ते पुत्रः, संसारोयमतीव विचित्रः।
कस्य त्वं कः कुत आयातः तत्त्वं चिन्तय तदिह भ्रातः।।

सोचो। शंकराचार्य कहते हैं मन में विचार करो। कौन तुम्हारी कान्ता है? तुम्हारा पुत्र कौन है? तुम किसके हो? कौन हो? कहां से आये हो? इनके बारे में सोचो। यह संसार बड़ा बेढबा है, विचित्र है।

यहां संसार का मतलब ही यह है कि दूसरे में स्वयं को ले जाना। दूसरे में स्वयं को स्थापित करना, उससे जुड़ना है। और दुनिया के सारे जोड़ आरोपित हैं, विभ्रम हैं। सम्बन्ध मात्र विजातीयता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिसे हमने जोड़ समझ रखा है, जरा सोचें कि वह जोड़ बलात् है या सही। अगर समझ पैदा हो गयी हो तो जोड़ में से आप स्वयं को घटा लें, हटा लें। सत्य तो यह है कि समझ आ जाने के बाद संसार कहां? 'ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः ?' तत्त्व-ज्ञान होने पर संसार कहां? प्रकाश आ जाने के बाद अंधकार कहां? अमरत्व के बाद मृत्यु कहां?

जोड़ वास्तव में मिलावट है, मिश्रण है। दुनिया के सारे मिश्रण जबरदस्ती हैं, स्वाभाविक नहीं। जहां-जहां जोड़ है, मिश्रण है, वहां-वहां उलझन है, अशुद्धि है। दूध और पानी का मिश्रण करके देख लो। परिणाम सामने आ जायेगा। यों तो दूध भी शुद्ध है और पानी भी शुद्ध, पर दो शुद्धताओं का मिलाप अशुद्धता को जन्म देता है। अशुद्धि तब होती है, जब दो भिन्न-भिन्न जाति के पदार्थ एक-दूसरे में मिल जाते है। वर्ण-शंकर का दूसरा नाम अशुद्धि है। दाल और चावल अलग-अलग पकाये जायें, तो पकने के बाद भी हम दाल को दाल कहेंगे और चावल को चावल। पर दोनों को साथ पका लो, तो? तो हम उसे खिचड़ी कहेंगे। इसीलिए तो कबीर की भाषा को हम खिचड़ी-भाषा कहते हैं, क्योंकि उसमें कई भाषाओं का मेल है।

हमारी जिंदगी भी खिचड़ी बन गई है। उसमें ढेर सारे विजातीय एक दूसरे से रिश्ता जोड़े हैं, घुले-मिले हैं। आत्मा मन में घुली। मन शरीर में घुला है। शरीर बाहरी रंग-राग में, संसार में। सब एक-दूसरे से घुले-मिले, भिंदे-छिदे हैं। यह इन्द्रधनुषी संसार उसके लिए तब तक सुखकर और दुःखकर बना रहेगा, जब तक एक-दूसरे से छिदना और जुड़ना चालू रहेगा।

इसलिए यह बहुरुपिया संसार छलना है, धोखा है। यहां सब एक-दूसरे को ठगते चले जाते हैं। यहां केवल बदमाश ही ठग नहीं है, अपितु पिता भी ठग है, बेटा भी ठग है, पत्नी भी ठग है। मित्र भी ठग है। संसार ठगबाजी की एक शतरंज है। और इस दृष्टिकोण से संसार दुःखदायी है, आंखमिचौनी है, चंचल लहरों की तरह है।

कुछ दिन पहले मैंने एक कहानी पढ़ी थी कि एक महिला को ऋण चुकाने के लिए पांच सौ रुपये की जरूरत थी। जमींदार ने धमकी दे दी कि यदि कल तक रुपये नहीं लौटाये तो तुम्हारी खैर नहीं। और कोई उपाय न देख उसने अपनी भैंस बेचने की ठानी। उसने अपने लड़के से कहा, जा इस भैंस को बाजार में पांच सौ रुपये में बेच आ। लड़का बाजार गया। वह जोर-जोर से पुकारने लगा, अरे भैंस ले लो भैंस, पांच सौ रुपये में भैंस ले लो भैंस।

उसी समय वहां चार ठग पहुंचे। उन्होंने उसे बच्चा जान ठगने की चेष्ठा की। एक ठग उसके पास पहुंचकर बोला, अरे बुद्धु हो क्या? बकरी को भैंस कहते हो। अरे यह तो बकरी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है, बकरी। और यों कहकर वहां से चला गया। लड़के ने सोचा, मां ने तो कहा था यह भैंस है, पर वह आदमी इसे बकरी कह गया। शायद उस आदमी को दृष्टिभ्रम हुआ। वह फिर बोलने लगा, भैंस ले लो भैंस। इतने में दूसरा ठग पहुंचा और बोला, वाह, दुनिया में पागल तो बहुत देखे, मगर ऐसा नहीं। भाई! तुमने तो कमाल कर दिया, बकरी को भैंस बना दिया। पर तुम्हारे बनाने से भैंस थोड़ीबनती है! लड़का बोला, साहब! यह तो भैंस है। ठग बोला, भैंस है तो कहता रह भैंस। सुबह से शाम तक कहता रह।

लड़के का माथा ठनक गया। पर फिर भी जिसे वह बचपन से भैंस कहता आ रहा था, उसे इतना जल्दी बकरी कैसे कह दे।

थोड़ी देर में तीसरा ठग उसके पास से गुजरते हुए बोला, 'अरे देखो रे लोगो! यह कैसा उल्लु बनाता है लोगों को, जो यह बकरी को भैंस कहकर बेचना चाहता है। ए लड़के! इसे बकरी कहो, बकरी।

इस बार लड़के को यह बात जच गयी कि वह भैंस नहीं, बकरी ही है। अतः वह बोलने लगा, बकरी ले लो, बकरी, पांच सौ रुपये में बकरी। चौथा ठग पहुंचा उसके पास। उसने कहा, भाई! यह बकरी है और बकरी तो बकरी के भाव बिकेगी। तुम बेच तो रहे हो बकरी और भाव बता रहे हो भैंस के। ये लो पचास रुपये। बकरी इससे ज्यादा भाव में नहीं बिकेगी। जैसे-तैसे समझा-बुझाकर ठगों ने उस लड़के से भैंस ठग ली।

वह घर गया तो मां को उलाहने देने लगा कि तूने मुझे बाजार में बेइज्जत करवा दिया। तू मुझे पहले ही बता देती कि वह भैंस नहीं बकरी है। मां ने जब सारा किस्सा सुना तो रो पड़ी। जब लड़के को यह अहसास हुआ कि वह वास्तव में ठगा गया है, तो उसने अपनी भैंस के पैसे वसूल करवाने की अपने शिक्षक से विनती की। शिक्षक ने योजना बनाई। उसने अपने तीन-चार विद्यार्थियों का सहयोग लिया।

योजना के अनुसार दो लड़कों ने यह पता किया कि उन ठगों के नाम क्या हैं और उन्होंने अपने झोले में क्या-क्या चीजें डाल रखी हैं। एक लड़के ने साधु का वेश बनाया और उन ठगों के पास जाकर उन्हें नाम से संबोधित करते हुए पूछा, यहां कुआ कहां है? ठगों को उस साधु के मुंह से अपने नाम सुनकर आश्चर्य हुआ। पूछा, आप हमारे नाम कैसे जान गये। बोला, गुरु-कृपा से। हमारे गुरु बड़े अन्तर्यामी हैं, चमत्कारी हैं। वे जिसे आशीर्वाद दे देते हैं, उसका बेड़ा पार समझो।

ठगों ने उस साधु को उसके गुरु के पास ले जाने के लिए निवेदन किया। साधु उन्हें ले गया अपने गुरु के पास। गुरु के रूप में उसका अध्यापक साधु-वेश में बैठा था। शरीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर भभूत रमाई और सिर पर जटा धारण। गुरु ने उन्हें उनके थैले में रखी हुई चीजें बतलाई। ठगों को बड़ा अचम्भा हुआ। कहा, बाबा! हमें कोई ऐसी चीज दो, जो हमें मालामाल कर सके। बाबा ने कहा, यहां से एक किलोमीटर दूर एक लड़का गधा बेचता हुआ मिलेगा। उस गधे के गले में एक घंटी बंधी है। वह घंटी जादू की है। तुम उससे जो मांगोगे, तुम्हें मिलेगा। मगर पूर्णिमा की रात उसकी पूजा करवाने से ही।

बड़े ठग ने कहा, वह तो हम उससे छीन लेंगे। गुरु चिल्लाया, खबरदार! अगर छीना तो अभिशाप दे दूंगा। घंटी खरीदना और जितने ज्यादा पैसों में खरीदोगे, वह घंटी तुम लोगों पर उतनी ही खुश होगी।

ठग वहां से दौड़े। सामने वही भैंस बेचने वाला लड़का गधा बेचता हुआ मिला। वह बोल रहा था घोड़ा ले लो, घोड़ा। पांच सौ रुपये में घोड़ा। ठगों ने कहा, अरे तू कैसा गधा है? गधे को घोड़ा कहता है। इतने में ही दूसरे ठग ने अपने साथी को डांटा, अरे ये गधा है या घोड़ा, उससे तुम्हें क्या लेना-देना? हमें तो घंटी चाहिये, घंटी। गधा खरीद लो।

ठगों ने पांच सौ रुपये में गधा खरीद लिया, पर गधा मरीयल। उसे अपने कन्धे पर उठाया और अपने घर तेजी से चल पड़े।

शिक्षक और बच्चे हंसने लगे। समझदारों और होशियारों को गधा बना डाला उन्होंने। तो संसार में सब कोई ठगते हैं। कोई भैंस को बकरी कहलवाकर, तो कोई गधे को घोड़ा बताकर। एक-दूसरे को धोखा देने का धन्धा चालू है।

इसलिए संसार में किसी में जाकर उलझना मत। क्योंकि संसार की जोड़ बड़ी खतरनाक है। यह गणित आम गणित से जुदी है। संसार के कीचड़ से स्वयं को कमल की तरह निर्लिप्त करने के लिए जोड़ को घटाव में बदलो। जिन-जिनसे जुड़े हैं, उन-उनसे घट जाओ, स्वयं को घटा डालो। शेष जो शून्य बचे, वही है हमारा सच्चा स्वरुप।

इसीलिए संसार के अध्रुव स्वरुप की समीक्षा करो, उसे गहराई से निरखो। इसे यौगिक भाषा में अनुप्रेक्षा कहते हैं। कृष्ण का मायावाद, महावीर का अनित्यवाद और बुद्ध का क्षणभंगुरवाद ये सब संसार की नश्वरता के गीत सुनाते हैं।

क्षणभंगुरता पर जितना बुद्ध ने कहा, उतना और कोई नहीं कह पाये। कृष्ण भी बुद्ध की साझेदारी नहीं निभा सके। बुद्ध चरम सीमा पर हैं। वे क्षणभंगुरवादी हैं। हकीकत तो यह है कि क्षणभंगुरता का जैसा इतिहास बुद्ध कह पाये, वैसा युगों-युगों तक कोई नहीं कह पाया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बुद्ध ने देह को, राग को, रिश्तों को ही क्षणभंगुर नहीं बताया, अपितु आत्मा को भी क्षणभंगुर माना। आत्मा भी नश्वर मानी और आत्मीय भावों को भी नश्वर माना। कृष्ण ने आत्मा को ईश्वर-अंश कहा और ईश्वर तथा आत्मा को छोड़कर शेष सभी को क्षणभंगुर माना। महावीर ने बीच का रास्ता निकाला। महावीर यानी कृष्ण और बुद्ध के बीच का रास्ता।

महावीर यानी कृष्ण और बुद्ध के बीच समन्वय का रास्ता ढूंढ निकालने वाला महापुरुष। उन्होंने आत्मा को माना, परमाणु को भी माना। उन सभी चीजों को उन्होंने मान लिया, जिनका संसार में अस्तित्व है। न केवल आत्मा सदा स्थायी है, अपितु पुद्गल-परमाणु भी सदा स्थायी है। वे प्रत्येक पदार्थ को सत्ता के रूप में शाश्वत मानते हैं, पर उसका रूप-परिवर्तन वे क्षण-क्षण स्वीकार करते हैं।

भले ही महावीर की बात अधिक वैज्ञानिक हो, पर संसार से मोह तोड़ने के लिए क्षणभंगुरवाद अचूक है। विरोधाभास जरूर लगता है, पर जिस दृष्टिकोण से जो सिद्धान्त बना है उसे उसी दृष्टिकोण से समझेंगे, तो न तो विरोध महसूस होगा, न विरोधाभास। काश, यदि ऐसा हो जाता, तो संसार में कभी दर्शनों की लड़ाइयां नहीं होतीं, शास्त्रार्थ नहीं होते, पराजित दार्शनिक को जिन्दा दीवारों में नहीं चिना जाता।

एक बात हमेशा याद रखें कि यह जो संसार की घट्टी है, घूमती रहती है। धुरी थिर है। चाक के आरे घूमते हैं। जन्म और मृत्यु, जन्म और मृत्यु — यह संसरण चालू रहता है छिन-छिन। मौत हठात् नहीं आती, प्रतिपल आती है। जन्म भी हठात् नहीं होता, प्रतिपल होता है। जन्म और मृत्यु दोनों ही क्षणभंगुर हैं। और इस क्षणभंगुरता के बीच भी ध्रुवता कायम रहती है। यदि वह हट जाये, तो क्रम टूट जायेगा। बिना ध्रुवता के मृत्यु के बाद जन्म कैसे हो पायेगा?

दीपक की लौ को आप गौर से देखिये। जो लौ बन गयी और ऊपर से उठ गयी, वह तो खतम हो गयी। नयी लौ आ रही है पर उस आने और जाने के बीच ज्योति अपनी स्वरुप कायम रखती है। इसलिए इसे ध्यान में रखें। सर्जन-विसर्जन के बीच में और पीछे रही स्थायिता को।

एक बात ध्यान में रखें कि संसार को चाहे शाश्वत मानें या सपना, पर उसके प्रति किया गया मोह-व्यापार, राग-रिश्ते कभी अच्छे और सुखकर नहीं हुआ करते। यदि हों, तो समझ लें कि यह सच्चाई नहीं, खुजली खुजलाने से मिलने वाला सुख नहीं, सुखाभास है। इसलिए आभास मात्र है। संसार से मोह तोड़ने के लिए इसे अनित्य और अध्रुव मानें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो ऐसा सोचेगा कि यहां सब कुछ परिवर्तनशील है, चलता चला जा रहा है, वह कभी मोहग्रस्त नहीं होगा। संसार की अनित्यता का चिन्तन करना निर्मोह होने का पहला सोपान है। संसार में जो हमें थिरता दिखाई देती है, वह सत्य नहीं, दृष्टि-भ्रम है। हालांकि हम अस्थिरता और क्षणभंगुरता के दृश्य प्रतिपल निहारते हैं, फिर भी अपने प्रति हम सचेत नहीं हो पाते हैं। हम जानते हैं कि बड़े-बड़े वैभवशाली महल खंडहर बन गये। बड़े-बड़े पहाड़ ढ़ह गये। जो फूल सुबह मुस्कुरा रहा था, वही सांझ को कुम्हलाया हुआ मिला। जिस पेड़ पर कल तक पत्तियां इठलाती पायीं, आज उसका कंकाल रूप नज़र आया। जो लोग रात को हंसते-खिलते थे, युगों-युगों की कल्पनाओं को संजोये हुए थे, उनके लिए अगला मिनट मौत बनकर आ गया। अभी रूस में आए भूकम्प में यही तो हुआ। लाखों-लाख लोग एक मिनट में लील गए। पर क्या सचेत हुए हम अपने लिए? क्या हमने यह सोचा कभी कि ऐसा समय हमारे लिए भी संभव है? आप ऐसा सोच नहीं सकते। क्योंकि आप अपने को थिर और सुरक्षित महसूस करते हैं।

क्षणभंगुरता का क्या, वह हमारे साथ हमारी छाया की तरह लगी हुई है। बुढ़ापा कोई अचानक नहीं आता है। प्रतिदिन आता है वह। पर आपको महसूस नहीं होता। आप रोज़ाना नहाते हैं, और कांच के सामने चले जाते हैं। आपने जैसा कल अपने को महसूस किया था, वैसा ही आज कर रहे हैं। आप अपने आपको बिल्कुल ठीक-ठाक और जवान महसूस करते हैं, अपितु बूढ़े भी करते हैं। सफेद मूंछ वाला भी जब कांच के सामने खड़ा होता है तो अपनी मूंछ पर ताव जरूर देता है। और साठ वर्ष की ढ़लती आयु में भी अपने को जवान महसूस करता है।

आप जरा सोचिये कि जीवन में बुढ़ापा आना क्या परिवर्तन नहीं है, पर यह परिवर्तन इतने आहिस्ते-आहिस्ते होता है कि पता भी नहीं चल पाता। इसीलिए तो लोग क्षणभंगुरता को स्वीकार नहीं करते। वे तो स्वीकार करेंगे, जब उन्हें यों लगेगा कि रात को सोते समय तो जवान थे और सुबह उठे तो बूढ़े हो गये। तब उन्हें लगेगा कि अरे! सब नश्वर है, क्षणभंगुर है। मगर परिवर्तन की यह प्रक्रिया काफीसूक्ष्म है। एक-एक बूंद रिसता है पानी, बाल्टी से। रिसते-रिसते आखिर खाली हो जाती है बाल्टी, जीवन की गगरी।

हालांकि आप यह रिसाव महसूस नहीं करते, पर यदि आप हर सुबह अपने आपको गहराई से निहारेंगे, तो स्वयं में कुछ फर्क पाएंगे। पर ऐसा पाने के लिए बड़ी सतर्कता और जागरुकता की जरुरत है। बदलाव बड़ा बारीक है। जब आप गहराई में जायेंगे, तो आपको

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिपल होने वाला फर्क भी नजर पड़ेगा, रत्ती-रत्ती का हिसाब समझ में आयेगा। आप स्वयं अनुभव करेंगे कि मैं कैसा हूं, संसार कैसा है। धीरे-धीरे आप पायेंगे कि सपने टूटने लगे, सच्चाई उभरने लगी।

एक राजा का बेटा बीमार था। मृत्यु-शय्या पर लेटा था। सारे वैद्य-हकीम इलाज में लगे थे। राजमाता, मंत्रीजन सब पास खड़े थे। राजा राजकुमार की बाजु में कुर्सी पर बैठा था। वह काफी चिन्तातुर भी था। बैठे-बैठे ही उसे झपकी आ गयी और उसने उसी समय एक सपना देखा। उसने देखा कि उसके सात स्वर्ण-महल हैं। वह अपने बेटों को गले लगाने के लिए ज्योंहि हाथ फैलाता है, कि रानी की चीख से उसका सपना टूट जाता है।

सब रोने लगे, क्योंकि बिस्तर पर लेटा राजकुमार चल बसा था। किसी की मौत होने पर उसके प्रति आंसू ही बहाये जाते हैं। रानी वगैरह छाती पीट-पीट कर रोने लगे। जब राजा को यह ज्ञात हुआ तो वह हंसने लगा। रानी ने कहा, आप हंस रहे हैं पुत्र-निधन पर! यह सुनकर राजा और हंसने लगा। पत्नी/रानी बोली, आपका दिमाग तो नहीं फिर गया! कहीं पागल तो नहीं हो गये! इस हंसी का राज क्या है?

राजा बोला, बोलो, किस पर रोऊं—उन सात बेटों के लिए या इस एक बेटे के लिए। रानी ने कहा, कौन-से सात बेटे? क्या सपना देखा था?

हां, मैंने सपना ही देखा था।

रानी बोली, अरे वह तो सपना था और यह वास्तविक है। राजा ने कहा, हां वह भी एक सपना था, और यह भी एक सपना है। संसार एक सपना है। वह सोये-सोये देखा हुआ सपना था। यह जागते हुए देखा गया सपना है। दोनों ही सपने हैं। अब मेरी आंखें खुल गयी हैं सपनों से।

मुझे यह कहानी बहुत प्रिय लगी। शायद आपको भी प्रिय लग जाये, तो बहुत जल्दी खुल जायेंगे संसार के रहस्यमयी दरवाजे।

संसार रहस्य जरुर है, पर तभी तक जब तक प्रज्ञा की किरणों से रहस्योद्घाटन न करें। यदि एक बार प्रज्ञा के फूल खिल गये, जागृति की रोशनी मिल गई, संसार के स्वभाव की समझ पैदा हो गई, तो फिर यात्रा बाहर की न होगी, भीतर की होगी। वह बहिरात्मा न होगा, अन्तरात्मा होगा। फिर उसे स्वयं महसूस होगा कि बाहर की गंगा आखिर बाहर की है। उसे प्रयाग-संगम तो भीतर महसूस होगा। वह स्वयं में निहारेगा अपना तीर्थ और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वयं ही बनेगा अपना तीर्थंकर। असली तीर्थ-यात्रा तो भीतर ही है। जितने भीतर उतरते जाएंगे उतने ही तीर्थों की यात्रा होती चली जाएगी। जिसे आप मन-मन्दिर कहते हैं, परमात्मा का घर कहते हैं वहां आप अपना दिया जलाएंगे। सच्चाई तो यह है कि भीतर की यात्रा ही तीर्थ-यात्रा है। वहीं है पालीताना, वहीं शिखरजी, वहीं काबा, वहीं कैलाश, वहीं काशी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मैं : सम्मोहन के दायरे में

ससार एक सम्मोहन है। इसीलिए वह मोहता है, लुभाता है। इसका यह मोहना और लुभाना ही इसकी मनोरमता है। यह मनोरमता ही उसकी माया है। सागर की तरह लहराता हुआ अपनी मोहमयी मूरत से वह कब लुभा लेता है, इसका कोई पता नहीं चल पाता।

मैं समुद्र तट पर जाता तो कई बार वहां खड़ा-खड़ा सोचता ये ठंडी हवाएं, ये चंचल लहरें, यह स्वर्णिम प्रभात, यह नीला नीर कितना सुरम्य है! क्या संसार ऐसा ही नहीं है? बिलकुल ऐसा ही तो है यह संसार। पर ज्यों ही आकाश में छाये हुए काले बादलों को देखता, आंधी की गर्जना सुनता, लहरों की दानवता निहारता तो आंखे मुंद जाती, भय से दिल कांप जाता, मौन और व्यथा प्राणों को झकझोर डालते। सोचता, जैसा यह समन्दर है क्या ऐसा ही है संसार! लगता, हां ऐसा ही तो है यह संसार। जैसे लहरों में उतार-चढ़ाव आते हैं, हवाओं में तीव्रता-मन्दता आती है, आकाश में रोशनी और अंधियारा छाता है। यह संसार भी तो ऐसे ही काले-पीले रंगों से रंगा है, इसके भी स्वाद खट्टे-मीठे है, तीखे-कड़वे हैं।

संसार का सम्मोहन इतना गहरा है, कि मीठा तो सभी को अच्छा लगता है किन्तु तीखा भी चल जाता है। नमक खारा जरुर है, पर लोग उसका भी उपयोग कर लेते हैं। अब तो तीखापन, नमक का खारापन इन नाड़ियों में खून की तरह इतना रम गया है कि उसके बिना मीठे केले का साग भी फीका लगता है। इस अभ्यास का नाम ही संसार का सम्मोहन है।

सम्मोहन धीरे-धीरे, धीरे-धीरे होता है। सम्मोहन कोई गेहूँ पीसना नहीं है, अपितु आटे को पीसना है। पीसे हुए को ही पीसना है। यह कोई दूध में पानी मिलाना नहीं है, अपितु पानी में ही दूध का आरोपण करके पानी में पानी मिलाना है। यह दही का मंथन नहीं है। यह जल-मंथन है। यह बिदाम को फोड़ना नहीं है, अपितु प्याज के छिलके उतारना है।

किसी साधु को अपनी लंगोटी बड़ी प्यारी थी। किसी ने उसकी लंगोटी चुरा ली। साधु ने उसे बहुत ढूंढा, पर मिली नहीं। उसके दिल को बड़ी ठेस पहुंची। क्योंकि वह उसे देह से भी ज्यादा प्यारी थी। उसने चोर को ढूंढने की ठानी। जैसे आज यदि कोई डाका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पड़ता है तो पुलिस वाले सीधा चौराहा सम्भालते हैं। उनके अनुसार हर किसी को आखिर चौराहे से ही गुजरना पड़ता है। उस साधु को भी किसी वकील ने यह सलाह दी। उसने भी ऐसी जगह ढूंढ निकाली जहां पर चौराहे का रास्ता पहुंचता है। किन्तु वहां से आगे रास्ता नहीं मिलता। वह था मरघट।

साधु मरघट में ही रहा। हर किसी मुर्दे को सम्भालता, अपनी लंगोटी को टटोलता पर उसे उसकी लंगोटी मरते दम तक न मिली। सम्मोहन इतना जबरदस्त कि वह साधु लंगोटी के लिए अपनी सारी जिन्दगी को कुर्बान कर देता है। जिस मरघट में अपनी लंगोटी खोजता है, वहीं अपनी चिता भी सजाता है। लंगोटी-लंगोटी करता हुआ मर जाता है, पर लंगोटी नहीं मिल पाती। भला मिले भी तो कहां से! लंगोटी तो उसने चुरायी थी जो कभी मरघट तक जाता ही नहीं। साधु की लंगोटी को तो चूहा-कुतर-कुतर कर खा चुका था।

क्या आपने भी अपने जीव में कभी किसी को सम्मोहित दशा में देखा है? देखा होगा, जरुर देखा होगा। स्वयं को ही देख लो। कितना सम्मोहित बना रखा है। स्वयं को! खांसते हो, मगर फिर भी बिड़ी-सिगरेट पीते हो। क्या यह सम्मोहन नहीं है? आप सम्मोहित भी इतने बने हैं कि बोध की तो आंखे ही चुंधिया गयी है? पत्नी का सम्मोहन, पुत्र का सम्मोहन, परिवार का सम्मोहन, दुकान का सम्मोहन, बैंक बैलेंस का सम्मोहन, कपड़े, भोजन और सैर-सपाटे का सम्मोहन। कितने-कितने सम्मोहन जुड़े हैं हम से।

सम्मोहन की पराकाष्ठा तो देखो! जिस माता ने, जिस पिता ने हमें पैदा किया, पाला-पोषा, समाज में जीने जैसा बनाया, विवाह करवाया, उसे ही हम छोड़ देते हैं। पत्नी का रंग इतना चढ़ा कि उसके सामने माता-पिता का रंग फीका-फस्स हो गया। बेटा अपना घर अलग से बसा लेता है। क्या माता-पिता ने इसीलिए जन्मा, पढ़ाया, बड़ा किया, कि शादी होने के बाद माता-पिता से अलग हो जाना? पत्नी के सम्मोहन में आप अपने पुत्र-कर्त्तव्य की क्यों हत्या कर बैठते हैं? एक पिता पांच बेटे पाल सकता है, पर पांचों बेटे एक माता-पिता की सेवा नहीं कर पाते। एक के सम्मोहन में दूसरे से नफरत क्यों? सम्मोहन के साये में क्यों भूल जाते हैं आप अपने नैतिक कर्त्तव्यों को, दायित्वों को।

हम अनुयायी तो हैं निर्मोही वीतराग के, मगर अनुरागी बने हैं सम्मोहन के। वीतरागता जीवन की अनुगूंज न बन पायी। बने भी कैसे! जहां जीवन में राग की प्रार्थना हो, सम्मोहन की साधना हो। लाल रंग की साड़ी भी साड़ी है, पीले और नीले रंग की साड़ी भी साड़ी है, चितकबरे और भूरे रंग की साड़ी भी साड़ी है। साड़ी मात्र पांच मीटर का लम्बा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बाना है। पर जिस स्त्री की जैसी सम्मोहित दशा होती है उसके लिए वैसा ही रंग रसीला होता है। यदि कोई स्त्री ज्यादा गुस्से वाली है तो उसे लाल रंग ज्यादा सुहाता है, यदि कोई खट्टे-मीठे स्वभाव वाली है तो उसे संतरे के रंग की साड़ी सुहाती है। नम्र स्वभाव वाली स्त्री को पीली और गुलाबी साड़ी में मजा आता है। पर इसका मतलब यह नहीं है कि जो औरतें काली साड़ी पहिनती हैं वे भी भीतर से काली हैं। उनकी साड़ी का काला रंग तो उनकी पसंद नहीं, अपुति समाज के ढर्रों की पसंद है।

इस युवक को कहिये कि जरा एक दिन के लिए पेन्ट-शर्ट मत पहनो, धोती पहन लो। यह कभी पहन पाएगा? नहीं। कहेगा यह भी कोई पहनावा है! ढ़ीली-ढ़ीली धोती, ढ़ीला-ढ़ाला कुरता और ढ़ीली-ढ़ाली चाल यह तो ढ़ीले-ढ़ाले लोगों के लिए है। हम जैसे चुस्त लोगों के लिए नहीं है। उन पगड़ी वाले सज्जन को कहिए कि जरा एक दिन के लिए आप धोती-कुर्ता मत पहनो, पेन्ट-शर्ट पहन लो। क्या ये कभी पहिनेंगे? कहकर देख लो, कैसा जवाब मिलता है। अपनी पगड़ी से आपकी टांगों को बांधकर आपका सारा दिमाग दूह लेंगे, पर पेन्ट कमीज नहीं पहिनेंगे। कहेंगे यह भी कोई पहनावा है? चुस्त पेन्ट पतली टांगें, लगती हैं सिगरेट जैसी।

मैं यह कहना चाहता हूं कि आप जरा सोचिये कि पहनावे में यह फर्कक्यों? क्योंकि सम्मोहन है, राग का रिश्ता है। एक पेन्ट के प्रति सम्मोहित है तो दूसरा धोती के प्रति तो तीसरा लूंगी के प्रति। कपड़े तो तीनों ही हैं, पर सम्मोहन-दशा सबकी अलग-अलग है।

हर इंसान के अपने-अपने शौक हुआ करते हैं। शौक और कुछ नहीं, अपने सम्मोहन की अभिव्यक्ति मात्र है। किसी को क्रिकेट का शौक तो किसी को फुटबॉल का। किसी को खेलने में मजा आता है तो किसी को खेल देखने में। आखिर ऐसा क्यों? मेरी समझ से तो इस क्यों का एकमात्र जवाब है सम्मोहन।

बहुत बार ऐसा भी देखता हूं कि लोग रास्ते पर चलते-चलते ही गीत गुनगुनाने लगते हैं। अब उन्हें कौन समझाये? सड़क कोई महफिल खाना नहीं है। यह व्यक्ति को आगे से आगे सरकाती है इसलिए सड़क है। चलते-चलते बेमतलब कुछ गुनगुनाते रहना एक तरह का हल्का-फुल्का पागलपन है।

सम्मोहन वास्तव में पागलपन ही है। होश कहां रहता है सम्मोहन में। बेहोशी का दूसरा नाम ही सम्मोहन है। होश जागा कि सम्मोहन टूटा। बोध की किरण फूटी कि सम्मोहन का अंधेरा मिटा। सच्चाई की आंख खुली कि तन्द्रा हटी। यही तो वह दीवार है, यही तो वह आंख की पट्टी है, जो व्यक्ति को सच्चाई की झलक नहीं पाने देती।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए मेरी समझ से तो संसारी की सही परिभाषा उसकी सम्मोहित दशा है। अगर इसका रंग एक बार चढ़ गया तो काली कम्बली पर दूसरा रंग चढ़ाना हाथी को थप्पड़ मारकर नीचे बैठाना है। स्वयं को देखो तो सही! कितने सम्मोहित हुए चले जा रहे हो! मूर्छा का कोहरा कितना छा रहा है! बेहोशी की खुमारी कितनी बढ़ती चली जा रही है! गहरी निद्रा है, गहरी तन्द्रा है। आंखों में नहीं, सारी जिन्दगी में। केवल जिन्दगी में ही नहीं वरन् सारे वातावरण में है। छोटा-सा प्रयोग करके देख लो।

आपका पांच वर्ष का बच्चा रो रहा है। कोई पिता नहीं चाहता कि उसका पुत्र रोए, सुबके, आंसुओं से अपने गालो को भिगोए। हर मां-बाप यही चाहते हैं कि मेरा नन्हा मुन्ना हंसे-खिले, हंसाए-मुस्कुराए। रोते हुए बच्चे को फुसलाने में हो सकता है बच्चा पिता के गाल पर एक चपत भी लगा दे, पर पिता उस चपत को चपत नहीं मानता। वह तो दूने जोर से उसे और फुसलाता है।

आप कहते हैं, ले मैं घोड़ा बन जाऊं। आ मेरी पीठ पर बैठ जा। आप बच्चे को अपनी पीठ पर बैठाते हैं और घुटने और हाथों के बल चौपाये की तरह चलने लगते हैं। आप घोड़े की तरह गर्दन भी हिलाते हैं, हिनहिनाने भी लगते हैं। और बेटा पीठ पर बैठा हुआ टिक-टिक करता है।

यही तो है सम्मोहन, एक गहरी तन्द्रा। पिता भूल जाता है कि पिता की भूमिका क्या है और पुत्र भी भूल जाता है कि पुत्र की भूमिका क्या है। इससे बड़ी हंसी और क्या होगी कि बेटा बाप की पीठ पर बैठा है और बाप को कहता है टिक-टिक-टिक। सम्मोहन की जंजीरें ऐसे ही तो मजबूत होती हैं। इन घटनाओं को नगण्य न समझें। ये ही तो वे नींव की ईंटें हैं, जिन पर संसार का ग्यारह मंजिला मकान खड़ा होता है।

ऐसा सम्मोहन इस जन्म में ही नहीं है, अपितु जन्मों-जन्मों से है। संसार की कंटीली झाड़ियों में सम्मोहन के बेर तोड़ते जा रहे हैं और खट्टे-मीठे अनुभव बटोरते चले जा रहे हैं। जीते हो, खटते हो, खून-पसीना एक करते हो, किसी न किसी सम्मोहन के प्रभाव से ही। सम्मोहन है तभी तो जीवेषणा है। सम्मोहन है तभी तो आदमी अपनी कार पर कपड़ा पोंछकर मुस्कुराता है। सम्मोहन है तभी तो ईंट चूने पत्थर से बने अपने मकान को देख-देख कर फूलते हो। मकान रहने के लिए जरूरी है, कपड़ा पहनने के लिए जरूरी है, खाना पेट के लिए जरूरी है, पर क्या उसके प्रति सम्मोहन रखना जरूरी है? जो लोग सम्मोहित हो जाते हैं उनके लिए मकान रहने का साधन नहीं, अपितु सात पीढ़ी की चिन्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का कारण बन जाता है। कपड़ा नंगे बदन को ढ़कने का चोला नहीं, अपितु दूसरों को अपनी तरफ आकर्षित करने का शो-रुम बन जाता है। भोजन उनके लिए जीने का साधन नहीं, अपितु भोजन के लिए जीवन बन जाता है।

इसलिए जागो, चेतो, अपने होश को सम्भालो। कहीं ऐसा न हो कि एक जादूगर की तरह,आप भी अपने आपको पुरुष होते हुए भी स्त्री मान लो और स्त्री होते हुए भी पुरुष मान लो। कहीं ऐसा न हो कि मेज के पाये को इस तरह निचोड़ने लगो जैसे ग्वाला गाय के स्तनों को दुहता है। अगर ऐसा हो गया, सम्मोहन की बेड़ियों से बंध गये तो संसार हमारे लिए एक जेलखाना होगा और हम उस जेल के शिकंजों में जकड़े हुए एक उम्र कैदी होंगे। यह कैसा जाल होगा, जिसकी रचना हमने ही की। की तो दूसरों को फंसाने के लिए, मगर फंस गये स्वयं ही। ठीक वैसे ही, जैसे मकड़ी।

एक बड़ा प्रसिद्ध सन्त हुआ आर्द्रक। ऐसे सन्त कभी-कभी हुआ करते हैं। जैसे समन्दर में उतार-चढ़ाव आते हैं। ज्वार-भाटे उठते हैं वैसा ही उसका भी जीवन था। जिस समय आर्द्रक साधु बना, उस समय लोगों ने उसे बहुत मना किया कि तुम साधु मत बनो। पर पता नहीं उसे क्या सूझी कि उसने साधु का बाना पहन ही लिया।

एक दिन आर्द्रक एक बगीचे में बैठा ध्यानमग्न था। उसी बगीचे में कुछ लड़कियां खेलने आयीं। खेल था जिसे जो पसंद आये, वह उसी को वरण करे। किसी ने गुलाब के फूल को वरण किया तो किसी ने आम की मंजरी को। एक लड़की को क्या जची कि उसने ध्यानमग्न साधु आर्द्रक को चुन लियां।

आर्द्रक तो वहां से रवाना हो गया, किन्तु उस लड़की ने आर्द्रक को अपना पति मान लिया। लड़की ने सन्त आर्द्रक को बहुत ढुंढाया, पर रमता जोगी कैसे मिले। आखिर एक दिन उसकी साध पूरी हुई। उसकी अतिथिशाला में एक दिन अनचाहे ही आर्द्रक आ पहुंचा। उस लड़की के आंसुओं से उसका दिल पसीज उठा। उसका धर्म का मोह टूट गया। आर्द्रक इतना सम्मोहित हो चुका कि उसने उसके साथ अपना घर बसा लिया।

जब आर्द्रक का लड़का कुछ बड़ा हो गया तो आर्द्रक ने अपने पिछले जीवन में वापस लौटने की सोची। आर्द्रक की पत्नी को मालूम पड़ा कि उसका पति चला जायेगा, तो वह चरखे से सूत कातने लगी। बेटे ने मां से पूछा मां! यह तुम क्या रही हो? मां बोली, बेटे! तुम्हारा निर्वाह करने के लिए सूत कात रही हूं। तुम्हारे पिता तो घर छोड़कर जा रहे है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बेटा बोला, मां! मैं पिता को जाने नहीं दूंगा। मैं उनके पैर बांध कर उन्हें रख लूंगा। बेटे ने मां का काता हुआ कच्चा सूत उठाया और अपने सोये हुए पिता के पैरों के चोरों ओर लपेट दिया। बेटे के मुलायम स्पर्श से आर्द्रक जग पड़ा। उसके कोमल स्पर्श ने, उसकी मुस्कुराहट ने आर्द्रक को उन्मना बना दिया। गिना, बारह लपेटे थे। आर्द्रक उस बन्धन को तोड़ न सका। जो पांव अगले दिन संन्यास की पगडंडी पर बढ़ने वाले थे, वे वापस संसार में लौट आये।

बारह वर्ष बीतने पर आर्द्रक ने मुनि-जीवन स्वीकार कर लिया। साधु बना आर्द्रक रास्ते से गुजर रहा था। एक हाथी जंजीरों से बंधा था। किन्तु आर्द्रक को देखते ही बंधन को तोड़कर उसी की ओर दौड़ा। लोग चिल्लाने लगे। पर आश्चर्य! आर्द्रक घबराया नहीं। हाथी उसके पास आकर नमा, और जंगल की तरफ चला गया।

जिन तापसों का वह हाथी था, वे तापस बड़े हतप्रभ हुए। आर्द्रक के पास आये। पूछा, उस हाथी ने तुम्हें देखकर अपनी लौह-जंजीरों को कैसे तोड़ दिया? आर्द्रक बोले, लोहे की जंजीरों को तोड़ना सरल है, किन्तु कच्चे सूत के बन्धन को तोड़ना कठिन है। उसने अपनी आप बीती सुनाई और कहा, हम सब मुक्त है। चिरकाल से ही मुक्त है। हम बन्धन में तभी हैं, जब स्वयं को बंधन से बंधा मानते हैं। व्यक्ति हर किसी से बंधन-मुक्त है, किन्तु सम्मोहन, राग, आसक्ति, मूर्छा को लिये बंधा है। जिस दिन भीतर के रग-रग में यह अनुभव होगा कि मैं बन्धन मुक्त हूं, उसी दिन मुक्त हो जाओगे।

सम्मोहन एक बंधन है। किन्तु यह लोहे की जंजीरों जैसा बंधन नहीं है। यह कच्चे सूत का बंधन है। फर्क यही है कि जंजीरों को तोड़ना उतना कठिन नहीं है, जितना सूत को तोड़ना।

सम्मोहन आकर्षण है, राग है, ममत्व है, मूर्छा है, आसक्ति है, बेहोशी है। किसी चीज से लुभा जाना, किसी के साथ ममत्व के कच्चे सूते से बंधना, मेरेपन का भाव बांधना, यही सम्मोहन है, यही राग है। सम्मोहन किसी विशेष भाव से, किसी विशेष व्यक्ति से, किसी विशेष वस्तु से जुड़ना है। कहा, मेरा मकान, तो जुड़ गये। मकान में रहना बुरा नहीं है। मकान में रहने में कोई आपत्ति नहीं है। मकान के साथ मेरा मत जोड़ना। 'मेरे' में अड़चन है। मकान में रहने से व्यक्ति नहीं जुड़ता। रहता तो होटल में भी है, पर उसे अपनी नहीं समझता। किराये की समझता है, परायी मानता है। अड़चन है 'मेरे' में। इसका मतलब यह नहीं कि मैं कहता हूं, मकान में मत रहना। मकान में खूब रहो। दोनों के बीच में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'मेरे' का पुल मत जोड़ो। मकान और आप दोनों अलग-अलग हैं। नदी के दोनों तट जुदे-जुदे हैं। उन्हें जुदे ही रखो। सेतु बना लिया, तो द्वैत रहा कहां। फिर तो एक हो गया, जोड़ हो गयी। किसी अंक को किसी अंक से जोड़ना, यही है राग इसी को कहते है सम्मोहन। जोड़ो मत। हर अंक का स्वतंत्र अस्तित्व रहने दो।

आप संसार में रहते हैं। भले ही रहें, पर उसके साथ मेरेपन का सेतु न जोड़ें। यह न कहें कि मेरा संसार है। 'मेरा संसार' कहने का मतलब यह है कि आपने अपने अन्तरंग में संसार को बसा लिया है। संसार में रहने में कोई अड़चन नहीं है, अपितु अपने भीतर संसार बसा लेने में अड़चन है। कमल का फूल कीचड़ में जनमता है और कीचड़ में ही खिलता है। कमल का कीचड़ में जनमना या खिलना अनुचित नहीं है। अनुचित तो तब है जब कमल की पंखुड़ियों पर कीचड़ आ आए। यह कीचड़ कमल की पंखुड़ियों से तभी जुड़ पाता है जब कीचड़ से मेरेपन का, सम्मोहन का संबंध जुड़ता है। कीचड़ कमल के लिये तब घातक हो जाता है जब कमल कहता है 'मेरा कीचड़'।

आप कहते हैं मेरा मकान, मेरी पत्नी, मेरा पति, मेरा भाई, मेरी बहन, मेरा बेटा, जहां-जहां पर मेरा आया वहां-वहां आप बंधे। क्योंकि सम्मोहन बंधन है, राग का रिश्ता है। आप राग से जितना जुड़ेंगे आपका संसार उतना ही बढ़ता चला जाएगा। वासनाएं भी उतनी ही फैलती चली जाएगी। संसार भी एक वासना ही है जिसमें सब लोग जकड़े हैं।

आदिवासियों में एक जाति है 'होबी'। इस जाति के लोग भाषा-प्रयोग में बड़े प्रज्ञासिद्ध हैं। उनकी बोली जमी और सधी है। वे यह नहीं कहते कि 'यह मेरा लड़का।' 'मेरा कहना वे पाप समझते हैं, यहां जो कुछ है, वह मेरा नहीं, तेरा है, परमात्मा का है। इसलिए वे मेरा नहीं कहते। वे अपने पुत्र का परिचय यों देतें हैं 'यह वह है जिसने हमारे घर जन्म लिया।' पुत्र पिता के लिए कहता है, ये वे हैं, जिसके साथ हम रहते हैं।

संसार का सारा रिश्ता मेरेपन के सम्मोहन में है। जैसे-जैसे आप मेरेपन को आगे से आगे बढ़ाते हैं, वैसे-वैसे आप अपने आपको फैलाते चले जा रहे हैं। जिससे आप कमाते हैं वह भी मेरा। जिससे आप सेवा लेते हैं वह भी मेरा। जिससे आप इलाज कराते हैं वह भी मेरा। जिससे आप अपना मकान बनाते हैं वह भी मेरा। जिसके पड़ोस में रहते हैं वह भी मेरा। जिस देश में जनमते हैं वह भी मेरा। ऐसे ही तो होता है 'मेरे' का फैलाव। मेरा नौकर, मेरा मालिक, मेरी दुकान, मेरा डाक्टर, मेरा इंजीनियर, मेरा वकील, मेरा पड़ौसी, मेरा देश—यह मेरे का फैलाव अंधियारे का फैलाव है। 'मेरा' जितना फैलेगा स्वयं के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शुद्ध अस्तित्व का दीया उतना ही खोता चला जाएगा। यदि जानना चाहते हो तो स्वयं को, यदि उघाड़ना चाहते हो अपने आपको, तो सम्मोहन को हटाओ। 'मेरे' को कम करो। 'मैं' ही रहे, मेरा नहीं।

जिन्हें आप कहते हैं मेरा, जरा उनके रिश्ते की पावनता तो परखो। जिसे आप मेरा कहते हैं, और खुशियां मनाते हैं, उनके लिए तालियां बजाते हैं, वे ही कल गालियां देने लगते हैं। आपका 'मेरा' भी खतरे में है। आपका 'मेरा' भी दो कोड़ी का है। वह सपने से ज्यादा कीमती नहीं है। आपका 'मेरा' सपने में रोता है, सपने में हंसता है। आखिर जिंदगी में भी तो इतना ही है। कुछ हंसी ख्वाब और कुछ आंसू, उम्र भर की यही कमाई है। सपने बनाते रहे और टूटे सपनों के लिए रोते रहे। इस 'मेरे' के सम्मोहन ने हमारे हर भविष्य को बिगाड़ा है। अतीत आंसू बन रहा है और भविष्य सुन्दर सपना। हम जीते हैं दोनों के बीच। आंसू और सपने के बीच का सेतु ही हमारा जीवन है। आखिर मौत के समय पाओगे स्वयं की जीवन यात्रा को मरुस्थल की यात्रा। यात्रा करने में काफी समय लगा, काफी थकान हुई, पर हाथ क्या लगा? रेती।

जब यहां कुछ हाथ लगने वाला नहीं है, तो आप किसको मेरा मान रहे हो? क्या मकान को मानते हो? क्या मकान आपका है? जिस घर में आप रह रहे हैं, हो सकता है उस स्थान पर पहले महल बना हो। आज आपका अपना मकान है। हो सकता है कल वहां झोंपड़ी बन जाये। परसों वही मरघट बन जाये। ये सारे महल-मकान सरायें हैं। कल कोई और ठहरा था, आज कोई और ठहरा है, कल कोई और ठहरेगा। दुनिया में कहीं एक फुट भी ऐसी जगह नहीं है, जहां अब तक कम से कम दस मुर्दे न जले हों या न गड़े हों। तब मेरा कहां, सम्मोहन कैसा?

एक राजमहल में एक फकीर पहुंचा। राजा से बोला, मुझे यहां ठहरना है। राजा ने कहा, फकीर साहब! यह राजमहल है, सराय नहीं। फकीर बोलने लगा, यह सराय ही है, राजमहल नहीं, फकीर के उत्तर से राजा चौंका। पूछा, सराय कैसे है?

फकीर ने कहा, तेरा पड़दादा कहां रहा? राजा बोला, इसी महल में। फकीर ने कहा और तेरा दादा? राजा बोला, वह भी इस महल में। फकीर बोला, और तुम? बोला, इसी महल में।

फकीर चिल्लाया, अरे, जिस महल में इतने-इतने मुसाफिर रहकर चले गये, वह सराय नहीं तो और क्या है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा की आंख तत्क्षण खुल गयी। क्या आपकी भी खुली? जो अमूढ़ हैं, उनकी खुली। मूढ़ के तो बात पल्ले भी न पड़ी। जिनकी आंख खुली, उन्हें धन्यवाद पर वे केवल बाहर की वस्तुओं से ही 'मेरे' का भाव न छोड़े। मेरे का संबंध भीतर से भी छोड़े। 'मेरे' का सेतु तोड़ने के लिए सूत्र याद करें—

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागे है मेरा।

याद कर लो 'मेरा मुझ में कुछ नहीं'। कुछ भी नहीं है यहां मेरा। बाहर का सम्मोहन तो मात्र ऐसा है, जैसे नौका में पानी भर आया। जो पानी को कहेगा, मेरा पानी। उसकी नौक डूब जाएगी। सोच लो, मेरा मुझ में कुछ नहीं। यह पानी मेरा नहीं है। ऐसा सोचेंगे, तभी तो आप पानी को नौका से बाहर उलीचेंगे। इसलिए जिन-जिन से भी सम्मोहन है, उन्हें अपने जीवन की नौका से पानी की तरह उलीच डालो।

जो लोग समझ जाते हैं कि यहां मेरा कुछ भी नहीं है, वे शरीर के लिए भी ऐसा नहीं कहते कि मेरा शरीर। शरीर है कहां मेरा! शरीर तो पांच भूतों का है, पृथ्वी का है, जल का है, तेज का है, वायु का है, आकाश का है। इसमें मेरा क्या है? ये सब तो पराये हैं। जब मैं नहीं था तब भी ये तो थे, जब में नहीं रहूंगा, तब भी ये रहेंगे। तब इसमें मेरा क्या है। ज्यों-ज्यों आप गहरे जाते जाएंगे त्यों-त्यों आप 'मेरे' से छूटते चले जाएंगे। लगेगा, यह देह मेरी नहीं है, ये विचार मेरे नहीं हैं, यह मन भी मेरा नहीं है। मेरा तो केवल साक्षी भाव है, द्रष्टा-भाव है, खुद में खुद का चलना है।

एक जबरदस्त योगी हुए आनंदघन। उनके पास कोई महारानी आई। कहा, योगीराज! मेरा पति मुझसे नाराज है। कोई ऐसा तावीज दीजिये, जिससे मेरा पति मुझसे राजी हो जाये। आनंदघन ने कागज का टुकड़ा उठाया। उस पर कुछ लिखा और रानी को सौंप दिया। रानी ने उसे तावीज में डालकर हाथ में बांध लिया। संयोग ऐसा बना कि राजा रानी से राजी हो गया। दोनों का वापस मन मिल गया।

रानी की सहेलियों को रानी के प्रति राजा का नम्र व्यवहार देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने रानी से उसका कारण पूछा। रानी ने कारण ताबीज बताया। ताबीज खोला। आनंदघन का लिखा कागज का टुकड़ा निकाला। पढ़ा तो रानी भी स्तब्ध रह गयी। लिखा था 'राजा रानी दोउ मिले उसमें आनंदघन को क्या?'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा और रानी को मिलना है तो मिले, बिछड़ना है तो बिछुड़े, पर आनंदघन उसमें क्यों जुड़े? राजा रानी के आकर्षण और विकर्षण में आनंदघन का कैसा सम्मोहन।

यह सम्मोहन ज्यों-ज्यों घटता चला जाएगा। त्यों-त्यों आपका असली रूप निखरता चला जाएगा। मेरे का लगाव जितना कम होगा 'मैं' उतना ही उभरेगा। आप पहचानते चले जाएंगे— 'कोहम्! हूं कोण छूं, मैं कौन हूं। अभी पता नहीं है कि मैं कौन हूं। अभी तो यही पता है कि मैं इंजीनियर हूं। इंजीनियरी तो आपका धंधा है। आप इंजीनियर हो नहीं सकते।

कोई पूछता है आप कौन हैं। आप कहते हैं मैं फलां का बेटा हूं। अरे! हद हो गई! वह यह कहां पूछता है कि आप किसके बेटे हैं! आप कहते हैं, बौद्ध हूं, हिन्दू हूं, मुस्लिम हूं, ईसाई हूं। मैं ब्राह्मण हूं, क्षत्रिय हूं, बनिया हूं।

कहा, आपने अपने बारे में बहुत कुछ कहा, पर सही एक भी नहीं। ब्राह्मण तो आप का कुल है, हिन्दू तो आपका धर्म है। आप कौन हैं? कुछ अपनी कहो भाई! आप कहेंगे मैं, मैं तो...! अब आपको समझ आएगी कि मैं, कोई और चीज है। इन सबसे परे है। 'मैं' हूं वहां, जहां दूसरे से राग के नाते नहीं है, सम्मोहन का लगाव नहीं है। 'मेरे' के छूटते-छूटते 'मैं' बचता है। ज्यों ही हटेंगे 'मेरे' के सारे बादल, वहीं प्रगट होगा 'मैं' का सूरज, जीवन के आकाश में।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जहर घुले परिवेश में

संसार को गहराई से निहार रहा हूं। होश की कसौटी मेरे हाथों में है। उसी कसौटी पर कस रहा हूं इस कसमसाते संसार को। कई दृश्य सामने आते हैं, रहते भी हैं और चले भी जाते हैं। परिवर्तन की इस कलचक्की में मैं भी हूं। मेरा वर्तमान अतीत की सीढ़ियों पर पांव बढ़ा रहा है। भविष्य की प्रतीक्षा है। भविष्य वह है जो कल्पनातीत है। भविष्य वह सब कुछ ला सकता है, जिसकी हमने कल्पना भी नहीं की होगी। समय चल रहा है, पवन-चक्की की तरह।

बहुत बार मैं अपने बारे में और अपने साथियों के बारे में सोचा करता हूं। ज्यादा उम्र तो नहीं है मेरी, पर अतीत की उम्र का कोई हिसाब भी नहीं है। मेरी जन्म-कुण्डली तो मेरी उम्र पच्चीस वर्ष ही बताती है, पर मैं मानता हूं संख्यातीत।

आप जो उम्र का हिसाब लगाते हैं, वह शरीर की उम्र है। मैं उम्र देखता हूं उसकी, जिसके कारण शरीर बना है, खड़ा है। मेरी नजर आत्मा की पगडंडी पर टिकी है। आत्मा की उम्र तो अनन्त है। सोचता हूं उसके जन्म के बारे में, उसके बचपन और यौवन के बारे में। क्या अब वह बूढ़ी हो चुकी है? जब तक बचपन और यौवन का ही अता-पता नहीं है, तब तक बुढ़ापे की छानबीन कैसे हो पाएगी! बुढ़ापा और बचपन तो बाद में, अभी तक तो उसका जन्म भी अंधियारे की गुफा में खोया पड़ा है।

मैं टोह रहा हूं आत्मा को, उसकी उम्र जानने के लिए। आत्मा की उम्र वास्तव में मेरी अपनी ही उम्र है। कितने जनम हो चुके हैं इसके! कितनी है इसकी उम्र! अनन्त जन्मों की कहानियां उस पर लिखी-खुदी हैं। इसलिए संसार में न तो कोई अबोध है, न कोई छोटा है, न कोई बड़ा है। आज जिसे आप छोटा और बच्चा कहते हैं और उसकी उपेक्षा करते हैं, वह बहुत बार बूढ़ा हो चुका है।

उम्र के लिहाज से छोटा हर क्षेत्र में छोटा ही माना जाता है और बड़ा हमेशा बड़ा ही माना जाता है। छोटा अच्छी सूझ भी देगा, तो भी उसे डांट मिलेगी। पता नहीं, छोटा होना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसार में कौन-सा जुल्म है। बड़ा हमेशा स्वयं को बड़ा मानता है। शायद यह उसकी अहं-भूमिका हो। स्वयं चूकता रहेगा, पर अपनी चूक मानना उसने जन्म से ही नहीं सीखा, तो जीवन में क्या सीखेगा!

कहते हैं बड़ों ने सारी दुनिया देखी है। छोटे तो दूध-मुंहे हैं। पिता जब तक जीवित रहेगा, तब तक पुत्र हमेशा छोटा ही रहेगा। छोटा है, पर छोटापन खराब नहीं है। हम भी ठहरे छोटे, पर छोटे सूक्ष्मदर्शी होते हैं, दूरदर्शी होते हैं। बड़े सोचते हैं एक जनम की और छोटे सोचते हैं जनम-जनम की। जरा जोड़-घटाव करो और पता लगाओ कि छोटों ने दुनिया ज्यादा देखी है या बड़ों ने।

जब बड़े लोग छोटों की 'छोटा' कहकर उपेक्षा करते हैं, तो मेरा मन पिस जाता है। एक बार एक आचार्य अपने छोटे शिष्य से कह रहे थे कि छोटे सन्त के पास महिलाओं को नहीं जाना चाहिये। मुझे वह छोटा सन्त बड़ा सुयोग्य लगा। यदि आचार्य यह कहते कि सन्तों के पास महिलाओं को नहीं जाना चाहिये, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं थी। उनकी नमकीन दृष्टि तो जला रही थी छोटों को।

विपक्ष का काम ही यही है कि सत्तासीन व्यक्ति की कमियां दिखाओ। सोचने लगा, बड़े लोग अपनी बगल नहीं झांकते हैं। वे हमेशा छोटों को कसते हैं। बड़ा हो जाने के कारण बिचारा भूल जाता है कि वह भी कभी 'छोटा' रहा था।

मैंने आचार्य से कहा, आपने जो कहा, मैं उसका विरोध नहीं करुंगा, पर आप साठ वर्ष के हैं और आप जिसे कह रहे हैं, वह भी पचास वर्ष की है। पर क्या आपको विश्वास है कि आपकी गंगा हमेशा उजली रहेगी? आपको अपने बारे में पूरी गारंटी है? कहने लगे, तुम्हारा मतलब? मैंने कहा, साधुता उम्र में नहीं, जिन्दगी में होती है। जिसकी जिन्दगी में साधुता है, वह बीस वर्ष का हो, तो भी कोई खतरा नहीं है और जिसकी जिन्दगी में साधुता नहीं है, वह साठ-सत्तर वर्ष का होकर भी खतरे में है।

बताते हैं कि शुकदेव और उनके पिता दोनों ही पहुंचे हुए महर्षि थे। मगर दुनिया की निगाहों में दोनों में फर्क था। शुकदेव अपने गांव के तालाब के पास से गुजरे। महिलाएं वहां नहा रही थीं। उन्होंने शुकदेव को देखा। शुकदेव उधर से गुजर गये। कुछ ही दूरी पर आ रहे शुकदेव के पिता भी उसी तलाब के पास से गुजरे। महिलाओं ने अपने को छिपाने की कोशिश की। अपनी-अपनी साड़ियां ओढ़ने लगीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस दृश्य ने शुकदेव के पिता को झकझोर डाला। सोचने लगे, ये कैसी स्त्रियां हैं? मेरे युवा पुत्र/सन्त को देखकर उनमें कोई हलचल नहीं हुई, पर मुझ वृद्ध सन्त को देखकर हुई। उन्होंने महिलाओं से ही इसका कारण पूछा तो जवाब मिला, कारण साफ है। हमारे पास से आप दोनों ही गुजरे, किन्तु कारण जानने की इच्छा केवल आपके मन में हुई, शुकदेव के मन में नहीं। आपकी दृष्टि में स्त्री और पुरुष में भेद है, पर शुकदेव की दृष्टि में नहीं। जब तक व्यक्ति स्त्री और पुरुष में भेद की दीवार खड़ी करता रहेगा, तब तक उसका ब्रह्मचर्य आरोपित होगा, स्वाभाविक नहीं।

शुकदेव के पिता की होश की मुंदी आंखें खुल पड़ीं। जान गये कि यथार्थता कहां है। उम्र से आदमी बड़ा नहीं होता। उम्र तो आदमी को बौना बनाती है।

कहते हैं, लाओत्से बूढ़ा ही जनमा। बूढ़ा ही जन्मा यानी ज्ञान-वृद्ध होकर जन्मा। एक शिष्य है श्री प्रताप कोठारी। एक बार उसके दादा ने यों ही कह दिया कि यह तो अभी बच्चा है। यह क्या जाने! मुझे उसी समय याद आ गयी लाओत्से की। मैंने उसके दादा से कह भी दिया कि इसने दस-बारह वर्ष की उम्र में जो पाया है, वह आप साठ वर्ष की उम्र तक न पा सके। जीवन की चदरिया कब भीग जाये, कब रंग जाये, कब केसरिया हो जाये, इसका कोई भरोसा नहीं है। जीवनकी वास्तविकता उम्र में नहीं, उसकी जिन्दादिली और जीवन्तता में है।

छोटा, छोटा जरूर है। उसे रबर की भांति खींचतान कर लम्बा-चौड़ा नहीं किया जा सकता। पर यह मत भूलो कि जो रबर छोटा-सा दिखाई देता है, उसमें लम्बा-चौड़ा होने का सामर्थ्य सराबोर है।

जरा याद कीजिये, शंकराचार्य को, जिनका तैतीस वर्ष की उम्र में तो देहावसान ही हो गया। शायद आप सत्तर-अस्सी वर्ष की उम्र पाकर भी वह न पा पाये, जो शंकर ने तैतीस वर्ष की उम्र में पा लिया। उम्र का सम्बन्ध संसार से है, शरीर से है। गहराई में जाकर सोचता हूं, तो लगता है कि उम्र है असीम। संसार पाया है अनन्त। क्या कहीं कोई अन्त है उम्र के आकाश का? जो अन्त दिखाई देता है, वह शरीर का है, क्षितिज का है। पर वह सत्य नहीं, दृष्टिभ्रम है।

अरे उम्र! क्या उम्र से ही कोई छोटा-बड़ा हो गया। बहुत बार तो बड़ों को छोटों से भी बदतर हुआ पाता हूं। हां, यदि कभी बड़े-बूढ़े पथभ्रष्ट न होते, थिर रहते, तो मान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेता कि बड़ा शत-प्रतिशत बड़ा ही होता है हर दृष्टि से। मैं तो सोचता हूं कि छोटे में भी बड़प्पन मिल सकता है और बड़े में भी छोटापन। बीज में वृक्ष झांको और वृक्ष में बीज। छोटापन बीज है। बड़ और बड़प्पन उसका विस्तार है।

सत्य तो यह है कि बच्चे और बूढ़े में कोई मुद्दे का फर्क ही नहीं है। जो काम बड़े करते हैं, वही छोटे करते हैं। जो फर्क है, वह समझने में है। आज आप जो बुढ़ापे में कर रहे हैं, उसके बीज छोटेपन में ही बोये गये हैं। आपने तो लड़के के पच्चीस साल का होने के बाद उसका ब्याह रचा, मगर उस लड़के ने ब्याह का मजा छोटेपन में ही ले लिया, गुड्डे-गुड्डी का ब्याह करके।

सचमुच, संसार में कोई अल्पवयस्क नहीं है। सब समवयस्क हैं। हमारा सहअस्तित्व है। इसलिए छोटों पर अविश्वास की भावना मत लाओ। बड़ों का छोटों के प्रति अविश्वास है, उपेक्षा है, इसीलिए तो युवा पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी वालों में दूरियां बढ़ती हैं। तकरारें जनमती हैं।

मेरी सोच के अनुसार तो छोटों के सामने ऐसी कोई बात ही मत कहो, जिससे उन्हें बुरा लगे, उनका उत्साह टूटे। छोटों के साथ भी, बच्चों के साथ भी अत्यन्त सभ्य, नम्र और सम्मान भरा व्यवहार होना चाहिये। विनयशीलता छोटों का धर्म है और आत्मीयता बड़ों का। उपेक्षा अधर्म है, अव्यवहारिक है। ठीक है, छोटों की आप उपेक्षा कर लो, उसे डांट लो, फटकार दो, मार लो, वह छोटा है, इसलिए कुछ बोलेगा नहीं, पर सोचेगा जरूर। भीतर ही भीतर क्रान्ति के स्वर उभरेंगे।

आप द्वारा लगाया जा रहा प्रतिबंध उसके जीवन को चमन न कर पायेगा। प्रतिबंध विकासक नहीं है। वह तो अवरोधक है। जीवन का सही विकास प्रतिबंध से नहीं, अपितु सहजता से होता है। प्रतिबंध कानून है और जहां-जहां कानून है, वहां वहां बचने-बचाने के रास्ते ढूंढे जाते हैं। सहजता जीवन-विकास का प्रथम सूत्र है। नदी को नदी रूप में रहने दो। उसे रोकने की चेष्टा मत करो। वह रुकेगी प्रतिबंधों के दायरों में। इससे वह न तो फैलेगी, न बढ़ेगी। वह सूक जायेगी। व्यक्ति का सहज स्वभाव उसे जिस मार्ग पर ले जाना चाहता है, उसे उसी मार्ग पर जाने दो। यदि ऐसा न हुआ, तो वह दमित होता चला जायेगा। दमन प्रगटन से ज्यादा बुरा है।

आर्द्रक कुमार स्वयं को कितना भी प्रतिबंध में रखे, बचने-बचाने के रास्ते ढूंढे, पर आखिर विजय उसके तत्कालीन सहज स्वभाव की होती है। यदि वर्तमान स्वभाव संसार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की ओर अंगड़ाई ले रहा है, तो हम कितनी ही चेष्टा करें, उसे विमुख नहीं कर पाएंगे। बलात् बाहर से विमुख कर भी डालें, पर भीतर से वह अपने स्वभाव के तांगे पर सवार रहेगा। बाहर से ब्रह्मचर्य साध लेगा, पर अन्तःकरण वासना के बवण्डर से घिरा रहेगा।

मैंने दोनों तरह के व्यक्ति देखे हैं। एक व्यक्ति ऐसा भी देखा है, जिसकी साधु बनने की इच्छा थी, किन्तु घर वालों ने जबरदस्ती उसकी शादी कर दी। एक व्यक्ति ऐसा भी देखा है, जिसकी शादी करने की इच्छा थी, किन्तु लोगों ने उसे जबरन संन्यास दिला दिया। दोनों ने स्वभाव के विरुद्ध काम किया। नतीजा यह हुआ कि दोनों ही घुट-घुटकर मर गये।

मुझे अब तक जो सबसे बढ़िया पुस्तक लगी, वह है 'सिद्धार्थ'। इसने जबरदस्त प्रभावित किया मुझको और मेरे विचारों को। मैंने इससे यही प्रेरणा पायी कि व्यक्ति का जीवन उसके अन्तरंग में छिपे-दबे रहे स्वभाव के अनुसार चलता है। वह यदि उसके विपरीत कोई काम भी करेगा, तो काम का अंतिम परिणाम हमेशा उसके स्वभाव के अनुकूल होगा।

हम सब संसार के अंग हैं। संसार का अपना स्वभाव है। जो लोग संसार के स्वभाव में हैं, वे निश्चयतः विभाव में हैं। उनका विभाव बदलना जरूरी है। बदलाहट कभी दबाव या प्रतिबंध से नहीं आती वरन स्वाभाविक रूप से आती है। व्यक्ति दुत्कारने से नहीं, पुचकारने से सुधरेगा। ठुकराने से नहीं, मुस्कुराने से सुधरेगा। बाहर के व्यवहारों में परिवर्तन दिलाने की कोशिश कम करो। करना है तो भीतर के विचारों में परिवर्तन दिलाने की कोशिश करो। भीतर में हुआ परिवर्तन बाहर के लिए शत-प्रतिशत प्रभावकारी होता है। दबाव से तो व्यवहार बदलाया जा सकता है, पर विचार नहीं।

व्यवहार एक राजनैतिक चाल है। विचार का अस्तित्व उससे जुदा है। दोनों की दोस्ती असलियत को जनम देती है। विचार और व्यवहार में द्वैत होने के कारण ही तो इन्सान के दो चेहरे नजर आते हैं। नकली चेहरे ज्यादा सामने आते हैं और असली चेहरे छुपाकर रख लिये जाते हैं।

क्या मिलिये ऐसे लोगों से, जिनकी सूरत छिपी रहे।
नकली चेहरा सामने आए, असली सूरत छिपी रहे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे लोगों से क्या मिलें, जिनकी असली सूरत छिपी रहती है और नकली सामने आती है। बाहर की सूरत से, बाहर के चेहरे से तो लगेगा कि इससे बढ़कर आपके लिए और कोई नहीं है, पर पीठ पीछे देखो उसका असली चेहरा—अन्तरंगीय सूरत। दंग रह जाओगे। स्वयं को ठगा महसूस करोगे। आप विश्वास न कर पायेंगे उस चेहरे के प्रति। कहेंगे, कैसा विचित्र है यह संसार! अनुभव करेंगे संसार की शरबत भरी प्याली में जहर का घोल।

मैंने कई बार ऐसा भी पाया कि असली चेहरे सामने आने के लिए लालायित रहते हैं, किन्तु उनके अगल-बगल घूमने वाले नकली चेहरे उन्हें दमित करते रहते हैं। यही नहीं, अपने नकलीपन का सेहरा भी असली चेहरे पर डाल देते हैं। असलियत, बिचारी बनी रहती है। घुटती रहती है। कली भीतर ही भीतर कुम्हला जाती है। किसे कहे वह अपने मन की व्यथा। यदि कहे भी, तो सिर-फुटव्वल की नौबत फिर तैयार। कहा सुनी, बात-बतंगड, गाली-गलौच, डांट-फटकार चालू।

खैर! अपने पैरों पर अगर कोई कुल्हाड़ी चलाए, तो उसकी बला से, लेकिन मातहतों के पेट पर लात मारना कहां का इन्साफ है? मैं तो जब ऐसा देखता हूं तो मेरा दिल दर्द से कराह उठता है। जिन्दगी में मैंने ऐसा माहौल देखा है, और सबको व्यथित हुआ पाया है। किसी के दर्द में स्वयं को दर्दी महसूस करना सबसे बड़ी आत्मसहानुभूति है। यह जीवन का आत्मीय धर्म है। किसी गिरते हुए को थामना, उसके आंसुओं को पोंछना, उसकी गलतियों को नजर अन्दाज करना—यही धर्म की सिखावन है।

कई बार सोचा करता था कि हमें दुश्मनों से हर पल जागृत और सावधान रहना चाहिये। मैंने अपने प्रवचनों में भी कई दफे कहा कि दुश्मन से सदा बचो। अब मैं कुछ और ही अनुभव कर रहा हूं। अब मैं यों कहूंगा कि जितना दुश्मन से बचो, दुश्मन से चेतो, उतना ही घर वालों से भी। जो पीड़ा और तड़पन दुश्मन देते हैं, घर वाले कभी-कभी उससे बढ़कर दे डालते हैं। दुश्मन जाहिर रूप में दुश्मन हैं। पर घरवाले छिपे हुए दुश्मन हैं। वे ऐसे दुश्मन हैं, जिनके लिये हम कुछ बोल भी नहीं सकते हैं। हम उन्हें दुश्मन भी नहीं कह पाते। वे जहर के प्याले पर प्याले पिलाते हैं। हम उन्हें पीते चले जाते हैं। वे घूंटें जहरीली होती हैं, पर हम कहां कह पाते हैं उन्हें जहरीली। कोई पूछे तो भी कहना पड़ता है— पानी पी रहा हूं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बुरी तरै सतायो
निजू हितू
कांई करां बात
परायां री।
परिताप दियो
इसड़ो दोस्तां!
हूंस गई
शिकायत करणै री
जो मन में ही
दुश्मन लोगों री।

घर वालों ने ही इस कदर सताया है कि दुश्मन का गिला ही न रहा। लोग बात करते हैं परायों की, और मैं बात करता हूं घरवालों की। जो भुक्तभोगी हैं, वे जानते हैं कि घरवाले भी कैसे सताते हैं। वे दावानल नहीं जलाते, अपितु धूनी जलाते हैं, सिगड़ी जलाते हैं। वे तलवारें नहीं चलाते, वरन चूंटिया बोड़ते हैं, ताने कसते हैं। रह-रह कर जलाते हैं। वे आदमी को उस आग में उलझा देते हैं, जो चावल की भूसी की होती है। यह वह आग है, जो आदमी को इस तरीके से झुलसाती है, सेकती है कि आदमी जीवन भर जलता है, पर अपनी धधकाहट या जलने के दाग दिखा नहीं पाता, किसी को जतला नहीं पाता। मैंने तो ऐसा ही अनुभव किया।

ऐसा माहौल गर्म काफी होता है, पर सहायक को मुनित्व की चदरिया ओढ़ लेनी पड़ती है। मुनित्व यानी मौन। निरीह पशु की तरह मूक बनना पड़ता है, कब्रिस्तान की तरह मौन अंगीकार करना पड़ता है।

मनुष्य अद्वैत है, पर जहां द्वैत संघर्ष चालू होता है, वहां किसी अद्वैत का बीच में प्रवेश करना माथापच्ची की ओर बढ़ाना है। आखिर आप बोलेंगे भी किसे? जिसे आप बोलना चाहते हैं, वह आपकी बात को गले उतारेगा, तब ना! वह आप के ही सिर पर चढ़ जायेगा। विश्वास न हो तो अजमाइश करके देख लो। आप यदि दर्दी दिल के प्रति सहानुभूति जतलाने के लिये दर्द देने वाले से कुछ कहेंगे भी, तो वापस यही जवाब मिलेगा, मैं जो कहता-करता हूं, वह सब उसकी भलाई के लिये ही।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक लड़के का पिता अपने लड़के से मिलने के लिये स्कूल गया। लड़का पिटता हुआ मिला। लड़का अपने पिता को देखते ही चिल्लाया, पापा! मैडम मुझे खूब मारती है। पिता ने कहा, बेटा! मैडम तुम्हारी भलाई के लिये तुम्हें मारती है। तो लड़का बोला, पापा! तो फिर आप भी मैडम की भलाई के लिये कुछ कीजिये ना!

भलाई के लिये! सामने वाले की तो खटिया खड़ी कर दे रहे हो, ऊपर से डींग हांकते हो भलाई की!

द्वैत-संघर्ष में किसी अद्वैत का दखल करना अधिक समझदारी नहीं है। समझदारी यही है कि दो के बीच तीसरा सम्मिलित न हो। वह मध्यस्थ बना रहे। सम्मिलित होना नासमझी है।

पत्ते की बात तो यह है कि नासमझी के किस्से ज्यादातर समझदारों के द्वारा होते हुए देखे जाते हैं। नासमझ तो नासमझी करेंगे ही, मगर समझदार भी जब नासमझी कर बैठते हैं, तो इससे बड़े आश्चर्य की बात क्या होगी। संसार के सात महान् आश्चर्य इस आश्चर्य के सामने नाटे-बौने लगेंगे। बच्चा घड़ा फोड़ दे, तो चलेगा। पर जब बड़ा आदमी घड़ा फोड़ दे तो चलेगा? देखा तो यह जाता है कि बच्चे के पैर से स्याही की दवात को ठोकर लग जाये, तो बड़े लोग कहते हैं, अन्धा है क्या, देखकर नहीं चल सकता? पर जब बड़े आदमी के द्वारा ठोकर लगती है तब? तब भी घट्टी में छोटा ही पिसेगा। बड़ा कहेगा, दवात किनारे नहीं रख सकते? दिन भर आलसी टट्टू बने पड़े रहते हो!

दूसरों को तो फटकार सकते हो, पर स्वयं को! जो व्यक्ति स्वयं की गलती को स्वयं की गलती मानता है, वह सत्य का अनुयायी है। उसने न्याय की तुला का सम्मान किया है। जो नहीं मानता, वह असत्य के बांसों की झुरमुट में रहता है।

मैंने एक बहिन को इतनी फटकारें सुनते पाया कि मेरा भी दिल पसीज उठा। मैं न देख सका उसकी संजीवन संवेदना। आखिर लोग क्यों बनाते हैं किसी के सच्चे जीवन को सड़नशील! सोचने लगता, ओह! लोग किस तरीके से दूसरों की जिन्दगी में जहर घोल डालते हैं। पर क्या किया जाए! सर्प जहर ही घोलेगा। अमृत स्वभाव होता तो अमृत घोलता। यहां वरदान देने वाले लोग नहीं मिलते, अभिशाप देने वाले भरे पड़े हैं।

जो जिन्दगी के अन्ध-अभिशप्त गलियारों में चांदनी की चन्दन-सी बौछार करता है, वही जीवन का सच्चा गुरु है, वही पिता है, वही सास-ससुर, वही अपने से बड़ा है। मगर जो लोग चन्दन से महकते और चांदनी से रोशन जीवन के बदरीवन में सर्प छोड़ने की चेष्टा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं, वे जीवन की उलझन हैं, समस्या है। जब समाधान ही समस्या बनकर उपस्थित हो जाता है, तो व्यक्ति ढूंढ नहीं पाता है जीवन के चौराहे में आगे बढ़ने का रास्ता। वह रोता है, घुटता है। क्या यही उसके भाग्य में लिखा है? क्या यह वह जरिया नहीं है, जो उसे अधर आकाश में ले जाकर अटका देता है?

व्यक्ति को तोड़ो मत। उसकी निष्ठा को धूमिल मत करो। एक बार घड़े को तोड़ देंगे, तो टूटे हुए घड़े को फिर उन्हीं सांचों में न ढ़ाल पाओगे। सोने के कंगन, घूंघरु अगर टूट जाये तो फिर से जुड़ सकते हैं, पर व्यक्ति चलता है निष्ठा से, प्रेम से। ये मोती हैं और मोती टूट जाने पर नहीं जुड़ पाते। वह प्रेम और आत्मीयता और ही है, जो पारे के पिण्ड के समान सौ टुकड़ों में टूट जाने पर भी जुड़ जाती है।

सचमुच, आज का इन्सान भीतर से दरक रहा है। उसके लिए जीवन के शाश्वत मूल्य धूल की कीमत के होते चले जाते हैं। संघर्ष में गर्क हो रहे हैं रिश्तों के मुर्दे। बदइंतजामी में फंसा इन्सान चाहता है ऐसी शान्ति, ऐसी तृप्ति, जो उसके आंसुओं को पोंछ सके, आत्मीयता के तौलिये से।

आज हम और हमारा समाज द्वन्द्व की अश्रुगैस पी रहा है। हम भीतर-ही-भीतर एक दूसरे से टूटते चले जा रहे हैं। माटी सूकती चली जा रही है और हम कंकरों में बिखरते चले जा रहे हैं। काश, लोग इस बात को समझ ले।

हां, जो लोग अन्तरद्वन्द्व में फंसे हैं, उनको मेरा कहना है कि वे द्वन्द्व से न भागें। द्वन्द्व जीवन का संग्राम है। उससे भागना नपुंसकता है, भगोड़ापन है। द्वन्द्व जीवन का जहर नहीं, जीवन का मन्थन है। बिना द्वन्द्व की पगडंडियों से गुजरे प्रशस्त रास्ता मिलेगा भी कैसे? द्वन्द्व से गुजरना तो तपश्चर्या है। इसे धैर्य से सहो। द्वन्द्व को आप जितना झेलोगे, उतने ही द्वन्द्व के पार उतरोगे। द्वन्द्व जीनव का परीक्षण है। यह कसौटी है। इसलिये जो लोग द्वन्द्व में उलझे हैं, वे द्वन्द्व से भागने की कोशिश न करें। वे तपें, जियें, मरें, खपें द्वन्द्व में। यही वह आग है, जो आपको सही सोना बनाएगी। आज नहीं, तो कल, पर एक दिन अवश्य।

कालचक्र देखिये। कृष्ण-पक्ष हमेशा शुक्ल-पक्ष की आशा को लिये आगे बढ़ता है। शुक्ल और कृष्ण काल-रथ के अगले-पिछले पहिये हैं। आपने द्वन्द्व सहा, आप सहनशील बने। जो लोग जिन्दगी में जितने उतार-चढ़ाव देखते हैं, वे उतने ही परिपक्व होते चले जाते हैं। ऐसे लोग ही होते हैं अनुभव-वृद्ध/ज्ञान-वृद्ध।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर जो लोग किसी को द्वन्द्व में उलझाते हैं, कहर ढ़ाते हैं, वे लोग वैसा न करें। कृत् कार्य का परिणाम भोगना पड़ता है। तुम किसी को तड़फाओगे, तो तड़फना ही पड़ेगा तुम्हें भी। हर व्यक्ति को आगे बढ़ने के लिये अपने कन्धे का सहारा दो। अपने कन्धे की टक्कर देकर उसे गिराओ मत। ज्योतिर्मय पुरुषों का यही सन्देश है।

हीरे को यों मत टूटने-बिखरने दीजिये। वह अखंडित है। उसे अखंडित ही रहने दीजिये। वह नापैद नहीं हुआ है। हां, धूल-मिट्टी चढ़ गई है। अपनेपन के जल से उसे धोओ, पोंछो। हीरे की दीप्ति निखर उठेगी। अगर उसे माटी में धंसाने की चेष्टा करोगे तो हीरा मात्र माटी का ढगला बनकर रह जायेगा। पर पता नहीं, ऐसा राम-राज्य आने में अभी कितनी देर है? क्या हम लोग जोखिम उठाएंगे बदइन्तजामी और अपसंस्कृति के बीच फंसे असहाय आदमी और स्त्री की इच्छा और सुन्दरता को सुरक्षित करने की। यदि हमने ऐसा किया, तो हमारा कदम समझदारी और सफलता का सधा हुआ कदम होगा। सहअस्तित्व के मधुरिम गीत गूंज उठेंगे इस बिलखाती-बलखाती दुनिया में।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्षणभंगुरता का आकर्षण

संसार एक आकर्षण है। जैसे पृथ्वी हर वस्तु को अपनी ओर आकर्षित करती है, वैसा ही है यह संसार। गुरुत्वाकर्षण संसार का निजी धर्म है। वह सबको अपनी ओर आकर्षित करता है, लुभाता है, खींचता है। वह आकर्षण और खिंचाव के लिए वाजबी-गैरवाजबी हर प्रकार का तरीका अपना सकता है। वह अपना घर हमेशा भरा-पूरा, फला-फूला देखना पसंद करता है। भले ही संयुक्त परिवार में मोर्चेबन्दी हो, खटपट हो, माथाकूट हो, पर अलगाववाद उसे सुहाता नहीं है। यही कारण है कि हजारों बार अकाल पड़ने के बावजूद, प्रलय-पर-प्रलय मच जाने के बाद भी संसार भरा-पूरा है। न आदि ढूंढ पाओगे, न अन्त- ऐसा है संसार का वृक्ष। कितनी पहुंच है इसकी! धरती के हर कोने में इसकी टहनी लटकी है।

इसीलिए तो संसार ने सब को जोड़ने का अनूठा पुरुषार्थ किया है। भले ही मृत्यु यहां नग्न-नृत्य करे, फिर भी जीवन अपना अस्तित्व बखूबी कायम रखे हुए है। यहां केवल घटाव और भाग का ही गणित नहीं है, जोड़ और गुणा का भी गणित है। जोड़ और गुणा भी इतना कि हर अंक से हर अंक को जोड़ा जा रहा है, गुणाया जा रहा है। एकी को बेकी से और बेकी को एकी से, जोड़-गुणन चालू है। धर्मी को विधर्मी से और विधर्मी को धर्मी से मिलाया जा रहा है। यह सारा संसार का कृतित्व है। आकर्षण उसका व्यक्तित्व है।

आपका दाम्पत्य-जीवन संसार का एक रचनात्मक और सृजनात्मक कार्य है। जुदे-जुदे एकों को मिलाकर उसे दो का एक अंग इसी ने दिया है। जरा सोचिये, कहां पुरुष और कहां स्त्री! क्या दोनों में कोई संबंध है? दोनों में बड़ा भारी फर्क है। फिर भी उसने आकर्षण का ऐसा जादुई डण्डा घुमाया कि दोनों एक-दूसरे से मिल गये। और मिले भी ऐसे कि एक के बिना दूसरा स्वयं को अधूरा और सूना महसूस करता है। इतना ही नहीं, दोनों एक दूसरे के प्रति इतने अधिक समर्पित हो जाते हैं कि एक दूसरे के बिना जी भी नहीं सकते। प्यार की भांग जो पी लेते हैं। उनकी जिन्दगी अपने लिए नहीं, एक-दूसरे के लिए ही बन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाती है। वे कसमें खा बैठते हैं सात-सात जन्मों की एक पल्ले से बंधे रहने की, उसी पल्ले में लटके रहने की। एक नग्मा मशहूर है—

सौ बार जन्म लेंगे, सौ बार फना होंगे।
ए जाने वफा फिर भी, हम तुम न जुदा होंगे।

आकर्षण कितना जबरदस्त कि जुदाई सुहाती ही नहीं है। उन्हें वह कैद प्यारी लगती है, कैद से रिहाई नहीं।

अब आप स्वयं सोचिये कि संसार का हम पर कितना प्रभुत्व है! हमें कैसा जाम पिलाया है! हमारी सारी जागरूकता और बोध-प्रक्रिया का प्रकाश ही छीन लिया। अब तो लगता है अन्धकार ही जीवन का शाश्वत प्रकाश है। यह बात नहीं है कि प्रकाश मिट गया। प्रकाश का अस्तित्व तो हर पल है, पर क्या करें जब दीये के पास बैठा व्यक्ति आखें मूंदे हुए है।

उजेरा नहीं, अन्धेरा है; नयनों में रैन-बसेरा है।

जब आंखों में ही रात बस गयी, तो प्रभात का दर्शन कैसे होगा? अंधेरे में उजाला तो हर कोई प्रकट कर सकता है, मगर संसार का हम पर ऐसा प्रभाव कि उसने उजाले में भी अंधेरे को जन्म दे दिया। संसार का यह अनोखा चमत्कार है। सात चमत्कार प्रसिद्ध हैं, इसलिए आप इसे आठवां चमत्कार कहेंगे, किन्तु मैं कहूंगा पहला चमत्कार, पहलों में भी पहला, सर्वोपरि, सबसे पहला, नहलों में दहला।

मेरे देखे, तो संसार का लक्षण आकर्षण है। वह हमें अपनी ओर करने का पूरा-पूरा प्रयास करता है। यह उसकी राजनीति है। अपने पक्ष में मिलाने के लिए, स्वयं को वोट दिलाने के लिए, स्वयं को जिताने के लिए, वह हर प्रकार की कीमत चुकाने के लिए कृत संकल्प है। यदि कोई उससे कटकर साधना करने बैठ जाता है, तो यह उसके मन की ऐसी हालत कर देता है, जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की। जन्म-जन्म से दबायी वासनाओं को उभार देता है। अगर कोई योगीराज ज्यादा स्थिर है, तो वह देवलोक चला जाएगा। वहां से देवियों, अप्सराओं, परियों को फुसला कर बुला लाएगा, ताकि उसके योगी मन में संसार के प्रति प्यार जगे, संसार के मायावी सौन्दर्य की वह प्रशंसा करे और पास आकर कहे प्रिये! अपना घूंघट उठाओ। दास हाजिर है तुम्हारी सेवा में।

चूंकि संसार बड़ा चालबाज है। इसलिए उसे सफलता मिल भी जाती है। बहुत-से लोग उसे मुंह की भी दे देते हैं। तो वे भगवान् बन जाते हैं। भले ही बने जाये भगवान, पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसार भागते चोर की चोटी ही पकड़ लेता है। वह और कुछ नहीं, तो उसका नाम ही फैला देता है। मूर्तियां बनाकर खड़ी करवा देता है। निराकार को आकार में ढाल देता है। लोग आते हैं, मूर्ति पूजते हैं, भगवान् की सेवा करते हैं और स्वयं के स्वार्थों तथा सुखों के लिए आशीर्वाद मांगते हैं। भगवान् तो करुणा-भण्डार होते ही हैं। लोगों को आशीर्वाद मिल जाता है। लोग फिर फलने-फूलने लगते हैं। संसार इसे अपना अहोभाग्य समझता है। कारण, लोगों का फलना-फूलना वास्तव में संसार का ही फलना-फूलना है। देखते नहीं हो, कितना खुश है संसार! खुजली खुजलाकर भी खुश है, मवाद को रिसते हुए देखकर भी खुश है भला, बुद्धिनिधान को कौन समझाए, कि तेरी खुशी के चन्दनवन में वेदनाओं के कितने अजगर पल रहे हैं। उसे समय ही कहां है विपरीत को समझने का? वह तो स्वयं ही आकर्षित है अपने आकर्षण-धर्म से, अपने अदबुदे कर्म से।

संसार हमें अपनी ओर खींचता है, सो तो ठीक है। किन्तु वह क्यों खींचता है, इस पर हमें कुछ सोचना चाहिये।

मुझे तो लगता है कि संसार हमें जितना अपनी ओर खींचता है, उतना ही हम भी संसार को अपनी ओर खींच रहे हैं। चुम्बक दोनों ओर से चूम रहा है। इसीलिए खिंचाव है, लगाव है।

संसार के साथ हमारा नाता सदियों से है। शायद शाश्वतिक है। इसके गर्भ में हम अब तक पता नहीं कितने अवतरे हैं, कितनी बार जन्म पाया है। इसकी गोद में हमने अब तक न जाने कितनी किलकारियां मारी हैं। पता नहीं, इसके घुटने पर कितनी बार हमने अपना माथा टेककर नींद ली है और कितनी बार चिता सजाई है। फिर भी मृत्यु कहां हो पाई है! गया कई बार, अनन्त बार, पर हर बार लौटकर वापस आ गया। भला जिसके साथ जन्मों-जन्मों का रिश्ता है, उसके प्रति आकर्षण क्यों न होगा!

दो दिन के रेल सफर में हम लोग किसी अनजाने आदमी से घुलमिल जाते हैं, अपने पेट की अकथ्य बातें भी कह डालते हैं, तो जरा सोचिये कि जिस संसार से हमारा जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध है, उसके प्रति हमारा आकर्षण कैसा होगा! कितना सघन होगा! कितना प्रगाढ़ होगा। अगर कोई उसे तरल भी कहे, तो भी कोई आपत्ति नहीं, पर वह तरलता पानी या तेल की नहीं है, वरन घी की है। यह वह तरलता है, जो तरलता में प्रगाढ़ता की कमीज पहने है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुछ भी हो, एक बात तय है कि संसार बड़ा आकर्षक है। किन्तु वह मधुरिम और शीतल ही हो, ऐसा नहीं है। आकर्षण केवल मित्र का ही नहीं होता, अपितु शत्रु का भी होता है। सत्य तो यह है कि मित्र से भी ज्यादा आकर्षण शत्रु का होता है।

हमारे दिल-दिमाग का यह एक स्वाभाविक गुण है कि वह सदा उसीके प्रति समर्पित रहेगा, जिसका उसे आकर्षण होता है। जब हम एकान्त में अकेले बैठे रहते हैं, तब हमारा मन कुछ-न-कुछ सोचता रहता है। वह जो सोचता है, वास्तव में किसी के प्रति आकर्षित होने के कारण सोचता है। उसके मन में या तो मित्र के भाव होंगे या शत्रु के। वह दो में से किसी एक के बारे में सोचता रहेगा। मित्र के विचार गायब होते ही शत्रु के आ जायेंगे, पर शत्रु के विचार निकालते दिमाग को झक-झोरना पड़ता है, समझाना पड़ता है, मनाना पड़ता है। उसे आप जल्दी से समझा भी न पाएंगे। वास्तव में यह उसका शत्रु के प्रति आकर्षण हो गया। इसलिए वह अपने सारे चिन्तन के कबूतर शत्रु के आकाश में उड़ायेगा।

शत्रु का आकर्षण वह आकर्षण है, जो व्यक्ति को सदा जागरूक और सचेत रखता है।

आकर्षण विपरीत का भी होता है। सच यह है कि संसार जीता ही है विपरीत के आकर्षण में। विपरीत के आकर्षण के संयोजक का नाम ही संसार है। विपरीत को आलिंगन देने का नाम ही विधर्म है और हमारा यह विधर्म ही संसार का धर्म है।

संसार जैसा जादूगर, संसार जैसा सर्जक दूसरा है कौन दुनिया में! इसकी उलटबांसियों से भगवान् भी चकरा जाये। वे भी इसकी माया के बोरे में कैद हो जायें। मान लें, कभी सरज लिया होगा भगवान् ने संसार को, पर सरजने के बाद उसे मिटाते भगवान् का भी खून-पसीना एक हो जायेगा। संसार के पास जब तक शकुनि जैसे नीतिकार बैठे हैं, तब तक वह भगवान् की हर विदुर-नीति को मात देता रहेगा। बिचारे शकुनि ने तो एक ही परिवार में महाभारत रचाया, संसार ने तो घर-घर में महाभारत को फैला दिया। हिम्मत हो, तो सामने बोलकर देखो, सिर फुटोव्वल तैयार।

संसार का मुकाबला करोगे? अरे यह बड़ा विचित्र कवि है, इसके फाके में मत आ जाना। यह आपके गोरे चेहरे को कभी भी कीचड़ से पोत सकता है और गधे पर चढ़ाकर अंधेरी-उजली गलियों में घुमा सकता है। यह गधे को घोड़ा बना सकता है और घोड़े को गधा। 'अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा' ऐसा है संसार।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहते हैं कि ऊंटों के ब्याह में गधे बैंड बजा रहे थे। दोनों एक-दूसरे के गुण बखान रहे थे। गधे ऊंट-वर को कह रहे थे अहो रूपम्, अहो रूपम्। क्या रूप है तुम्हारा! चांद जैसा मुखड़ा है! अरे! किसी हीरो से कम हो!

और आपको पता है ऊंट महोदय क्या कह रहे थे? वे भाईजान कह रहे थे, वाह! अहो ध्वनि! क्या सुरीली तान है! बुलबुल के तरानों से भी मधुर! संगीत के असली खजाने तो तुम्हारे ही पास हैं।

दोनों एक-दूसरे को ऊपर चढ़ा रहे थे, बिना सीढ़ियों के। संसार भी ऐसा ही है। संसार हमें ऊपर चढ़ा रहा है और हम संसार को ऊपर चढ़ा रहे हैं। बिचारे ऊंट पर गधे को चढ़ाते तो चल भी जाता। पर स्थिति बड़ी नाजुक है। गधे की बजाय ऊंट को बिचारे गधे पर चढ़ा दिया गया है। वह देखो जा रहा है ढेंचू-ढेंचू करता, भारी भरकम बोरा लिये हुए बौना गधा।

इसलिए मैं तो यही कहूंगा कि संसार की कविता को आप समालोचक बनकर पढ़ें, पाठक बनकर नहीं। ओस की बूंद को मोती की उपमा देना केवल कवियों का ही स्वभाव नहीं है, अपितु संसार का भी है। संसार चार्वाक् है। संसार से बड़ा कवि-मानस त्रैलोक्य में नहीं है। इसका रस, इसके अलंकार दुनिया के सारे काव्यशास्त्रों से ऊंचे हैं, जुदे हैं, अपने आप में अपने ढंग के हैं।

काव्य रसप्रद होता है, पर बोझिल भी होता है। हर वाक्य रसात्मक नहीं होता। हर काव्य में ढेर सारी पंक्तियां नीरस और भारभूत होती हैं। संसार भी एक काव्य है। इसलिए रसमय होते हुए भी नीरसता और बोझिलता इसमें भी है। पर पत्ते की बात यही है कि वह भारभूत होते हुए भी सरदर्द नहीं लगता। लोग उसे कंधे पर उठाए चलते हैं, आंखों में रमाए चलते हैं। दर्द की बोझिलता कौन चाहता है, पर क्या करे, उसका भार भी ढोना पड़ता है। जिन्दगी है, तो बीमारियां भी प्राणों में रसी-बसी होंगी।

संसार का आकर्षण-धर्म है ही ऐसा। आकर्षण चाहे सही हो या गलत—पर हर किसी को लुभाता है। क्या आपने किसी विरहिनी को नहीं देखा? प्यार सुख के लिए ही किया जाता है, पर विरह की वेदना भी उसी सुखकारी प्यार की ही एक अन्तर-अभिव्यक्ति है। आकर्षण की दृढ़ता मिलन में नहीं, विरह में है।

रामायण-काव्य का जन्म विरह की वेदना से हुआ। क्रौंच-दम्पति के विरह और मरण ने ऋषि को भी आकर्षित कर दिया। ऋषि, ऋषि होते हुए भी शाप दे बैठे। वे चार पांव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगे बढ़ गये ऋषि-मर्यादा से। क्योंकि उस विरह ने ऋषि को आकर्षित किया, व्यथित किया, ऋषि-दृष्टि को परिवर्तित किया।

विरह तब मूर्त होता है, जब एक राह दो हो जाती है, नदिया का एक प्रवाह दो अलग-अलग ढलानों में बहने लग जाता है। मिलन में साथ-साथ रहना है, विरह में अलगाव सहना है। आकर्षण दोनों में है।

मिलन-विरह के गीत बनते टूटते हैं आकर्षण-विकर्षण में। पुरुष और स्त्री मिलन-विरह के आयाम हैं। आकर्षण के यही दो पहलू हैं। संसार के भी ये ही दो अंग है। संसार का अस्तित्व है ही इन्हीं के कारण। सांसारिक आकर्षण-विकर्षण का सारा आधार इन्हीं से जुड़ा है। ये दोनों जीवन-रथ के दो पहिये कहे जाते हैं। कहते हैं कि एक पहिये से गाड़ी नहीं चला करती।

संसार की यह एक सहज लीला है कि पुरुष का स्त्री के प्रति आकर्षण है और स्त्री का पुरुष के प्रति। इस आपसी आकर्षण के नाते ही संसार चलता है। यह आकर्षण स्वधर्मी नहीं है। यह विपरीत का आकर्षण है। यह आकर्षण भी एक उलटबांसी है। पुरुष और स्त्री एक दूसरे के उलटे हैं, विपरीत हैं। और यह विपरीत का आकर्षण ही भटकाव है, माया है, मिथ्यात्व है, तृष्णा है, वासना है।

पुरुष कभी पुरुष को झांकता नहीं फिरता। पुरुष की पुरुष से दोस्ती हो सकती है, गलबांही हो सकती है, पर पुरुष कभी पुरुष के लिए न्यौछावर नहीं हो सकता। स्त्री कभी स्त्री के प्रति समर्पित नहीं होती। वह हमेशा पुरुष के प्रति ही समर्पित होती है। बहू कभी सास को साथ लेकर अपना घर अलग नहीं बसाती। पुरुष कभी अपने पिता को साथ लेकर अपना घर अलग नहीं बसाता। पति पत्नी को लेकर अपना घर बसाता है और पत्नी पति को लेकर। यह आकर्षण का परिणाम है। व्यक्ति अपने माता-पिता से अपना घर अलग बसाता है, मात्र स्त्री के आकर्षण के बल पर।

आकर्षण व्यक्ति को आकर्षक के प्रति समर्पित कर देता है। इसी के बलबूते पर ही तो लोग फिदा होते हैं। पुरुष आकर्षण को पाने के लिए संघर्ष करता है, अपने अधबुझे क्षत्रियत्व को जगाता है। स्त्री आकर्षण के प्रति समर्पित हो जाती है। समर्पण स्त्री का जन्मजात वैभव है। पर महत्व न स्त्री का है, न पुरुष का। महत्व मात्र आकर्षण और विकर्षण का है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्त्री के लिए स्त्री स्वधर्मी है और पुरुष के लिए पुरुष। पुरुष के लिए स्त्री विधर्मी है और स्त्री के लिए पुरुष। स्वयं के धर्म से भिन्न किसी धर्म का अस्तित्व ही विधर्मी है। यह ठीक वैसा ही है जैसे दूध और जल। जल में जल को मिलाना स्वधर्म है। जबकि दूध में जल का मिलाना विधर्म है। जल में जल को मिलाने का नाम मिलावट नहीं है, अपितु दूध में जल को मिलाने का नाम मिलावट है। जिन्होंने अपनी जिन्दगी में हंसदृष्टि/भेद-विज्ञान दृष्टि पा ली है, वे ही समझ सकते हैं इस मिलावट के रहस्यवाद को।

तत्त्वज्ञानियों ने स्वयं से जुड़ने का नाम धर्म दिया है। उनके अनुसार पर से जुड़ना विधर्म है। वे पर के आकर्षण को, पर के योग को, पर की शरण को, पर की आस्था को विधर्म ही मानते हैं। पर का आकर्षण मात्र विकर्षण है। वह आकर्षण भी विपरीत का है, विपरीत से है। जब खुद का खुद से आकर्षण होगा, खुद में खुद का विचरण होगा, वही ब्रह्मचर्या होगी। चालू भाषा में यही ब्रह्मचर्य है।

संसार तो आकर्षण-विकर्षण के बीच बहती-उफनती जलधारा है। हमारी नौका है मझधार में, अधर में। हमारा भविष्य अटका है भंवर में। शाश्वतता का किनारा है सागर के उस पार। आंखें उसे देख नहीं पातीं, क्योंकि इन्सान खड़ा है सागर के इस पार।

इन्सान उस पार को पाने के लिए पतवार खूब चलाता है। पतवार को चलाते-चलाते स्वयं पसीने से तर-बतर हो जाता है। थकावट से स्वयं को चूर-चूर महसूस करने लगता है। मैं चौंक रहा हूं इसलिए कि वह अभी तक भी कहीं पहुंचा नहीं है। पहुंचे तो तब, जब खोले नौका के लंगर। लंगर को आखिर बांधा खुद ने ही तो है। लंगर से उसे इतना प्यार हो गया है कि उसे खोलना तो दूर, उसे ढ़ीला करना भी उसके लिए झटके जैसा है। लंगर बंधन है और बंधन का आकर्षण मुक्ति के आकर्षण से कहीं ज्यादा प्यारा लगता है।

संसार तो बस इसी आकर्षण-विकर्षण के ज्वार-भाटे से सजा-घिरा दरिया है। जिसे समझना है संसार, वह समझे उसका आधार। संसार का पेण्डुलम डोल रहा है। डोलायमान दशा है इसकी। इसीलिए तो भटकाव की घड़ी चालू है। पेण्डुलम चलता है कभी दाएं, तो कभी बाएं। कभी आकर्षण की ओर, तो कभी विकर्षण की ओर। ध्यान से देखो पेण्डुलम को अधर में ही भटका है।

संसार का झूला गतिमान है, कभी इधर, कभी उधर। और जीव है अधर में। आनंद जरूर मानते हो झूलने में। पर सत्य यह है कि इन्सान स्वयं, स्वयं को ओझल करने की चेष्टा कर रहा है इधर-उधर के दायरे में, आकर्षण-विकर्षण की खींचातानी में।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आकर्षण सांसारिक जीवन में पदार्पण हेतु एक न्यौता है, लहरों में निमंत्रण है। विकर्षण तो संन्यस्त जीवन स्वीकार करने का अहोभाव है। आकर्षण है, इसीलिए हाथों में मेंहदी रचाई, बदन पर हल्दी लगाई, चंवरी सजाई, घर-गृहस्थी बसाई। विकर्षण इसके विपरीत है। सांसारिक कृत्यों से खिन्नता पैदा हो गई। संसार का राग और रस भाया नहीं, तो हमारे पांव उस संसार में जमे नहीं। वे उस दलदल से निकलने के लिए उड़ान भरने लगते हैं, जिसमें सारी दुनिया दबी पड़ी है, रची-बसी है। दिन में आंख मूंदकर अंधेरा किये हुए हैं।

यों तो आकर्षण हर किसी का हो सकता है। क्योंकि इसकी सीमा-रेखाएं खींची हुई नहीं है। आकर्षण का सर्वोपरि केन्द्र स्त्री है। पुरुष तो अपने आप में अपूर्ण है। उसके पास मात्र पौरुष ही नहीं है, वह अर्ध नारीश्वर है। वह आधा नर और आधी नारी है। उसके एक ही शरीर में आधा शरीर शिव रूप है और आधा शरीर पार्वती रूप है। हर पुरुष और हर स्त्री शिव-पार्वती रूप है। यही कारण है कि मनुष्य के शरीर में रहने वाले पुरुष के गुण-धर्म तथा स्त्री के गुण धर्म परस्पर आकर्षित हो जाते हैं। पुरुष और स्त्री का पारस्परिक आकर्षण वास्तव में समधर्मी गुणों का आकर्षण है।

एक बार यों ही जिक्र चल पड़ा कि इन्सान शाश्वत मार्ग को जानते हुए भी उस पर अपने कदम क्यों नहीं बढ़ा पाता है। मेरा ऐसा मानना रहा है कि आकर्षण ही वह बाधा है जो इन्सान को शाश्वत और सत्य मार्ग पर चलने से रोकता है। और उस आकर्षण में सबसे बड़ा आकर्षण उसका स्त्री के प्रति होता है। आखिर पुरुष का पौरुष वासना के कारण कलंकित और व्यथित है।

स्त्री-राग आकर्षण की प्रगाढ़ता का प्रतिनिधित्व करता है। मनुष्य संसार में रहता ही स्त्री राग के कारण है। व्यक्ति मां को छोड़ सकता है, पिता और पुत्र को छोड़ सकता है, धन और वैभव को भी छोड़ सकता है, किन्तु पत्नी को! मुश्किल है। सौ में निन्यानवें लोग मां-बाप से अलग घर बसाकर जी जाते हैं, पर पत्नी से अलग होकर जीने वाले लोग एक प्रतिशत भी नहीं हैं।

यौवन का उन्माद युवावस्था में तो हठीला होता ही है। बुढ़ापे में भी होता है। युवावस्था में तो चिड़िया की उड़ान होती है और बुढ़ापे में मेंढ़क की फुदफुदी। युवक यौवन की अंगीठी है और बुढ़ापा राख में दबा अंगार है।

हिसाब से ज्यों-ज्यों व्यक्ति बूढ़ा होता जाता है, त्यों-त्यों उसका स्त्री-राग और स्त्री-आकर्षण भी बूढ़े-से-बूढ़ा होना चाहिये था, पर ऐसा होता नहीं है। ज्यो-ज्यों बुढ़ापा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ढ़लता है त्यों-त्यों वासना जवान होती जाती है। ज्यों-ज्यों सांझ ढ़लती जाती है, त्यों-त्यों उमस और लालिमा बढ़ती जाती है।

आदमी बूढ़ा हो जाता है। फिर भी स्त्री-आकर्षण के जेल खाने से छूट नहीं पाता।

मैंने एक बार सर्वेक्षण करने की ठानी। कई बूढ़ों से बचकानी बातें भी कीं। परिणाम तो वही निकला जो मैंने सोच रखा था। लोग धर्मिष्ट हैं, दान करते हैं, समाज में नाम है। उन्हें पूछे, तुम अहिंसक हो? छाती ठोककर बोलेगा हां! मैं अहिंसक हूं। आप फिर पूछे, क्या तुम झूठे हो? कहेगा नहीं। मैं ईमानदार हूं। पर किसी को पूछे तुम अपने सिर पर हाथ रखकर बोलो कि क्या तुम ब्रह्मचारी हो? वह लजा जाएगा, आंखें शरमा जाएगी। उसकी शर्मिंदी आंखें बहुत कुछ कह जाएंगी।

एक दिन मैं किसी प्रवचन-सभा में गया था। सभा में एक आचार्य ब्रह्मचर्य के तार छेड़ रहे थे। बूढ़े खचाखच भरे थे। अपने प्रवचन के बाद आचार्य महाराज ने लोगों को ब्रह्मचर्य-व्रत लेने का आह्वान किया। उन्होंने कहा कि जिनकी उम्र साठ से ऊपर है, उन्हें तो ब्रह्मचर्य-व्रत ले ही लेना चाहिये। वे इन्तजारी करते रहे कि कोई बूढ़ा खड़ा हो और व्रत ले। पर एक भी बूढ़ा खड़ा न हुआ।

तो साठ से ऊपर हो जाने पर भी आदमी आकर्षण को क्षीण नहीं करता। वह आकर्षण को छोड़ते कतराएगा। यही कारण है कि एक बूढ़ा जितना रागी होगा, उतना एक बच्चा नहीं होगा।

दुनियाभर के व्रत लेने वाला भी ब्रह्मचर्य का व्रत नहीं ले पाएगा। पर जिसने ब्रह्मचर्य का नियम स्वीकार कर लिया, वह दुनिया का हर कोई व्रत ले सकता है। जो व्यक्ति काम-वासना की आग को बुझा देता है, वह धन्य है। कारण, उसने आकर्षण की दीवारें नहीं तोड़ी हैं, अपितु नींव ही उखाड़ने की चेष्टा की है।

इसलिए एक बात तय है कि जिसने जीवन में ब्रह्मचर्य को साध लिया है, वह संसार के प्रति सदा उदासीन होगा। उदासीन होगा यानी उसका आसन ऊपर होगा संसार से, संसार की वृत्तियों से।

जैसे लोग कहते हैं कि संसार से भूख मिट जाये तो पाप ही मिट जायेगा, क्योंकि आदमी पाप करता है पेट के लिए, पेट को पालने के लिए। वैसे ही मैं कहूंगा कि आदमी संसार में रहता है आकर्षण के कारण। अगर आकर्षण टूट जाये, तो संसार ही टूट जायेगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चूंकि संसार ही टूट जाएगा, अतः पापों के प्रति भी दिलचस्पी नहीं रहेगी। संसार में कोई मस्ती न आएगी।

एक बात और है कि आकर्षण में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक सक्रिय है। कामातुर पुरुष अधिक होते हैं, स्त्रियों की बजाय। इसीलिए प्राचीन ग्रन्थों में कहीं भी देखो, पुरुष को अधिक सावचेत किया गया है। उसकी भूखी-प्यासी नजरों को समझ लेने के कारण ही 'स्वदार-सन्तोष व्रत' का प्रावधान किया गया। स्त्री की तो एक पुरुष, एक पति के प्रति ही निष्ठा होती है। कारण वह सतीत्व को जीवन की अमूल्य सम्पदा मानती है। पर पुरुष का एक पत्नीत्व तो सदा खतरे में रहा।

जैसे लोभी आदमी को सोने और चांदी के कैलाश जैसे असंख्य पर्वत मिल जाये, तो भी कुछ नहीं होता, वैसा ही पुरुष के लिए है। उसकी वासना इतनी प्यासी है कि वह 'खाला केरी बेटी ब्याहें, घर में करे सगाई'। यही कारण है कि हजारों-हजारों स्त्रियों ने सतीत्व की लाज रखने के लिए जौहर दिखाया। पर क्या कभी कोई पुरुष दिखा सका? दिखाए भी किस मुंह से! उसी के भय से ही तो असंख्य माताओं ने खुदकशी की।

इसलिए अगर जिन्दगी में कुछ करना चाहो तो वह सीढ़ी गिराना जो आपको नीचे से ऊपर चढ़ाती है और ऊपर से नीचे लाती है। जाने-आने का चक्कर ही छोड़ दो, अगर एकबार ऊपर पहुंच जाओ तो पहुंचने के साथ ही सीढ़ी को खिसका देना, ताकि नीचे उतरने का सवाल ही पैदा न हो।

मैं व्यक्ति को संसार से मुक्त देखना चाहता हूं, पर उसे मारना नहीं चाहता। मेरा उस मुक्ति पर अनन्य विश्वास है, जो मरते वक्त नहीं, अपितु जीते-जी मिलती है। मेरा मानना है कि कमल की पंखुड़ियों की तरह कीचड़ से निर्लिप्त रहने का नाम ही जीवन-मुक्ति है। कमल की साधना जीवन की सही साधना है। रहो भले ही पानी में, पर ध्यान यही रखना कि पानी आपको न छू पाये। यदि ऐसा हुआ, तो यह संन्यास को गले लगाना होगा। आकर्षण और विकर्षण, राग और विराग दोनों से पार होने का नाम ही संन्यास है, वीतरागता है, जीवन-मुक्ति है। जीवन-मुक्ति का पाठ पढ़ने के लिए चलें हम तालाब के पास, जहां देखने को मिलेगी मुक्ति की प्रार्थना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यर्थ का फैलाव

जिन्दगी एक प्रतिस्पर्धा है। खुल्लें शब्दों में कहूं तो गला-घोंट संघर्ष है। जिन्दगी की यात्रा बड़ी लम्बी है। व्यक्ति चाहे जिस दिशा में अपनी आंख फैलाये, उसे धूल के अलावा कुछ दिखाई ही नहीं देगा।

जीवन की लम्बी-चौड़ी यात्रा कर गुजरने के बाद व्यक्ति स्वयं को थका-हारा, संतप्त और चिन्तित महसूस करता है। उसे अपनी यात्रा निराश और थकान भरी रेगिस्तान की यात्रा लगती है। जिन लोगों को ऐसा नहीं लगता, वे करीब-करीब भ्रम में हैं, धोखे में हैं। जिसे जीते जी ऐसा महसूस नहीं हुआ, उसे मरते वक्त तो जरुर होगा। ऐसा होने का कारण भी है।

इन्सान ने अपनी जिन्दगी में हर असार को सार समझ लिया है और हर सार को असार। नतीजा यह निकला कि वह सार तो कभी पा न सका, असार ही उसके हाथ लगा। इसीलिए उसकी जीवन-यात्रा रेगिस्तान की यात्रा बनी। उसकी जिन्दगी की गतिविधियां उसके लिये धूल-धमास भरी हुई।

वास्तव में इन्सान असार को ही बटोरता है, सार को तो नजर-अंदाज किया हुआ चलता है। हीरे को बटोर कर भी आखिर पत्थर को ही बटोर रहा है। रुपयों को इकट्ठा करके भी कागजों के बण्डल ही सजा रहा है। भवन खड़ा करके भी निर्मूल्य मिट्टी का ही ढांचा बना रहा है। जो भी किया, असार किया। जो भी हाथ लगा, असार हाथ लगा। सार वह है, जहां दुनिया के सारे असार छूट जाते हैं।

हमारी दृष्टि उलझी हुई है असार में। और असार का सारा सम्बन्ध बाहर से है। वह सब 'बाहर' ही है, जो अन्दर से अपना अलग अस्तित्व रखता है। अब तक जितना बटोरा, सब बाहर का ही बटोरा है। बाहर की कोई सीमा नहीं है। वह असीम है। सीमा होती तो आदमी उसका पार भी पा सकता, पर असीम का पार कैसे पाएगा? बाहर की कोई थाह भी नहीं है। वह अथाह है। उसका कोई अन्त भी नहीं है, वह अनन्त है। आकाश ज्यूं अनन्त है। पर हमारा जीवन सीमित है, उसकी थाह है, उसका कभी अन्त है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए आदमी बाहर को कितना भी बटोर ले, मरते दम तक बटोर ले, जन्मों-जन्मों तक बटोर ले, फिर भी बाहर को बटोर नहीं पाएगा। जिन्दगी भर धन कमा ले, सोने और चांदी के कैलाश रच ले, फिर भी न तो पाने की आशा पूरी होगी, न चाह बुझेगी और न ही बाहर की सीमा-रेखा मिलेगी। इन्सान भी है ऐसा कि उसे सोने और चांदी के शैल-शिखर मिल जाएं, दो चार नहीं, सौ-दो-सौ भी मिल जायें, तो भी उसे तृप्ति नहीं होगी। क्योंकि मन बड़ा लोभी है। ठग विद्या उसने जन्म-जन्मान्तर से सीखी है।

इसलिए मन की इच्छाएं हमेशा फैलती हैं। वह सारी दुनिया पर अपना अधिकार जमाना चाहता है, मानो दुनिया को उसी ने पैदा किया हो। हड़पने की गुंजाइशें तो बहुत हैं और एक दिन वह सारी दुनिया को हड़प भी सकता है, पर क्या करे, जीवन की डोर बड़ी छोटी है। अगर इन्सान की कभी मृत्यु न होती, तो उसका मन सारी दुनिया को एक-न-एक दिन जरूर हड़प लेता। न होगा नौ मन तेल, न राधा नाचेगी। इन्सान के हाथों में वह अमराई की मेंहदी रची हुई ही नहीं है। यह मन का बहुत बड़ा दुर्भाग्य है। मन की हर चाह को पूरा करने के लिए काश इन्सान अमर होता।

पर जब सत्य को गहराई से सोचता हूं तो लगता है कि अमरता भी इन्सान को तृप्त कहां करा पाती है। आखिर अमरता भी तो प्यास की एक कड़ी है, फैलाव का आयाम है। अमरता अन्तिम मंजिल नहीं है। यह तो फैलने की एक सफल कड़ी है। रावण की नाभि में तो अमृत इकट्ठा था। अमृत अमरता की अभिव्यक्ति है। अमृत पाकर आदमी शान्त नहीं होता, अपितु अमराई की ओट में राजनीतिक अशान्तियां ही ज्यादा फैलाता है। इसीलिए जब-जब भी इन्सान ने परमात्मा से अमरत्व का वर मांगा तो परमात्मा के लिये वह हमेशा उलझन ही बना। इन अमरों को मारने के लिए फिर परमात्मा को ही आना पड़ा। इसलिये जब विधाता किसी की भाग्य रेखाएं खींचता हैं, तो शेष रेखाएं तो बाद में बनाता है। पहली और आखिरी रेखा सबसे पहले खींचता है और वे रेखाएं जन्म-मरण की हुआ करती हैं।

परमात्मा मनुष्य की आन्तरिक कमजोरी जानता है। मनुष्य की आन्तरिक कमजोरी यह है कि उसे ज्यों-ज्यों सत्ता और सम्पत्ति मिलती है, त्यों-त्यों उसकी एषणा बढ़ती है। वह शान्ति से सो नहीं पाता, चैन की बंसी नहीं बजा पाता, आराम की ठंडी छांह में जी नहीं पाता। उसका तनाव और संघर्ष ज्यादा बढ़ता है। तनाव हमेशा तनाव को ही जन्म देता है। शान्ति हमेशा शान्ति को ही जन्म देती है। यह शाश्वत सत्य है—इसे हमेशा याद रखियेगा। दातार को जितना धन मिलेगा वह उतना ही बांटेगा, मगर कंजूस को जितना धन मिलेगा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह उतना ही बटोरता जाएगा। दातार कभी कंजूस नहीं बन सकता और कंजूस कभी दातार नहीं बन सकता है। सज्जन हमेशा सज्जनता के फूल बिखेरगा तो दुष्ट दुष्टता के कांटे ही छेदेगा। आखिर ऐसा क्यों होता है? यह इसीलिये होता है, क्योंकि मनुष्य का अन्तर-व्यक्तित्व ऐसा ही है।

मनुष्य तो फैलता चला जा रहा है जी-जीकर नहीं, अपितु मर-मरकर, संध-संध कर नहीं, अपितु टूट-टूट कर। अपनी चाह को, अपनी एषणाओं को मिटाने के लिए, उसकी आग को बुझाने के लिये, इन्सान जिन्दगी भर जूझता रहता है पर उसकी तृष्णा मात्र-मृगतृष्णा बनकर रह जाती है। वह पा-पा कर भी अपने को खोया-खोया समझता है।

आइने-से ख्वाब मेरे, रेज़ा-रेज़ा हो गए।
मैं तिलिस्मे-बेहिसी को तोड़कर निकला न था।
सिलसिला-दर-सिलसिला है, सब सराबे ज़िन्दगी।
ज़हर चखने का यह दोस्तों तजुर्बा पहला न था।

इन्सान ऐसा ही है, चेतना की कमी का जादू तोड़ नहीं पाता। तभी तो उसकी आशाएं आइने की तरह टूट-टू कर बिखर गई। और यह बिखरने का क्रम सदियों-सदियों से है, सदा से है। 'सिलसिला दर सिलसिला है सब सराबे ज़िन्दगी।' जीवन तो मृग-तृष्णा है और उसकी मृग-तृष्णा का सिलसिला जारी है। इस सिलसिले में कहीं यह धोखा मत खा जाइयेगा कि मैंने यह ज़हर का घूंट पहली दफा पिया हो। ज़हर चखने का यह पहला तजुर्बा नहीं है। हम विषपायी आदी हैं विषपान के।

जहर भी इतना पिया है कि अब तो जहर के बिना जिन्दगी की खुशियां अधूरी लगती हैं। तनाव का जहर बुरा ज़रूर है, पर उसे छोड़ने की कोशिश भी तो पूरी नहीं है। फल यह होता है कि हम संसार के मलवे में धंसते चले जा रहे हैं। मुक्ति की पगडंडी ओझिल हुई जा रही है। धन, वैभव, सत्ता, अधिकार से हम जुड़ते चले जा रहे हैं। अब ये हमारे अधिकार में नहीं है। इनका हम पर अधिकार हो गया है। ज़हर उस समय ज़हर नहीं रहेगा, जब हमारा इन पर अधिकार होगा। हमने ऐसा अभ्यास बना लिया है कि इनका बोझा हमें बोझा नहीं लगता, ठीक वैसे ही जैसे 'गोद' लिया बच्चा।

एक आदमी गधे पर चला जा रहा था। किसी ने पूछा, कहां जाते हो? बोला, जिधर यह गधा जा रहा है। पूछा, क्या मतलब? तो वह आदमी बोला, मतलब यह है कि मैं गधे को दायें चलता हूं, तो वह बांये चलता है। मैं सीधा चलाता हूं तो यह उल्टा चलता है और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जब उल्टा चलाता हूं, तो यह सीधा चलता है। इसलिए मैंने इसे चलाना-हांकना छोड़ दिया। जिधर यह जा रहा है, उधर ही मैं चला जाऊंगा। कम-से-कम फजीती तो नहीं होगी। लोग यह तो नहीं कहेंगे कि तुम गधे से भी गये बीते हो।

हम अपने बारे में सोचें कि हमारी यात्रा कैसी है? हम जैसा चाहते हैं वैसा गधा चलता है या जैसा गधा चलता है वैसा हम चाहते हैं। अगर आप गधे के आधार पर अपनी चाह बनाते हैं तो आपकी संसार में कोई मंजिल नहीं है, कोई किनारा नहीं है, कोई क्षितिज नहीं है।आप जिस मंजिल पर पांव रखेंगे वह मंजिल नहीं होगी, अपितु भटकन होगी। आपको हर किनारे के पार फिर किनारा मिलेगा। सागर के पार फिर सागर मिलेगा। क्षितिज के पार फिर क्षितिज मिलेगा। आपकी सारी यात्रा फैलाव की यात्रा होगी। आप पा-पा कर भी खोते जायेंगे। आपका पाना किसी दृष्टि से पाना होगा, पर वह पाना पाना नहीं, अपितु फंसाना है। आप सबको पा लेंगे, सारी दुनियां को पा लेंगे, मगर खुद को खो बैठेंगे। यही तो है संसार के फैलाव का प्रतिफल।

संसार का फैलाव यानी लोभ का फैलाव है। इच्छाओं का विस्तार है, मन को बढ़ावा है, दुनियां को प्रोत्साहन है। मनुष्य ज्यों-ज्यों उपलब्धियां अर्जित करता है, त्यों-त्यों उसका फैलाव बढ़ता जाता है। नदी में जितना पानी आएगा उसका पात्र उतना ही चौड़ा होगा। कहते हैं—

सुवण्ण रूप्पस्स उ पव्वया भवे, सिया हु कैलास समा असंखया।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि, इच्छा हु आगास समा अणंतिया।।

बड़ा सुन्दर सूत्र है यह। मानव की मनोवृत्ति इस सूत्र में झलकती है। कहा गया है, कदाचित् सोने और चांदी के असंख्य पर्वत भी हो जायें तथापि लोभी पुरुष को उनसे कुछ नहीं होता। क्योंकि इच्छा आकाश ज्यों अनन्त है।

हमारी इच्छाएं आकाश की तरह अनन्त हैं, यह केवल कहने भर को नहीं है, अपितु एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग है। मन तो लहर की तरह है। उसमें थिरकन है। बिना पैंदे के लोटे की तरह लुढ़कता रहता है और एक बात पक्की है कि लुढ़कने वाले को कभी कुछ मिलता नहीं है।

'रोलिंग स्टोन गेदर्स नो मास' जो टिकेगा ही नहीं वह पाएगा कहां से। जो व्यापारी अपने फैसलों को बार-बार बदलता रहता है क्या उसकी साख बाजार में जम पायेगी? जो मन लुढ़कता है वह लक्ष्य की वैशाखी के बिना चलने की कोशिश करता है। मन तो तृष्णा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और इच्छा का वह अन्धड़ है जिसके छोर का कोई अन्त नहीं है। पर हां, उसका अंतिम छोर अनन्त भी नहीं है। अनन्त के पार भी तृष्णा का क्षितिज है, हर क्षितिज के बाद क्षितिज है।

जिसे लोग परम सत्ता और ईश्वर कहते हैं, वे भी इससे मुंह खट्टा-मीठा कर लेते हैं। संसार की पैदाइश में इसी तृष्णा की भूमिका रही। जो लोग जानते हैं कि सृष्टि का निर्माण कैसे हुआ, वे बतायेंगे उसकी कथा को, जिसका प्रथम अध्याय तृष्णा से शुरु होता है।

तृष्णा कोई गले की प्यास नहीं है। यह मन की प्यास है। बताते हैं कि जिस दिन उस ईश्वर के मन में भी यह प्यास जगी, तृष्णा की अठखेलियां रंग लायीं तो संसार सरजा। प्यास तो तब की जगी होगी मगर अब भी बुझी कहां है। अब भी चालू है तृष्णा की आंख-मिचौनी का खेल। जगी होगी परमात्मा के मन में छोटी-सी प्यास, एक तन्हाई भरी तृष्णा, मगर वह जंगल की आग की तरह बढ़ती ही गई। संसार हमेशा बना ही रहा। कोई एक मरा तो चार ने जन्म पाया, संसार हमेशा फैलता ही गया और इस संसार के बहाने वास्तव में ईश्वर का फैलाव होता गया। वह विभु रेवड़ियों की तरह घर-घर में बंट गया। अब भी बंट रहा है। जब तक इस तृष्णा का बोध नहीं होगा तब तक बंटने-बांटने की प्रक्रिया संसार में शाश्वत बनी रहेगी।

जब प्राणी मात्र का जन्म ही तृष्णा के बीज के साथ हुआ है, तो उसकी जिन्दगी में तृष्णा का होना कोई अचम्भे की बात नहीं है। तृष्णा हमें खून से मिली है। हम तो मात्र तृष्णा के वंशज हैं। हमारे मां-बाप में भी तृष्णा थी, मां-बाप के मां-बाप में भी तृष्णा थी और उनके मां-बाप में भी तृष्णा थी, सबके मा-बाप में तृष्णा थी। इस दुनिया के पहले जो मां-बाप थे उनमें भी तृष्णा थी। यह संसार और कुछ भी नहीं मात्र हमारे प्रथम मां-बाप की तृष्णा का फैलाव है। जब तक तृष्णा जिन्दी रहेगी तब तक फैलाव जारी रहेगा। जिसने अपनी तृष्णा की लुग्दी बना दी, उसने सत्य को समझ लिया, अपने आपको पहचान लिया। वास्तव में इस स्थिति को पाने का नाम ही सम्बोधि है।

जिन्होंने अभी तक संबोधि की फूटी किरण भी नहीं देखी, वे संसार में फैलते चले जा रहे हैं। जैसे आसमान फैलता है, वैसे ही उसका संसार फैलता है। उसका आसमान किसी भी क्षितिज में छोर नहीं पाता, वह क्षितिजों के पार क्षितिज ही पाता है। उन्हें लोभ है माटी का, सम्मोहन है नश्वर का, आकर्षण है क्षणभंगुर का। उन्हें तृप्त कहां करा पाती हैं संसार की सम्पत्तियां। प्यास कहां बुझा पाता है सात समन्दर का नीर! वह यों प्यासा रहता है, जैसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जल में मीन। वह पानी पीकर भी यह सत्य-बोध नहीं कर पाता कि उसने जल-पान किया है। जल पी-पीकर भी अपने आपको प्यासा महसूस करता है। लोभ होता ही ऐसा है।

लोभ कंजुसाई का सुधरा हुआ रूप है। लोभी को कितना भी मिल ज़ाये, सोने और चांदी के कैलाश जैसे असंख्य पर्वत भी मिल जाये, तो भी उनसे उसका कुछ नहीं होता। कारण उसकी लालसा असंख्य की संख्या से भी पार है, आकाश ज्यूं कोरी है।

कदाचित सोने और चांदी के असंख्य पर्वत हो जाये। होते नहीं हैं, किसी ने देखे भी नहीं है। सोने के कैलाश जैसे पर्वत किसी ने अभी तक निहारे नहीं हैं। चांदी का हिमालय अभी तक किसी को देखने को नहीं मिला। इनका दर्शन तो विरल है। पर क्या मालूम हो जाये तो? हो जाये, भले ही हो जाये, सोने और चांदी के पर्वत हो जायें, तब भी लोभी आदमी को तृप्ति कहां!

लोभी आदमी को कैलाश जैसे हजारों स्वर्ण-पर्वत भी मिल जाये, तो भी वह तो चाहता है कि मुझे इससे भी ज्यादा मिले। जितना मिला है, उससे भी कुछ और मिल जाये। जहां मिला है, उससे भी कहीं और मिल जाये। जहां मिला है, जैसा मिला है, जितना मिला है, उससे कहीं और चाहिये, कुछ और चाहिये, कोई और चाहिये। कुछ-कहीं-कोई और चाहने का नाम ही संसार का फैलाव है।

कोहिनूर संसार का सबसे कीमती हीरा है। कितनी लड़ाइयां हुई उसके लिए! पर क्या जिसने पाया उसे सन्तुष्टि और तृप्ति पायी? वह तो घास के एक कोर में लगी आग की तरह और बढ़ती गयी, फैलती गयी। आखिर तृष्णा की दौड़ में तृष्णा ही जीत गई, इन्सान बीच में ही लड़खड़ा कर गिर पड़ा। हीरा अब भी है, पर राजे-महाराजे मर गये। तृष्णा ने अब तक कितने-कितने राजा-महाराजाओं के माथों पर इस हीरे के पत्थर की मारी। सबने मार खायी भी, पर अब तक कोई समझ न पाया तृष्णा की इस मार को।

आपने कभी देखा आकाश? वह देखिये आकाश। लगता है आकाश का वहां किनारा है। आकाश की सीमा-रेखा वह क्षितिज दिखाई देती है। पर क्या आकाश का वहां अन्त है? क्या कहीं आकाश के रंगमच का पटाक्षेप है? जहां अभी लगता है आकाश का अन्त, वास्तव में वहीं से अनन्त की यात्रा शुरु होगी।

सोचते हैं एक किलोमीटर आगे आकाश का अन्त हो जायेगा। वहां पहुंचते हैं तो लगता है कि आकाश तो एक किलोमीटर और आगे बढ गया। हम एक किलोमीटर और दौड़ते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। अगले क्षितिज के पास पहुंचते हैं, जहां हमें आकाश का छोर नजर आता है। पर यह क्या, ज्यों-ज्यों उसके करीब पहुंचने की चेष्टा करते हैं, त्यों-त्यों वह हमसे दूर होता चला जा रहा है, फैलता चला जा रहा है। हमारा मन, हमारा चित्त भी इसी तरह फैलता है। वह अणु रूप में आसमान जैसा विराट है। फैलाव उसका धर्म है। चाह क्षितिज का बाना पहने है। उसकी हर सीमा प्रवंचना है, धोखा है। कभी आप उसकी सच्चाई के बहकावे में मत आ जाइयेगा।

भिखारी भीख मांगता है। उसे पैदल चलकर भीख मांगना कठिन लगता है। सोचता है दिन भर टांगें तोड़नी पड़ती है। अच्छा हो, यदि मुझे सायकिल मिल जाये। संयोगवश उसकी यह इच्छा पूरी हो गयी। जब सायकिल मिल गयी, तो विचार आया कि स्कूटर मिल जाये। जब स्कूटर मिल गया तो कार की चाह जगी। पर क्या इतने में उसकी चाह मिट गयी? अब वह हवाई जहाज के लिए हाय-तोबा मचा रहा है।

वास्तव में सामान बदल गये, वाहन बदल गये, परिस्थितियां बदल गईं, जीवनकी गतिविधियां भी एक जैसी न रही, पर चाह और तृष्णा तो वैसी की वैसी रह गई। जैसी भिखमंगे के जीवन में थी, वैसी ही अब करोड़पति के जीवन में है।

मैंने सुना है, दो अध्यापक परस्पर बातचीत करह रहे थे। एक ने दूसरे से कहा, अगर मुझे बिड़लाजी की सारी फैक्ट्रियां, सारे मकान, सारी जायदाद, चल-अचल सम्पत्ति मिल जाये तो मैं बिड़लाजी से ज्यादा कमा सकता हूं। तो दूसरे अध्यापक ने कहा, क्यों बेवकूफ बनाता है। तूं बिड़लाजी से ज्यादा कैसे कमा लेगा? पहले अध्यापक ने कहा, यार! दो प्राइवेट ट्यूशन भी तो करूंगा।

मिल जाये, सब मिल जाये, बिड़ला की सारी सम्पत्ति मिल जाये, तो भी पाने की प्यास नहीं बुझी। और कुछ नहीं तो दो ट्यूशन करके भी आदमी अपनी सम्पत्ति को बढ़ाता रहेगा। सब कुछ मिल जायेगा, या सब कुछ खो जायेगा तो भी तृष्णा तो है जैसी-की-तैसी रहेगी, मुश्किल है उसकी ऐसी-की-तैसी करनी।

कई बार सोचा करता हूं कि साधु-सन्त लोग दुनिया को यही कहते फिरते हैं कि संसार बेकार है। तुम दीक्षा ले लो। बहुत लोगों के दिल में यह बात उतर भी जाती है और वे दीक्षा ले भी लेते हैं। वे त्याग देते हैं अपने चोले-पायजामे को और पहन लेते हैं साधुओं के बाने को। यह परिवर्तन तो जरूर हुआ। कम से कम बाहर से तो हो ही गया। पर आमूल-चूल परिवर्तन तो तब होता है जब असली परिवर्तन भीतर से होता है। यह बात नहीं है कि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गिरगिट के बाहरी रंगों के परिवर्तन का कोई मूल्य नहीं है। मूल्य अवश्य है, बाहरी शत्रुओं से रक्षा करने के लिये लाभदायक भी है, पर भीतर के शत्रुओं से स्वयं को बचाने के लिये भीतर में ही परिवर्तन चाहिये। बाहर का परिवर्तन द्रव्य-लिंग का परिवर्तन है और भीतर का परिवर्तन भाव-लिंग का परिवर्तन है।

अगर बाहर का परिवर्तन स्वीकार कर सको तो बहुत बढ़िया;अगर न कर सको तो भीतर का परिवर्तन अवश्य स्वीकार कर लेना। भीतर का परिवर्तन कौड़ियों के भाव का नहीं है। अमृत के भाव का है। भीतर का परिवर्तन करने के लिए इसलिए कहता हूं ताकि सिक्के पर मात्र मुहर न लगी रहे अपितु सिक्का स्वयं मोहर जितनी कीमत का हो, उतना ठोस हो, खरे सोने का हो। घिस भी जाये मोहर तो भी कोई फर्क न पड़े। कीमत तो आपने बचाकर ही रखी है मोहर के रूप में न सही, सोने के रुप में ही सही।

भीतर का परिवर्तन यह है कि जिसको हम छोड़ रहे हैं उससे उसका संबंध भी छूट जाये। उसके प्रति इतने वीतराग हो जाएं कि कभी उसकी वासना वापस मन में जगे ही न। अगर वासना बची रह गई, तृष्णा जिन्दी रह गई, आशा की भूख जगी रह गई तो बाहर का परिवर्तन मात्र खूंटे का बदलना होगा। इसके अलावा और कुछ नहीं। साधु का चोगा जरूर होगा, किन्तु साधुता की बांसुरी नहीं सुरसेगी। हाथ में इकतारा जरूर होगा पर संगीत नहीं जन्मेगा।

मैं देखता हूं कि अधिकांश लोग इस चोगे के परिवर्तन में असलियत से बहुत दूर चले जाते हैं। वे नाले में ही नहाते रहते हैं। यथार्थ की गंगा उनसे कोसों दूर रहती है। निर्माण की तृष्णा उनके पीछे लगी रहती है। मकान का निर्माण कराना छोड़ दिया तो क्या हुआ मंदिर, मठ, धर्मशाला, उपाश्रय और म्यूजियम का निर्माण प्रारंभ कर दिया। कपड़े बेचने बंद कर दिये तो क्या,पुस्तकें बेचनी प्रारंभ कर दीं। साड़ियों और चोलों को त्याग दिया तो क्या हुआ साधुओं के बानों का परिग्रह प्रारंभ कर दिया। चूंकि तृष्णा नहीं बदली इसलिए ऐसा होता है। आखिर तृष्णा कहीं न कहीं तो अटकेगी ही और अपने अटकने में व्यक्ति को लटकाये रखेगी।

पुराने राजाओं की घटनाओं को पढ़ता हूं तो लगता है कि उन्होंने जीवन की उस घड़ी में साधुत्व स्वीकार किया जब उनकी तृष्णा के भटकन का पैण्डुलम नीचे गिर पड़ा। जब उनकी तृष्णा की आग बुझ गई, राजशाही ठाठ-बाठ की नश्वरता जान ली तो निकल गये सीधे जंगल की तरफ स्वयं में तल्लीन होने के लिए, स्वयं को पहचानने के लिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिसकी तृष्णा मिट गई वह चैन की नींद लेता है। वह बालू के टीलों पर खुले आसमां के नीचे सो जाता है और अंगरक्षकों से घिरे सोने के छत्र के नीचे खड़े सिकन्दर को भी फटकार सकता है। वह कह सकता है कि जिस शान्ति को पाने के लिए तुम विजयश्री के घर-घर भटक रहो हो, वह मात्र तुम्हारी तृष्णा है। दुःख की शराब को सुख के प्याले में पीने की प्यास है। शान्ति तृष्णा में नहीं वितृष्णा में है, लोभ में नहीं संतोष में है। मखमल के गद्दों पर सोने के बाद भी तुम्हारी आंखों में नींद नहीं है जबकि वहीं मैं डायोजनीज रेती के टीलों पर भी आराम की नींद ले रहा हूं। मरुस्थल में भी शान्ति के झरनों में स्नान कर रहा हूं।

हम जिस तृष्णा और आशा के पीछे पड़े हुए हैं, वह सपने से बढ़कर और कुछ नहीं है। तृष्णा के बहकावे में आकर आप लोग प्राप्त को तलाक मत दीजिये। जीवन को कल पर मत टालिये। बाहर में भटकती हुई तृष्णा को अन्तरात्मा की आवाज सुनने के लिए प्रेरित कीजिये। अन्यथा आप जिन्दगी के हर कदम पर हार खाते जाएंगे और विजय की आशा को लेकर जीते रहेंगे। सपने लेते रहेंगे, उजड़ते रहेंगे पर आपकी कामना और वासना कभी ठंडी नहीं हो पाएगी।

यह संसार तो व्यक्ति को ऐसा उलझाता है कि वह उसे उलझन समझता ही नहीं। वह हर उलझन को लक्ष्य के करीब पहुंचना समझता है। अगर कोई हार भी जाये तो लोग उसे ढाढ़स बंधाते हैं, उसकी तृष्णा को कुरेदते हैं और कहते हैं इस बार हार गए तो क्या हुआ! घबराओ मत, अगली दफा जीत जाओगे और अगर अगली बार न भी जीत पाए तो कोई फिक्र नहीं उसकी अगली बार जीत जाओगे।

और सच कहता हूं इसी आश्वासन ने मेरे एक साथी को दसवीं में दस बार फैल करा दिया। हर बार फेल होता रहा और लोग अगले वर्ष पास होने की आशा बंधाते रहे और वह भी उसी आशा के बल पर हर बार परीक्षा देता रहा। पर पास हो कहां से जब पढ़ाई ही न करे तो। क्या कोरी आशा ही पास करा देगी? आशा के संजोने से व्यक्ति सफल नहीं होता। आशा के अनुरूप पुरुषार्थ करने से व्यक्ति सफल होता है। आशा मात्र बांधे रखती है और पुरुषार्थ बन्धनों के पार निर्बन्धों को देखता है, ग्रन्थों के पार निर्ग्रन्थों को निहारता है, क्षितिज के पार आकाश को ढूंढ़ता है।

यहां हम किसी को चाहे जितना आश्वासन दे दें कि तुम सफल होओगे, एक-न-एक दिन जरूर जीतोगे। पर होता ठीक इसके विपरीत है। अगर मैं रहूं तो यह कहूंगा कि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भैया! तुम चाहे जितना जीत लो पर एक-न-एक दिन हारोगे जरूर। यह सफलताओं का अहम् तुम्हें एक-न-एक दिन अवश्य असफल करेगा। थोड़े दिन गुजरने तो दो, अपने आप समझ में आ जाएगा कि समय अपना पासा कैसे पलटता है। यहां तुम जीत-जीतकर भी हार जाओगे और आखिरी दम में तुम हारोगे ही। सारे संसार को जीत लेने पर भी, दिग्विजयी और चक्रवर्ती बनने के बाद भी आखिर तुम हार जाओगे। क्योंकि तुमने अभी तक सुबह देखी, दोपहर देखी, सांझ के भी बेअनुभवी गीत सुने हैं पर रात का अंधियारा तुमने नहीं देखा है। तुम उससे अछूते रहे। तुम हार जाओगे उस समय जब रात का अंधियारा तुम्हें घेर लेगा। तुम असहाय रहोगे, बिल्कुल निरुपाय। वह हार ही तुम्हें सबक सिखायेगी कि जिन्दगी की हर जीत आखिर हार में बदल जाती है। तो तुम हार जाओगे आखिर उससे जिसकी स्वयं की कोई जिन्दगी नहीं होती। तुम हारोगे उस मृत्यु से जो स्वयं मृत है और जिन्दगी की खोज में तुम्हारे आजु-बाजु है।

इसलिए समझ लो कि सारी आशाएं और तृष्णाएं व्यर्थ हैं। संसार के फैलाव की आधारशिलाएं हैं। तृष्णा मात्र बोझा है। इस महाठगिनी को तो दूर से ही विदा दे दो। अन्यथा यह जल के बहाने मरीचिका में हमें फंसायेगी और हम मृग की तरह दुनिया के जंगल में दौड़ धूप करते रह जाएंगे।

दूध के बहाने यह पूतना जहर पिलाएगी। कन्हैया! जागो। तृष्णा और कुछ नहीं, मात्र स्वयं का स्वयं के साथ धोखा है। जिस क्षण यह बोध होगा कि हर आशा आखिर निराशा ही देती है, उसी क्षण कीचड़ में पड़ा हुआ कमल का बीज स्वयं को अंकुरित कर लेगा। तत्पश्चात् वह जीयेगा जरूर, यात्रा भी करेगा, मगर नीचे की ओर नहीं ऊपर की ओर; कीचड़ की ओर नहीं खुले आकाश की ओर। सूरज की किरणें हंस-हंसकर उसकी निर्लिप्तता और प्रफुल्लता को नमस्कार करेगी, बादल उस पर अमृत का छिड़काव करेगा और हवाएं अपने झोकों में उसे प्राण-वायु दे जाएगी। कारण, अब उसमें किसी तरह का शल्य नहीं है। वह निःशल्य है। यह उसके जीवन का अपूर्वकरण है। सच, इसी का नाम ही तो कैवल्य है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लाभ से लोभ की ओर

चाल जीवन का स्वभाव है, किन्तु सम्भलकर चलना जीवन का जागरण है। दुनिया का रास्ता काफी जोखिम भरा है। डर है कि कहीं व्यक्ति अपने आपको भीड़ में खो न बैठे।

दो दिन की ज़िंदगी में, इतना मचल के न चल।
दुनिया है चलचलाव का रस्ता सम्भल के चल।

यह दुनिया भी एक मेला है। जिधर देखो, मेला ही मेला! यहां हर किस्म की दुकान है। इसलिए यह मेला नहीं, झमेला है। सभी कुछ सजा है दुकानों में। हर मन चाही चीज यहां बिक रही है। पर अपनी चीज दिखाई नहीं देती। दिखाई भी दे तो कैसे? स्वयं तो भटका हुआ है मेले की रंगबिरंगी अठखेलियों में।

जो चाहो, वह सब यहां मिल सकता है, पर खुद को छोड़कर। जो मिलेगा वह मेरे का तादात्म्य लिये होगा, दो के बीच मेरे का सेतु होगा। 'मैं' कहां है मेले में! मैं को खरीदने चला मेले में, पर वहां मैं कहां! यह बोध कहां है कि मैं मेले में नहीं, अपने में ही हूं।

मेला यानी भीड़। मेला भीड़ है। मनुष्य भीड़ में है। पर भीड़ के बीच भी निपट अकेला है। और ये मन! मन अखबार जैसा है, जहां ज्ञापन कम, विज्ञापन ज्यादा है।

मनुष्य का मन तो छोटे बच्चे की तरह उमड़-घुमड़ रहा है। वह हर चीज को लेना/खरीदना चाहता है। न मिले तो हठ भी करने लग जाता है। सुबक-सुबक कर रोने भी लग जाता है। उसे खिलौना चाहिये। खिलौना कुछ चीजों का, पुर्जों का जोड़ है। बच्चा आकर्षित होता है जुड़े खिलौने की तरफ। कभी-कभार नहीं, अपितु रोजाना ही। बाजार से गुजरते समय वह हमेशा खिलौनों को लेने के लिए ठिठका करता है। इस खिंचाव का नाम ही सम्मोहन है।

मन बालक से कोई कम नहीं है। वह बालक जैसा ही है। मन तो लोकोक्ति है। कही हुई बात की पुनरावृत्ति/है वह मनुष्य के ढंग से नहीं चलता, अपितु लोक के ढंग से चलता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। इसलिए मन लोक-प्रवाह का एक अभियान है। पानी की तरह तरल है उसका स्वभाव। भीड़ भरे मेले में ले जाने के बाद मन का शिशु संयमित रह जाये, यह मुश्किल है। लोभी लालची जो ठहरा। हकीकत में मन बड़ा लोभी है। इसकी मांगें सफेद कागज पर सफेद खड़िया मिट्टी से लिखे आलेख हैं। सरकार इसकी मांगें पूरी नहीं कर सकती। मांग एक हो, तब तो पूरी भी हो जाये। यदि कोई आदमी आधी रात को सूर्य की मांग करे, तो पौ फटते-फटते उसकी मांग पूरी की जा सकती है। पर जिसकी मांगें एक पल में दिन की और एक पल में रात की होती है, उसकी कैसे पूरी हो सकती है। उसकी तो जोड़बाकी करने में गणित भी कतराएगा। उसकी तो एक दिन में ही असंख्यात मांगें हो गईं। वह सूर्य की रोशनी पाकर भी अंधेरी गुफाओं में ही भटकता है।

मन मनुष्य के पास तो एक ही होता है, मगर एक में भी विचारों की भीड़ भरी रहती है। कबाड़खाने की दुकान के पास से गुजरो, तो दुकान तो एक ही होती है, पर उसमें भरा होता है दुनिया भर का हर सामान। मन भी कबाड़खाना ही है।

मन की वृत्तियां ढेर सारी हैं। इसका संग्रहालय कितना लम्बा चौड़ा है। यही तो इसका संसार है। संसार का अर्थ ही होता है संग्रह। मन बहुतों का परिग्रहण करता रहता है इसलिए उसे संसार से लगाव है। इसका हर परिग्रहण क्षण-क्षण पाणिग्रहण करता है। अतः मन संसार की चाक है। संसार मन का घर है। यही उसके लिए मन्दिर है। मन की संग्रह-वृत्ति का नाम ही संसार है। वृत्ति अपने आप में संसार की अभिरुचि है। यह मन के तालाब में उभरी तरंग है। वृत्ति का जन्मना मन का कम्पना है। इसलिए निवृत्ति को महत्त्व दिया गया। निवृत्ति मन की कम्पनों से छुटकारा है। संसार की वृत्ति का नाम ही लोभ है और अलोभ में जीने का नाम ही निर्वाण है। लोभ संसार हैं और अलोभ निर्वाण। लोभ स्वयं को भीतर से बाहर लाना है और अलोभ स्वयं को स्वयं में बनाए रखना है। इसलिए लोभ का रास्ता अलग है और अलोभ का रास्ता अलग। एक मेले का रास्ता है और दूसरा घर का।

मेले की ओर जाना संसार की यात्रा है। घर की पगडंडी पकड़ना निर्वाण की याद है। मेले में जो लाभ दिखाई देता है, वह लाभ, लाभ नहीं, अपितु आत्मवंचना है। स्वयं का छलावा है। जहां दुनिया भर का लाभ हो जाये, किन्तु स्वयं की सिद्धि विलग रह जाए, तो वह लाभ कहां हुआ! दुकानदार के लिए तो लाभ ही शुभ है और ऋद्धि ही सिद्धि है। उसे प्रयोजन है केवल धन से, जीवन से नहीं। वह जीने के लिए धन नहीं कमा रहा है, अपितु धन कमाने के लिए जी रहा है। यों करके मनुष्य चंचल को बटोरने में शाश्वत को दांव पर लगा रहा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धन पर निगाहें निर्धन और धनवान दोनों की टिकी रहती हैं। निर्धन का पात्र तो खाली है ही, धनपति का भी खाली ही है। यदि धनपति का भरा हुआ हो भी, तो भी वह मानने को तैयार नहीं है। सन्तोष व्रत निर्धन ले लेता है, पर धनपति तो धन के पीछे जोंक की तरह चोंटा रहता है। ग्राहक ही उसकी जिंदगी है।

धर्मपूर्वक धन का अर्जन कठिन है। दुष्प्रवृत्ति के साथ कमाये हुए धन का दान, दान नहीं अपितु कृत पापों का पश्चात्ताप है।

लोभी के लिए तो धन ही प्राण है और धन ही परमेश्वर। 'धन आए मुट्ठी में, ईमान जाए भट्ठी में।' लोभी का सारा माल और सारी खुशियां बिल्कुल ऐसी हैं, जैसे गधे के सिर पर ताज और गंगुतेली को राज।

यद्यपि लोभ और लाभ अलग अलग हैं। पर दोनों एक ही गोद में पलते हैं। दोनों ही धनपति से जुड़े हुए हैं। जैसे-जैसे लाभ होता है, वैसे वैसे लोभ बढ़ता है। यह वृत्ति ही तो उसकी बी.पी. को असंतुलित करती है। भले ही वह इसे संतुलित माने। जबकि सन्तोष तृप्ति में है, तृष्णा में नहीं। यही निर्वाण का मार्ग है।

आम तौर पर आदमी चाहता तो है परमात्मा की पावनता और काम सारे करता है पतित होने का। पतित होने के लिए खुद और पावन करने के लिए खुदा। यह कैसा मजाक है!

अगर बटोरने में ही लगे हो तो बटोर भले ही लेना, लेकिन खुद को बटोरना मत भूलना। खुद को भूलना खुदा की अवहेलना है। कहीं ऐसा न हो कि दुनिया के तो सारे सामान बटोर लिये पर बटोरने वाला मालिक न बचे। ऐश्वर्य बटोरने में इतने रसमय मत हो जाना कि ईश्वर को ही भूल बैठे। आखिर यह ऐश्वर्य उस ईश्वर की ही बदौलत है।

मैंने सुन रखा है कि किसी घर में आग लगी। अकेला नौकर ही था घर में। नौकर चिल्लाया, बचाओ, बुझाओ। लोग दौड़े और भवन पर पानी, माटी फेंकने लगे। नौकर भीतर-बाहर आ-जा रहा था। भवन का सारा सामान वह बाहर ला चुका था। खबर मिलते ही सेठ नाक में दम भरे बिना दौड़ता हांफता बाजार से घर पहुंचा। भवन जला पर सामान को ठौर-ठिकाना मिला देख चैन की सांस ली।

सेठ ने पूछा, घर में और कुछ तो नहीं रहा।

नौकर बोला, जी, नहीं। मात्र टूटे-फूटे चम्मच हैं।

जा, उन्हें भी ले आ। दो चार रुपये तो मिल ही जाएंगे कबाड़खाने से। सेठ बड़बड़ाया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नौकर उन्हें भी बटोर लाया। सेठ ने कहा, अरे देख ले, कहीं कुछ और पड़ा हो कोने में।

चौतरफ भभकती आग देखकर भी नौकर ने आज्ञा का सम्मान किया। पर लौटा चिल्लाता हुआ, गजब हो गया, साहब! गजब हो गया। सेठ बोला, क्या हो गया?

साहब! गजब हो गया।

अरे, हो क्या गया?

मैंने कहा, माल बच गया, मालिक खो गया।

यानी?

नौकर ने कहा, यानी आपका लड़का तो भीतर ही रह गया। सामान बचाने के चक्कर में मैं तो भूल ही गया कि आपका बेटा कमरे में सोया है।

लोग चिल्लाये अरे! सेठ का इकलौता लड़का तो भीतर ही जल मरा।

हंसना मत। क्यों कि ये कहानी किसी एक घर की नहीं, अपितु घर-घर की है। यह कहानी तो मन की प्रतिबिम्ब है। कहीं आप भी लोभी मन के पीछे पड़कर सामान को बटोरने में ही मत लगे रह जाना। माल को बचाकर भी क्या बचा पाये अगर मालिक को खो दिया तो?

अगर बटोरने की ही आदत बन गई है तो भी आखिर कितना बटोरेंगे। लोभी इंसान को कदाचित् सोने के अरावली पर्वत और चांदी के हिमालय पर्वत भी मिल जाये, तो भी मन कहां भरता है!

कदाचित सोने और चांदी के अगणित पर्वत हो जाये। होते नहीं हैं, किसी ने देखे भी नहीं हैं। सोने का अरावली पर्वत भला किसे मिलेगा देखने को! चांदी का हिमालय भी किसने देखा! पर क्या मालूम हो जाये तो? हो जाये, भले ही सोने और चांदी के गिरिराज हो जायें, तब भी लोभी आदमी को उनसे तृप्ति कहां हो पाती है! उसे तो कैलाश जैसे हजारों स्वर्ण-पर्वत भी मिल जायें, तो भी वह तो चाहता है कि मुझे इससे भी ज्यादा मिले। जितना मिला है, उससे भी कुछ और मिल जाय। इसी को कहते हैं लोभ। यही है चाह का विस्तार।

कुछ और, कोई और, कहीं और की मांग ही लोभ की आधारशिला है।

आदमी की इच्छा और वासना आकाश जैसी है। आकाश की ओर देखते हैं, तो लगता है आकाश का अन्त तो यहीं पर है, क्षितिज पर ही है। पर कहां है उसका छोर! क्या आज

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तक किसी ने आकाश का किनारा पाया है? पा भी नहीं सकते। क्योंकि आकाश सत्य नहीं, मात्र अस्तित्व का भ्रम है। आकाश खालीपन का नाम है। अवकाश का पर्याय है।

चाह और लोभ में प्रवेश आकाश में प्रवेश जैसा है। चाह की पूर्ति के लिए प्रयत्न करना आसमान में थेंगले लगाना है। यों करके हाथ में थामी तलवार को आप आसमान में चला रहे हैं। अपनी ही परछाई को आप काटने मारने की चेष्टा कर रहे हैं। सावचेत हो सकें तो अच्छा है। परछाई को काटने के चक्कर में कहीं अपने हाथ-पैर मत काट बैठना।

मान भी लें, यदि कोई चाह पूरी हो गयी, तो उसका पटाक्षेप कहां हुआ! चाह-पूर्ति ही लोभ को प्रोत्साहन है। लोभ बिचौलिया है, दलाल है एक चाह को जन्माने में भी, उसे आपूर्त करने में भी। इसलिए केवल चाह ही असीम और अनन्त नहीं है, वरन् लोभ भी असीम अनन्त है। पैसे के पीछे केवल गरीब ही नहीं दौड़ता, करोड़पति भी दौड़ता है। गरीब जितना दौड़ता है, अमीर उससे भी ज्यादा दौड़ता है। समय का गरीब के पास अभाव है, तो अमीर के पास भी है। सब कोल्हू के बैल की जिंदगी जी रहे हैं। सब चलते जा रहे हैं। यात्रा जिंदगी भर होती है। पहुंच कहीं भी नहीं पाते।

चलने में भी इतना मचलना है कि जिंदगी केवल चलचलाव का रास्ता ही सिद्ध होती लगती है। आखिर चलते-चलते दुनिया से ही चले जाओगे, पीछे रहेंगे सिर्फ लूंटे कमाये ठीकरे।

आपके दादा ने खूब धन कमाया/बटोरा। खुद ने भोगा नहीं। सब पीछे छोड़ गये। पिता ने सबक न पाया। उसने भी धन कमाने में जीवन को दांव पर लगाया। सोना अभी तो कमा लूं बाद में काम आयेगा। भोगने का समय आये, उससे पहले मरघट का न्यौता आ जाता है। यों जिंदगी अतीत के खण्डहर और भविष्य की कल्पनाओं में ही बिदकी रह जाती है। कैसा आश्चर्य है कि अवतार, तीर्थङ्कर, बुद्ध, पैगम्बर होने के बावजूद भी मनुष्य आज तक भटक रहा है। खुद को भूला-खोया मनुष्य दुनिया को खोजने/पाने की लालसा वाला भटकेगा नहीं तो और क्या होगा?

भटकाव और कुछ नहीं, मन का ही हवाई महल है। मन के सरोवर में उठी एक लहर कई लहरों को अस्तित्व दे बैठती है। आप तालाब में एक छोटा-सा पत्थर फेंककर देखें। लहरें उठेंगी और पूरे तालाब को तरंगित कर देंगी। मनुष्य की भी यही दशा है।

प्रतियोगिता प्रतिस्पर्धा में भी तो यही होता है कि हर धावक दूसरे धावक को पीछे छोड़ता चला जाता है। आगे-से-आगे बढ़ते जाना उसका कार्य है। एक चाह पैदा हुई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वासना बनी, हम उसे पूर्ण करने का प्रयास करते हैं कि इतने में ही दूसरी चाह पल्ला थाम लेती है और पहली चाह धरी की धरी रह जाती है। यों मन ने तो ब्रह्मा की कार्यशैली को अपना लिया। निर्माण ही निर्माण ही करते जाओ। पैदल चलने वाला सायकिल की इच्छा लिये है, साइकिल वाला स्कूटर की, स्कूटर वाला कार की और कार वाला हवाई जहाज की इच्छा लिये है। कोई टिका नहीं है। सभी दौड़ रहे हैं। कहां दौड़ रहे हैं, इसका पता नहीं है। पर दौड़ रहे हैं। निरुद्देश्य इच्छाओं के पीछे दौड़ लगाना स्वयं की शक्ति का अपव्यय है। करवटें बदलने में सुबह शाम हो जाती है, शाम सुबह; जिंदगी आखिर यूं ही तो तमाम होती है।

जरा सोचिये, यदि भाग्य से हवाई जहाज मिल भी गया तो क्या इससे आगे की चाह नहीं होगी। चाह होती है उससे भी आगे की, राकेट पर बैठकर चन्द्रमा के सैर करने की। हम इसी संसार में यों घूमते हुए ही दिखाई देंगे। समय के पलटते भी कौनसी देर लगेगी! करोड़पति रोड़पति बन जाते हैं। राकेट वाले के लिए साइकिल भी लिखी हो सकती है। जीवन तो गाड़ी का पहिया है। ऊपर वाला हिस्सा नीचे और निचला हिस्सा ऊपर आता ही है। जिन सीढ़ियों से चढ़ा जाता है, उससे नीचे भी उतरना पड़ता है। यों आदमी गाड़ी के पहिये की तरह घूमता रहता है।

पर समझदार आदमी इस बात को समझने में अपनी समझदारी का परिचय कहां दे पाता है! लोभियों को देखो! सड़ियल जीवन जीते हैं। वे सड़े-गले फल से कौन से कम हैं! इसीलिए तो उन्हें कहा जाता है मक्खीचूस। मक्खीचूस का मतलब मक्खियों को मुंह से चूसने वाला नहीं है। जो मक्खी में से भी घी निकालने की कोशिश करता है वह मक्खीचूस होता है। मक्खीचूस ठीक उस तेली की तरह होता है जो दिनभर तेल निकालने के बाद भी बिना तेल की सब्जी खाता है।

कहते हैं कि एक घी के डिब्बे में कहीं से मक्खी गिर गई। दुकानदार ने मरी मक्खी निकाली। उसे दो अंगुलियों की चीमटी से दबाया। मक्खी का बदन घी से भरा था। दबाने के कारण एक बूंद घी वापस डब्बे में गिरा। पास में खड़े ग्राहक ने कहा, साहब! यह क्या? अगर मक्खी के साथ एक बूंद घी चला भी जाये, तो कहां घाटा है! दुकानदार ने कहा, अरे बुद्धु! मक्खियां तो घी के डिब्बे में गिरती ही रहती हैं, किस-किसके पीछे घी छोड़ूं।

मैंने सुन रखा है कि एक आदमी बहुत बीमार पड़ गया। जीवन-बचाव के घरेलू उपचार करने पर भी जब उसके स्वास्थ्य में कोई सुधार न आया, तो उसके लड़के ने किसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सीनियर डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने कहा इलाज करने से ठीक हो जाएंगे। कोई तरह की चिन्ता न करें। उसने डाक्टर से पूछा जी! मेरे इलाज में कितना खर्चा आ जायेगा? डाक्टर बोला, करीब तीन हजार। पास में उसका लड़का खड़ा था। उसने लड़के से पूछा अरे बेटे! जरा हिसाब लगाकर बता तो कि अन्तिम संस्कार में कितना खर्चा आता है? लड़का बोला, पापा! कोई तीन सौ रूपया।

सेठ थोड़ा झल्लाया। लड़के से कहने लगा, तू खड़ा-खड़ा क्या करता है? वही कर, जिससे सत्ताईस सौ का मुनाफा हो।

इसे कहते हैं मक्खीचूसों की मक्खीचुसाई। लोगों की मक्खीचुसाई भी इतनी विचित्र होती है कि उसे देख सुनकर अचम्भा होता है। जब पत्नी की हालत सीरियस होती है, और डाक्टर कहता है कि इसके उपचार में पन्द्रह सौ का खर्चा आयेगा तो पति तपाक से बोल पड़ता है, इसे जाने दे, पांच सौ में तो नई आ जायेगी।

पता नहीं, लोगों की यह कुत्सित और कुण्ठित तृष्णा कब सम्बोधि पाएगी। जब तक व्यक्ति का ध्येय एक मात्र धन का संचय करना रहेगा, हकीकत में वह तब तक निर्धन ही बना रहेगा। धन उसकी नौकरी नहीं करेगा, वरन वह धन का नौकर होगा। वह मकान मालिक नहीं होगा, अपितु मकान उसका मालिक होगा।

कंजूसों की आत्मकथाएं पढ़ता हूं तो लगता है कि लोभ उनके अन्तरंग में सर्प की तरह कुंडली मारकर बैठ जाता है। अहंकार के राकेट पर बैठकर वे उड़ानें भरते हैं। माया उनकी प्रदर्शनी बन जाती है। अब रहा क्रोध, उसे तो इन तीनों में कहीं भी खोजा जा सकता है। लोभ इस चण्डाल-चौकड़ी का ही एक अंग है।

लोभ जहां-जहां जाएगा, शेष तीनों भी वहां संग-संग जायेंगे। माया तो वैसे लोभ की शिष्या ही है। लोग ही मायावी होते हैं। दूसरे लोक से मायावी चीजें नहीं आतीं। माया मनुष्य की मानसिक विकृति है। लोभ माया से पहले आता है। जहां दोनों हैं, वहां खुद ही मुख्य होता है। स्वार्थ में झुलस पड़ती हैं उसकी आंखें। मायावी लोभ सवार हो गया तो मानवता को कुंठित होना ही पड़ता है। दुर्योधन जैसै मदमाता लोभी और शकुनि जैसा कपटी जहां दोनों एक साथ हो जायें, तो फिर लाक्षागृह में आग लगे, तो कौन-सा आश्चर्य है। षड्यन्त्र माया की ही अभिव्यक्ति है। लोभी कपटी के आंखें कहां! खोपड़ी तो है, पर समय कहां! सोच तो है, पर विवेक कहाँ! पांडित्य तो है, पर प्रज्ञा कहां!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक विद्वान राजसभा में बड़ी अहंकार की बातें किया करता था। उसने कहा कि मैं केवल ब्राह्मण के हाथों का ही भोजन करता हूं और उसी का पानी पीता हूं। इसके अलावा और किसी का नहीं पीता। बड़ी-बड़ी डींगे हांकीं।

रवाना हुआ राजसभा से। अपने घर की ओर जा रहा था कि रास्ते में कुछ थक गया। किसी घर के चबूतरे पर बैठ गया। वह घर एक वेश्या का था। वेश्या ने देखा तो पाया कि यह वही आदमी है, जो राजसभा में जातिमद भरी डींगें हांक रहा था। वह जानती थी ऐसे लोगों का स्वभाव कैसा होता है। उसने उसका आदर-सत्कार किया और घर चलने के लिए कहा।

विद्वान ने पूछा यह घर किस जाति का है? वेश्या बोली, आप जैसे विद्वानों को जाति-पांति से क्या लेना-देना! आप तो ब्रह्मवेत्ता हैं, वेदवेत्ता हैं, ज्ञानी हैं, महापुरुष हैं। तब वह चुप हो गया। उसने सोचा भाई जब चबूतरे पर बैठ चुका हूं, फिर जातिपाति पूछने का प्रश्न करना ही नासमझी है।

विद्वान ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। उसके घर में गया। वेश्या ने कहा, विप्रवर! गला सूक गया है। एक गिलास पानी पीं लीजिये। ब्राह्मण बोला कि जातिपांति जाने बिना तुम्हारे घर का पानी कैसे पीऊंगा। वेश्या ने झट से एक स्वर्णमुद्रा निकाली और उसको दे दी। स्वर्णमुद्रा देखते ही विद्वान अपने आपको भूल बैठा और पानी पी गया।

उसके बाद घर में प्रवेश करने के लिए वेश्या ने उससे दूनी मुद्रा दी। वह लाभ से लोभ की ओर बढ़ चला। चला गया भीतर। वेश्या बोली आप जैसे ज्ञानी पुरुष से मेरी कुटिया निहाल हो गई।

विद्वान को मुद्राएं मिलती गईं और वह अपनी मर्यादा विसरता गया। पानी पिया, घर में आया, भोजन किया। आखिर वेश्या ने विद्वान् को पान थमाया। विद्वान लेने से मुकर बैठा, तो वेश्या ने उसी पान को अपने मुंह में डाला। आधा पान खुद ने खाया और आधा जूठा पान सौ स्वर्ण मुद्राओं के साथ विद्वान की ओर बढ़ा दिया। विद्वान फिर लोभ में आ गया। उस विद्वान ने जैसे ही वेश्या के हाथ का जूठा पान अपने मुंह में रखा कि उसी के साथ उसके गाल पर, दिन में चांद दिखा दे, ऐसा करारा तमाचा आया।

विद्वान् उस तमाचे को सम्भाल न सका। वह हक्का-बक्का रह गया। वेश्या बोली, राज्यसभा में मानवता का अपमान करते हो और यहां वेश्या के हाथ से पानी भोजन ही नहीं, जूठा पान खाते हो? लोभ-लालच में पड़कर ब्राह्मणत्व और पांडित्य को भी दांव पर लगा बैठे?।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जब आदमी का लोभ बढ़ता जाता है तो वह यह नहीं देखता है कि मैं कौन हूं और सामने वाला कौन है। इससे उसे प्रयोजन नहीं रहता। उसका केवल एक ही लक्ष्य होता है कि येन-केन प्रकारेण मुझे मिले। आदमी का लोभ यही कहता है कि तू अपने को भरता जा। जितना भर सकता है, उतना भर ले। कितना भी उसे मिल जाये, फिर भी वह रिक्त ही रहता है। लोभी मन तो फूटी बाल्टी है। भर भरकर भी रीतते चले जाओगे। उसकी जरूरतें ही बेजरूरतें बन जाती हैं।

जरूरत को पूरा करने के लिए प्रयास करना नैतिक पुरुषार्थ है, किन्तु चाह की पूर्ति के लिये प्रयत्नशील रहना बिना पैंदे की बाल्टी को भरना है। जब जरूरत ही पूरी नहीं हो जाती, तो चाह की पूर्ति असम्भव है।

एक तो है जरूरत और दूसरी है चाह। यदि किसी को जरूरत है साइकिल की तो यह जरूरत पूरी हो सकती है मगर यदि उसी की चाह एक ही समय में मोटर साइकल की, स्कूटर की, कार की होती जाये तो वह कभी पूरी नहीं हो सकती।

इस शरीर की जरूरतें क्या हैं? शरीर की जरूरत है कि हमें दो समय पेट भर भोजन मिल जाये। बस इसकी केवल इतनी ही अपेक्षा है। मगर मन की चाह क्या है? वह कहता है भले ही तू भूखे मर। मगर तेरी पेटी को तो भर ले। तेरा पेट खाली रहे तो चिन्ता नहीं, मगर तेरी पेटी भरी रहनी चाहिए। चाह में और जरूरत में यही तो बुनियादी भेद है। जरूरत में केवल पेट भरने की तमन्ना रहती है और चाह में पेटी भरने की। इसलिए आदमी का पेट से पेटु हो जाना स्वाभाविक है।

शरीर की आवश्यकता तो यह है कि हमें दो कपड़े मिल जाये ओढ़ने के लिए। एक साड़ी मिल जाये पहनने के लिए। मगर मन कहता है सौ साड़ियां रखो, दस धोतियां रखो कि पच्चीस पेन्ट रखो। पर हां, यदि यही विराम नियमपूर्वक हो तो परिग्रह की सीमा बंध जाती है। वह भी अपरिग्रह की सीमा में आ सकता है। पर लोभी मन तो एक नहीं, हजारों की लालसा में है। 'मम्मण' कितना भी पा ले, पर शमन कहां उसके लोभ का। लोभ को लोभ से नहीं, अलोभ से सींचा जाये और चिन्तन किया जाये—

पाने के साधन विशुद्ध हों धन हो चाहे तृण-कण हो।
न्याय मार्ग हो, नीति प्रीति हो, जीवन सम्यक दर्शन हो।
भोजन उतना ही हो मेरा, उदर पात्र में समा सके।
ओढ़ूं पहनूं उतना ही मैं तन ढकना ही कहा सके।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाह नहीं हीरे मोती की चाह नहीं शासन करने की।
मानवता का दीप जलाऊं, ले बाती मैं नेकी की।

अपरिग्रह और सन्तोष को जीवन में आमन्त्रित करने के लिए ये पंक्तियां काफी हैं।

परिग्रह और लोभ की सीमाएं पुरुष और स्त्री के साथ भिन्न-भिन्न होती हैं। स्त्री का परिग्रह तो मात्र दिखावा है। चाहे कोई भी तीज-त्यौहार, व्रत-उपवास, पूजन-विधान या मौत-मरण ही क्यों न हो, वह दिखावे से वंचित नहीं रह पाती है। पर पुरुष प्रदर्शनी-कक्ष नहीं हैं। वह सौ को निगलकर एक को भी प्रदर्शित नहीं करता। उसका काम केवल भरना है। कैसे भरे और कहां से भरे, यही उसका चिन्तन-अनुचिन्तन रहता है।

यदि स्त्री यह सोचने लगे कि पुरुष कैसा भरता है तो एक नई क्रान्ति आ सकती है। परन्तु स्त्रियां अपनी सीमा में बंधी हुई हैं। इसलिए ऐसा करने के लिए साहस नहीं जुटा पातीं।

पुरुष भरता है करोड़ों की कमाई करके। उपयोग तो कर नहीं पाता। सोने की ईंटें खरीदकर दीवारों में चिन देता है, आयकर वालों से बचने के लिए। मनुष्य यों करके सोने की ईंटों को नहीं चुन रहा है, वरन जीवन के उन सारे अंशों को चुन रहा है जिसे उसने उन ईंटों को कमाने में लगाया था। आदमी आखिर बटोर बटोरकर भी कितना बटोरेगा! सारा बटोरना ठीकरों का बटोरना है। इसे आयकर से तो बचाया जा सकता है पर मौत से कैसे बचाओगे।छीनते तो दोनों ही हैं मौत भी और आयकर वाले भी। फिर भी फर्क है। आयकर वाले धन ले जाते हैं पर आदमी को छोड़ जाते हैं और मौत आदमी को ले जाती है पर धन को छोड़ जाती है।

आयकर वाले से धन जाने के बाद भी बचा हुआ मानते हैं। क्योंकि जिंदगी तो बची है। जिंदगी बची तो लाखों पाये। गया धन कमाया जा सकता है पर गयी जिन्दगी कैसे बचाओगे? रूठे हुए देव को प्रसन्न किया जा सकता है पूजा पाठ के जरिये, पर रूठे हुए जीवन और समय को लाख सिर पटक एक कर लो, तब भी खुश नहीं किया जा सकता। मौत आने के बाद तो सब छूट गया, लोभ भी, लाभ भी, धन भी। ओह! लोभ करके खूब बटोरा, पर मौत के क्षण सब छोड़ दिया।

जिन्दगी में बटोरने की आदत गहरी है ठेठ चेतना के द्वार तक पैठ गई है, दबादबाकर भी बटोरा पर बटोरने के साथ में जो कूड़ा-करकट आया है उसका क्या किया? उसे भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धन की तरह सींचोगे? बटोरो मत, बाँटो भी। नदी की तरह बनो। गड्ढा बनकर स्वयं को दूषित मत करो। यह दूषण प्रवृत्ति ही लोभ है। निर्लोभता के विचारों की एकाग्रता और परिपक्वता ही ध्यान का प्रवेश-द्वार है।

चाह विचारों की आंधी है, मकड़ी का जाला है। सपना विचारों का प्रतिबिम्ब है। सपने में देखा तो बहुत जाता है, किन्तु पाने के नाम पर हवा का झोंका है। सपना तो राजकुमार का देखते हैं, पर आंख खुलने पर अपने आपको फुटपाथ पर पाते हैं। निर्वाण स्वप्न-मुक्ति का ही अभियान है। चाह स्वप्न का ही फैलाव है। चाह वासना है और वासना से मुक्त होने का नाम ही मोक्ष है, निर्वाण है। वासना-मुक्ति के लिए वासना-बोध जरूरी है। मन से मुक्ति पाने के लिए मन के व्यक्तित्व को समझना आवश्यक है। निर्मित इच्छा की सार्थकता और निरर्थकता हो हम समझें। इच्छा एक झूठ है और झूठी इच्छाएं ही पैदा होती हैं। वायवी कल्पनाओं/इच्छाओं के घोड़े पर सवार अशिक्षित आदमी खाई में ही गिरेगा।

पथानुप्रेक्षी अपनी चाह और वासना को समझता हुआ निर्लोभ के संयमित मार्ग पर कदम बढ़ाए। ऐसा करने से ही निर्वाण के द्वार पर दस्तक होगी।

मरूस्थल में भला गुलाब खिलेगा भी कहां से। जैसे ही मनुष्य यह बोध प्राप्त करेगा कि रेगिस्तान में फूल खिलाने का श्रम निरर्थक है, उसी समय वह अपने श्रम को नयी दिशा दे देगा। जीवन में घटित होने वाली यह नई दिशा ही आध्यात्मिक क्रान्ति है।

जब तक मन के साथ भटकाव भरी जिंदगी जीयेंगे, तब तक सुख की माधुरी कहां! यदि दुखों से छूटना चाहते हो, तो लोभ से छूटना ही होगा। दुःख संसार में नहीं है। दुःख लोभ में है। लोभ ही संसार है। लोभ के कारण संसार है। इसीलिए संसार दुःख है। लोभ जनक है दुःख का। इसलिए लोभ के जाते ही संसार और दुःख दोनों ही चले जाते हैं।

जो लोग संसार को छोड़ देते हैं, किन्तु लोभ को बचा लेते हैं, वे पेड़ की टहनियों को काट लेते हैं, किन्तु जड़ बचा लेते हैं। यह बिल्कुल ऐसा ही है जैसे किसी आदमी के पास शराब की बोतल हो। उसने शराब पी ली और बोतल फेंक दी। वह बोतल तोड़ दे। वह यदि कहे कि मैंने बोतल छोड़ दी, तो वह चलाकी चल रहा है। उसने बोतल छोड़ दी, मगर शराब बचा ली।

शराब को बचाना लोभ को बचाना है। पर यदि शराब छोड़ देंगे, तो बोतल अपने आप छूट जाएगी। लोभ गया कि संसार गया समझो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोभ का बोध कर लें। बोध से ही लोभ मिटेगा। रहें ऐसे पुरुष की छाया में, जिसने लोभ को जड़ से ही उखाड़ फेंका है। जो बटोरता नहीं, मात्र बांटता है। उस सत्संग में ही स्वयं के लोभ का बोध होगा। निर्लोभी की किरण उतरने दें स्वयं के लोभ में। इसी से छूटेगा लोभ का अंधकार। निर्लोभ ही निर्वाण है। यही सुखद छाया है उस शाश्वत की।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आंख दो : रोशनी एक

मृत्यु का दर्शन जीवन में संन्यास का पदार्पण है। जीवन की आपाधापी में मनुष्य जब तक व्यस्त रहता है, उसे मृत्यु की पदचाप सुनाई नहीं देती।

संन्यास की परिणति मृत्यु की प्रतीति से होती है। संन्यास जीवन-क्रान्ति है। निवृत्ति इसी का उपनाम है। बड़ा महत्त्वपूर्ण शब्द है यह।

वृत्ति संसार से जुड़ना है और निवृत्ति संसार से बिछुड़ना। वृत्ति जीवन-ऊर्जा की बहिर्यात्रा है। निवृत्ति उस यात्रा में रुकावट है। ऊर्जा के बाहर जाने से रोकने का नाम ही निवृत्ति है। इसलिए वृत्ति संसार से राग है और निवृत्ति संसार से विराग।

एक और ऊंचा दर्शन है, वह है परावृत्ति। परावृत्ति वृत्ति से परे होना है। यह संसार का विराग नहीं है, बल्कि अपने भीतर लौटना है।

निवृत्ति संसार को त्यागना है और परावृत्ति स्वयं को सम्हालना। संसार को त्यागने से ही स्वयं को सम्हाला नहीं जा सकता। पर हां! स्वयं को सम्हालने से संसार अपने आप छूट जाता है। इसलिए परावृत्ति जीवन की आन्तरिक ऊंचाई को पाने की स्वीकृति है। निवृत्ति सही अर्थों में परावृत्ति के बाद ही घटित होती है।

संन्यास की शुरुआत परावृत्ति से होती है।

साधक का सारा लक्ष्य वीतराग से जुड़ा हुआ है। परावृत्ति और वीतराग दोनों को आप एक ही समझें। भले ही लगें दोनों अलग-अलग, पर हैं दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू।

साधना की वास्तविकता वीतराग-विज्ञान है। राग, संसार से जुड़ना है और विराग उससे टूटना। वीतराग तो स्वयं की शोध-यात्रा है। अपने आपको पूर्णता देना ही वीतराग का परिणाम है।

राग संसार है और विराग संन्यास। वीतराग राग और विराग दोनों से ही पार है। यह दोनों से ऊपर की स्थिति है। ईश्वर का सारा ऐश्वर्य इसी में है। यह परम पद है। ऐसा पद है, जहां पद को लेकर राजनैतिक उठापटक नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वीतराग स्वयं से जुड़ना है। दूसरों से टूटने से यह जरूरी नहीं कि व्यक्ति अपने से जुड़ गया। पर जो अपने से जुड़ जाता है, वह दूसरों के तादात्म्य से अपने आप छूट जाता है।

जो स्वयं से जुड़े बिना दूसरों से टूटता है, संसार को छोड़ता है, वह वमन किये हुए और त्यागे हुए के प्रति किसी भी क्षण पुनः आकर्षित हो सकता है।

इसलिए वीतराग साधना का यथार्थ है। द्रष्टाभाव साक्षीभाव ही वीतराग होने का प्रथम चरण है। कर्त्ताभाव को छोड़कर द्रष्टाभाव में प्रवेश करना आत्मदर्शन की पूर्व तैयारी है।

वीतरागता और वीतद्वेषता जय एवं पराजय दोनों परिस्थितियों में स्वयं को तटस्थ बनाए रखना है। यह अतिवादिता नहीं, समता है। आंख दो, पर रोशनी एक। वीतराग-विज्ञान का यही निचोड़ है। साम्यवाद की पराकाष्ठा ही वीतराग की आभा है।

राग बाहर की यात्रा है और मन इसमें बड़ा सहयोगी है। मन भी अपने आप में एक अति है। इसे समझें।

मानव-मन को अतिवादिता से काफी ममता है। मन की ग्रंथियों में अतिवादिता के धागे जुड़े हुए हैं। वह एक अति का त्याग करता है, तो दूसरे अति में कदम रख लेता है। एक खूंटे को तजता है, तो दूसरे से बंध जाता है। घर से छूटता है तो घाट का रास्ता ले लेता है और घाट से रवाना होता है तो न घर का रहता है न घाट का। यह चूक बार-बार होती है। एक अति से बचने के चक्कर में दूसरी अति से गलबांही हो जाती है। यों करने से आदमी खाई से तो उबर जाता है, पर कीचड़ में जाकर धंस जाता है। यह एक अनबूझी पहेली है।

जिससे राग था, उससे राग तोड़ा, किन्तु राग के टूटते-तोड़ते द्वेष ने मुंह डाल दिया। हकीकत तो यह है कि राग को समाप्त करने के लिए द्वेष की पहल अनिवार्य बन जाती है। राग प्रेमात्मक बन्धन की इस छोर की अति है तो द्वेष उस छोर की। जो दोनों से बचना चाहता है वह न तो राग से द्वेष करता है और न द्वेष से राग। ये दोनों ही अतियां हैं रिश्ते की।

मनीषी वह है जो उभय पक्ष की अपेक्षाओं के प्रति सजगतापूर्वक अपनी भीतर की आंख मूंद लेता है। वह तटस्थ रहता है। नदी में पानी बहे या कचरा, उससे उसे कोई मतलब नहीं। वह तो किनारे पर खड़ा खजूर का वृक्ष है। जल के उतार-चढ़ाव को देख रहा है। स्वयं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसमें प्रतिबिम्बित भी होता है, फिर भी वह स्वयं अकर्म-दशा में है, साक्षीभाव में है, द्रष्टा रूप है। उपस्थित है, पर लगाव नहीं।

पता नहीं, लोग अति में ही अपनी मति को क्यों अटका बैठते हैं। बहुत से लोग भोजन-पटु हुआ करते हैं। एक आदमी को मैंने देखा कि वह चार किलो हलुआ खा गया। वह पचास-पचास रोटी खा जाता। एक दिन किसी ने उससे शर्त रख ली। वह भरपेट खाना खाया हुआ था। शर्त के मुताबिक वह सात लीटर पानी पी गया। यह मानव शरीर के साथ जबरदस्ती है। पानी पी गया, पर भुगतना पड़ा उसे।

शरीर में जितने भोजन की आवश्यकता है अथवा जितने उपवास सहज रूप में स्थितप्रज्ञ बनाने में सहायक हो सकते हैं, उतने ही करना सही साधना है। शक्ति के अनुकूल की गई साधना ही आनंदकर होती है। वहीं आत्मतृप्तिकारक हुआ करती है। शक्ति के ऊपर की गई साधना या तपस्या जोर-जबरदस्ती है।

साधना का संबंध शक्ति से है। साधना शक्ति के अनुकूल होती है। किसी कार्य में प्रवेश करने से पहले अपने सामर्थ्य को एक बार परख लें। आत्म-बल, शारीरिक-बल, श्रद्धा, स्वास्थ्य, स्थान, समय सबकी अनुकूलता देखकर ही स्वयं को संयोजित करें किसी मार्ग पर। अनुकूलता के मुताबिक किया गया काम और की गई साधना कभी भी भारभूत नहीं होती। भार का ही दूसरा नाम अतिवादिता है।

इसलिए राग और द्वेष—ये दोनों ही अतियां हैं। रागात्मक संयोग का नाम ही संसार है। इसीलिए तो मन राग से भरा होता है, मोह का आलिंगन लिये रहता है। मन सदा एक पक्ष में ही नहीं रहता। वह विरोधी पक्ष के गले में भी अपनी वरमाला डालता है। अतः राग और मोह की राख घृणा और द्वेष की चिता में होती है।

जो लोग समाधि के गीत गाते हैं वे अनुकूल विषयों में कभी राग भाव न करें, तो प्रतिकूल विषयों में द्वेष भाव भी न करें। जिसने राग-द्वेष का बोरिया-बिस्तर गोल कर दिया, उसका मन फिर जीवित रहेगा? मन की चपलता दूर हो जाएगी। भूल जाएगा वह अपनी राजनीति।

मन जीता ही चुनाव-वृत्ति में है। यह अच्छा है, इसलिए ग्राह्य है। वह बुरा है, इसलिए त्याज्य है। यह चयन ही मन के निर्माण की आधारशिला है। जो तटस्थ हो गया, चुनाव-रहित हो गया, जागरूक हो गया, उसका मन मिट गया। उसका मन साधु हो गया, निर्ग्रन्थ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हो गया। मन की मृत्यु ही तो मुनित्व है। यही मौन है। भला जब बांस ही नहीं है, बांसुरी कैसे बनेगी? वह कैसे बजेगी?

मैं देखता हूं कि राग-द्वेष से छूटने के लिए कोई सूर्य की आतापना लेता है तो कोई शीर्षासन करके खड़ा हो जाता है। यह मात्र खूंटे बदलने जैसा हो गया। शीर्षासन करने से कभी राग टूटता है? सूर्य की आतापना लेने से कभी मोह जलता है? पहले पैर के बल चलते थे, अब शीष के बल खड़े हैं। पहले चूल्हे की आग के पास बैठते थे, अब सूर्य की गरमी ले रहे हैं। पर बदला कुछ नहीं। यदि चित्त में वीतराग और वीतद्वेष के भाव उठ गये तो शीर्षासन दो कोड़ी का भी नहीं रहेगा। हमें गिराना है राग को, न केवल राग को अपितु द्वेष को भी।

आतापना का संबंध हम जोड़ लेते हैं काया से। जबकि इसका संबंध है आत्मा से। आत्मा को तपाने का नाम ही आतापना है। शीर्षासन सिर को आसन बनाना नहीं है, वरन दुनिया के आसन से स्वयं को ऊपर करना है। आतापना या शीर्षासन का जैसा आम अर्थ है, उससे काययोग सधेगा। काययोग आत्मयोग नहीं है। आत्मा पार है मन के, वचन के, काया के। ये तीनों चट्टानें हैं आत्म-स्त्रोत की। इनसे कैसा राग! सबसे पार होकर निरखो स्वयं को, अपने आपको। मन, वचन, काया के सारे पर्दों को उठाने पर ही स्वयं का आन्तरिक रंगमंच उभरेगा।

संसार में हमारा कोई न तो मित्र है और न ही शत्रु। यहां सब स्वअस्तित्व के स्वामी हैं। जैसे आप एक हैं और अकेले हैं, वैसे ही सभी अकेले हैं। यहां सभी अजनबी हैं, अनजाने हैं। दुनिया दो-चार दिन का मेला है। मेले में जा रहे थे, किसी के हाथ में हाथ डाल दिया और दोस्ती कर ली। उसी से कभी अनबनी हो गई तो दुश्मनी हो गई। दोस्त भी हमने ही बनाया, तो दुश्मन भी हमने ही बनाया। यों मैं ही दोस्त बन गया और मैं ही दुश्मन।

मैत्री राग है और दुश्मनी द्वेष है। सत्य तो यह है कि द्वेष की जननी मैत्री ही है। बिना किसी को मित्र बनाए शत्रु बनाना असंभव है। जिसे आप आज शत्रु कह रहे हैं, निश्चित रूप से वह कभी आपका मित्र रहा होगा। इसलिए जो लोग द्वेष के कांटे हटाना चाहते हैं, उन्हें राग के बीज हटाने जरूरी हैं। राग से उपरत होना निर्विकल्प-भावदशा प्राप्त करने की सही पहल है।

जीवन में अन्तरंगीय परिवर्तन लाने के लिए न तो स्थान-परिवर्तन जरूरी है, न रंग ढंग या वेष-भूषा। असली परिवर्तन आता है चित्तदशा के परिवर्तन से। पर परिवर्तन के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समय यह ध्यान रखें कि अतिशय न हो। अतिशयता सरदर्द है। इसलिए दृष्टिकोण अपनाना चाहिए संतुलित। यही है समत्वयोग, यही है समभाव और यही है मध्य-मार्ग।

यह वह मार्ग है, जो किसी भी पक्ष के प्रति हमें झुकाता नहीं है, वरन हमें तटस्थ बनाता है। जो हो रहा है, उसे संयोग बताने का पाठ पढ़ाता है। जन्म, जरा, रोग, उपेक्षा, मृत्यु हर परिस्थिति में संतुलित बनाए रखेगा। ऐसे ही तो होती है दीप-लौ निष्कम्प।

घर में कोई जन्मा, खुशियां छाई। क्यों? क्योंकि राग था। जिस क्षण आपके घर में बच्चा पैदा हुआ, उस क्षण दुनिया में बहत्तर बच्चे और पैदा हुए, क्या आपको खुशी हुई? नहीं। क्योंकि राग का अतिशय उनसे नहीं था। दो दिन बाद अपना बच्चा मर गया, तो गम का कोहरा छा गया। क्योंकि राग को धक्का लगा। स्वयं के अहंकार और प्रभुत्व को चोट लगी। जो जन्म और मृत्यु को मात्र संयोग समझता है, दोनों के प्रति साम्यभाव रखता है, उसे गम कभी सताता नहीं है। उसकी अन्तर-रचना असाधारण हो जाती है। उसका इतिहास अनूठापन हासिल कर लेता है।

सच्चे साधक की पहचान तटस्थता में है। मनुष्य शान्ति का उपासक है। विजय अहंकार को प्रोत्साहन देती है और पराजय वैर एवं उत्तेजना को। दोनों परिस्थितियों में स्वयं को तटस्थ रखना आत्म-शान्ति के लिए पहल करना है। हर परिस्थिति में समानता रखने से ही समस्याएं ढीली होती हैं।

हमारी आंखें दो हैं, पर किसी की झलक देखने में दुर्भांत नहीं है। आंखे दो हैं, जुदी-जुदी हैं, तथापि हर किसी को एक सरीखी ही ग्रहण करती है। हम चाहे दायीं आँख से देखें या बायीं आँख से अथवा दोनों को सम्मिलित करके देखें, पर वस्तु-दर्शन में कोई फर्क नहीं आने वाला है। आंखों द्वारा वस्तु की उतार-चढ़ावमूलक दशा को साम्यभावना के साथ देखना ही समत्व-योग है, समभाव है।

समभाव का मूल नाता अन्तरमन से है। इन बाहरी आंखों से परे एक और आंख है। और वह है अन्तर की आंख। वास्तव में यही तीसरा नेत्र है मानव-जीवन का। साधना की पगडंडी पर पांव बढ़ाने से पहले इस तीसरे नेत्र का विमोचन अनिवार्य है।

वह व्यक्ति संसार में उपरत होने में गतिशील है, जो हर स्थिति में स्वयं को संतुलित और अनुद्विग्न बनाये रखता है। लाभ और अलाभ की धूप छांह में, सुख और दुःख की आंख मिचौली में, जन्म और मरण के ज्वार-भाटे में, निन्दा-प्रशंसा, मान-अपमान की उठापटक में वह समभाव रखता है। साधक की यही सच्ची परिभाषा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण, मान-अपमान—हर परिवेश में जिसकी आंखों में चमक होती है, होठों पर मुस्कान होती है, वही साधक है।

वस्तुतः सम्पूर्ण आचार और दर्शन का निचोड़ समभाव ही है। यह नवनीत है। धर्म और साधना के लिए जितने भी विधि-निषेध हैं, वे सब समभाव को साधने के लिए ही हैं। इसलिए साधना का मूल समभाव ही है। 'समयाए समणो होई'—समता से श्रमण होता है। श्रमण वही है जिसने समता की वीणा बजाई है। श्रमणत्व की पहिचान यही है।

मुंड मुंडाने से कोई श्रमण नहीं होता है। सफेद पीले चोगे पहनने से कोई श्रमण नहीं होता। नग्नता का बाना ओढ लेने से साधुता की बांसुरी सुर नहीं सुनाती। श्रमण तो समता से होता है। यदि गीता की भाषा में कहूं तो गीता में तो समत्व को ही योग कहा है—'समत्वं योग उच्यते'। गीता तो समता को योग मानती है। इसलिए समभाव है समत्व-योग। बिना ओंधे लटके या बिना आसन जमाए सिद्धि दिलाने वाला है यह। इसे थोड़ा सा गहराई से समझें।

समत्व को जिन्दगी से अलग नहीं किया जा सकता। जिंदगी चेतना की उलझी हुई पहेली है। जहां-जहां जिन्दगी है, वहां-वहां चेतना है। जहां-जहां चेतना है, वहां-वहां समभाव की परछाई उभरती हुई दिखाई देती है। जिन्दगी की यह मांग है कि वह विक्षोभों से दूर रहे और साम्य स्थिति को गले लगाए। विक्षोभ हमेशा आक्रोश, क्रोध, वध, उत्तेजना और संवेदना के कारण जनमता है। मानव तो क्या एक कीड़ा-मकोड़ा भी स्वयं को साम्यावस्था में बनाए रखने की चेष्टा करता है।

न केवल चेतनामूलक जीवन, बल्कि स्नायुओं में भी साम्य दशा जरूरी है। चेतना और स्नायु का काम भीतरी तनाव को कम करना है और साम्य-दशा/समत्व के लिए श्रम करना है। मनोविज्ञान के मुताबिक आन्तिरक विक्षोभों, उत्तेजनाओं और संवेदनाओं को शान्त करना तथा समत्व को मन में प्रतिष्ठित करना जीवन का बसन्त है।

चूंकि हम सब तनाव ग्रस्त हैं, अतः उस तनाव का कोई-न-कोई आदिम कारण अवश्य है।

जब व्यक्ति का शरीर और प्राणों के प्रति लगातार अभ्यास हो जाता है, तो वह अपनी चेतना के स्वभाव से बिछुड़ जाता है। यह अभ्यास ही सम्मोहन, आसक्ति और राग को जन्म देता है। वैसे चेतना का स्वभाव समभाव है, मगर जब शरीर और प्राणों के प्रति सतत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास होता जाता है, तो बाहरी जड़ पदार्थों में भी आत्म-बुद्धि का आरोपण हो जाता है। आत्म-बुद्धि का आरोपण कर बैठने के कारण ही हम परायी चीजों पर अपनेपन की मोहर लगा देते हैं। इसीलिए तो हम कहते हैं 'यह मेरा है।' जबकि मेरा है नहीं। शरीर मेरा नहीं, परिवार वाले मेरे नहीं, संसार मेरा नहीं। मेरा तो केवल 'मैं' है। 'मेरा' दो के बीच का सेतु है। 'मैं' पूर्णता है। इसलिए मैं पूर्ण हूं, विशुद्ध हूं। 'मैं' का पूर्ण और पावन हो जाना ही जीवन में समत्व की प्रतिष्ठा है।

शरीर तो खैर मरते दम तक भी साथ रहता है। परिवार वाले श्मशान तक साथ रहते हैं। पर संसार वाले तभी तक साथ देते हैं, जब तक अंटी में पैसा रहता है। इसके अलावा कोई भी हमारे साथ नहीं है। अपनत्व तो ममत्व और राग की वजह से है। जिनको हम अपना मानते हैं, वे ही दुःख देते हैं। जब इनका हमारे साथ बिछोह होता है तो हमें भी दुःख होता है।

वास्तव में जब मनुष्य संसार को, परिवार को अपना मान लेता है, तो उसके मन में इच्छाएं पैदा होती हैं। मनुष्य पर-पदार्थ में आत्मबुद्धि रखता है और उसे अपना मान लेता हैं, तो उसके मन में इच्छाएं उपजती हैं। इच्छाएं दुष्पूर हैं। फिर भी मन की गागर छलकती रहती है। एक इच्छा पूरी नहीं होती कि उससे पहले दूसरी इच्छाएं आकर खड़ी हो जाती हैं। उसीसे वह अन्तर-क्षेत्र में संघर्ष करता है, बाहर से जुड़ता है। अपने पुरुषार्थ और सारी जिन्दगी को उन इच्छाओं की आपूर्ति में खर्च कर देता है। फलतः उसकी ऊर्जा और आत्म-शक्ति बंट जाती है। अखण्ड भी खण्ड-खण्ड में बंटकर खंडित हो जाता है। मनुष्य की जितनी इच्छाएं होंगी, उसकी अन्तर-शक्तियां उतनी ही खण्डित होती जायेंगी।

इच्छा भिखमंगे की तो क्या 'सिकन्दर' की भी पूरी नहीं होती। यह तो मात्र एक छलावा है, छलनी में जल भरना है। एक बात पक्की है कि इच्छाएं बिखेरती हैं, जोड़ती नहीं।

यदि हम एक इंजन के साथ एक डिब्बा लगाएंगे, तो उस डिब्बे को इंजन की पूरी शक्ति मिलेगी। यदि एक इंजन के साथ सौ डिब्बे लगाएंगे, तो निश्चित ही इंजन की ऊर्जा सौ डिब्बों को खींचने के लिए अलग-अलग शक्ति देगी। चेतना की शक्ति भी इसी तरह से अलग-अलग खण्डित हो जाती है। जैसे देश का बंटवारा होता है, वैसे ही बंटवारा होता है अन्तर जगत का।

इस मामले में महावीर काफी खुलकर पेश हुए। उनका मनोविज्ञान बारिकी लिए है। उन्होंने इस बात को गहराई से छुआ। उन्होंने मनुष्य के अन्तरंगीय पहलुओं को जितना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गहराई से पढ़ा, उतना बहुत कम लोग पढ़ पाये, महावीर की बात को आईन्स्टीन जैसे वैज्ञानिक ही पढ़ पाये, जिन्होंने चित्त की बारिकियों पर सोचा। लगता है, आईन्स्टीन ने महावीर की इस बात को ही दोहराया है कि मनुष्य बहुत चित्तवान है, एकाधिक चित्त का मालिक है।

मनुष्य वास्तव में अनेक चित्तों का एक चित्त है, वह चित्तों का समुदाय है। वह कैसे है चित्तवान? इसे समझें।

जैसे हम रास्ते से गुजर रहे हैं। गुजरते-गुजरते कोई अच्छी-सी कार हमारे पास से निकली। हमने ऐसी कार देखी नहीं, हमारा ध्यान कार के प्रति गया तो हमारा एक चित्त उस कार से बंध गया। भविष्य में हम जब भी उस कार को दुबारा देखेंगे, तो वह पूर्व चित्त का अणु हमें पूर्व दर्शन की स्मृति दिलाएगा। यह अदृश्य शक्ति नहीं है। चित्त तो वास्तव में अणुओं की ढेरी है। तो हमारे चित्त का एक अणु उस कार से चिपक गया।बहुत समय बाद भी जब हमें वह कार दिखाई देगी तो जो हमारा चित्त पहले निर्मित हुआ था, जो टुकड़ों में बंटा था, वह चित्त हमें फिर से याद दिला देगा कि यह वही कार है।

आप ट्रेन से सवारी कर रहे हैं, बातचीत कर रहे हैं। तीन दिन की यात्रा है। सामने चार-पांच आदमी बैठे हैं, बातचीत हो गयी, प्रेम हो गया, मैत्री हो गई, मगर रहेगी तो वह तीन दिन तक। आपका स्टेशन आ गया। आप रेल से नीचे उतर गये। रेल आगे बढ़ गयी, लेकिन यहां पर आपने उसके साथ सम्बन्ध स्थापित कर लिया। चित्त का उसके साथ नाता हो चुका है। पांच साल बाद भी जब वह मुसाफिर मिलेगा तो देखते ही वह चित्त वापस प्रगट होगा और कहेगा कि यह तो वही व्यक्ति है, जिससे तुम पांच वर्ष पूर्व मिले थे। यह पहचान ही दार्शनिक भाषा में प्रत्यभिज्ञान है।

प्रत्यभिज्ञान के लिए पूर्व चित्त और चित्त के संस्कारों का रहना अनिवार्य है।

इसलिए आदमी का मन हमेशा बिखरा हुआ रहता है। ठीक वैसे ही जैसे राई के दानों की एक साथ ढेरी बनालो, मगर हर दाना अपना जुदा-जुदा अस्तित्व रखता है। पर्वत चाहे कितना ही बड़ा हो और अखण्ड हो, पर वह कण की दृष्टि से खण्डित है। क्योंकि पर्वत कणों का समुच्चय है। वैसे ही व्यक्ति की शक्ति और चित्त है। सारे अणु एक-एक करके बिखर जाते हैं, अलग-अलग हो जाते हैं।

अतः मानव अनेक चित्तवान है। जब वह अनेक चित्तवान हो जाता है, तो वह लालायित रहता है, मुझे यह भी मिले, वह भी मिले, बहुत मिले, दुनिया की सब चीजें मिल जायें। कोई भी चीज बाकी न रहे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'कुछ और' की मांग ही चित्त की लम्बी यात्रा है। मनुष्य का चित्त जब यात्राशील होता है तो चलता ही चला जाता है। चलने की प्रक्रिया में उसकी यह तमन्ना होती है कि दुनिया की सब चीजें उसे मिल जाये। वह फिर छांटना शुरु करता है यह मित्र अच्छा नहीं है, वह मित्र अच्छा है। यह स्त्री अच्छी नहीं है, वह स्त्री अच्छी है। यह पुरुष अच्छा नहीं है, वह पुरुष अच्छा है। यह छंटनी व्यक्ति को समत्व से खिसकाती है और वह दुनिया भर के चित्त इकट्ठे करने लग जाता है।

इसे यों समझिये।

एक दिन अखबार में विज्ञापन छपा कि अमुक इलाके में एक ऐसी दुकान खोली गई है, जहां पर वधुओं की छंटनी होती है। डाकघर में चिट्ठियों की छंटनी की तरह वधुओं की छटंनी होती है।

वह युवक गया उस दुकान में। बाहर एक अधेड़ उम्र का आदमी बैठा था। आदमी से पूछा, क्या यह वही दुकान है जिसमें बधुओं की छंटनी होती है। आदमी ने कहा— हां, यह दुकान वास्तव में ऐसी ही है। आपको कैसी वधु चाहिए? लड़के ने कहा, मुझे सर्वोत्तम लड़की चाहिए, जिसमें कोई कमी न हो। आदमी ने कहा ठीक है, आप भीतर चले जाइये। जैसी आप चाहेंगे, वैसी वधु मिल जायेगी।

युवक भीतर गया आगे उसे दो दरवाजे मिले। एक दरवाजे पर लिखा हुआ था, सुन्दर लड़की, दूसरे पर लिखा हुआ था बदसूरत लड़की। उसने वह दरवाजा खोला जिस पर लिखा हुआ था सुन्दर लड़की। मगर भीतर कोई नहीं था। कुछ और आगे बढ़ा, तो फिर उसे दो दरवाजे मिले। एक दरवाजे पर लिखा था, खाना पकाने वाली। दूसरे पर लिखा था मालकिन की तरह हुकुम चलाने वाली।

वह बिल्कुल गणित के हिसाब की तरह चला। उसने फिर उसी दरवाजे को धक्का दिया जिस पर लिखा हुआ था खाना पकाने वाली। भीतर उसे लड़की की जगह फिर दो दरवाजे मिले। एक पर लिखा था दहेज साथ में लाने वाली, दूसरे पर लिखा हुआ था बिना दहेज वाली। दहेज वाली का दरवाजा खोलकर अन्दर घुसा, पर मिला कुछ नहीं। मिलता क्या खाक? वह बेचारा असमंजस में फंस गया। वहां लड़की तो मिली नहीं, मगर एक चमकता हुआ शीशा मिल गया। शीशे के पास एक तख्ती लगी थी। उस पर लिखा हुआ था 'महोदय! कृपया आप अपना मुखौटा शीशे में देख लें। आप जैसी लड़की चाहते हैं, क्या स्वयं वैसे हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छंटनी बहुत करते हैं। दूसरों में तो ढेर सारे गुण पाना चाहते हैं, मगर जरा स्वयं को निहारने का कष्ट कीजिये। लड़की चाहते हैं गोरी और स्वयं हैं काले-कलुटे। लड़की चाहते हैं स्वर-साम्राज्ञी और स्वयं तुतलाते हैं। लड़की चाहते हैं दहेज वाली और स्वयं की रोजी-रोटी का ठिकाना नहीं है।

जो लोग दूसरों में छंटनी करते हैं, वे अपना अन्तस् तो पहले टटोल लें। इच्छाएं मन की ढेरी हैं। वे कहीं ऐसी ढेरी पर तो नहीं बैठे हैं, जिसमें भीतर अंगारे दबे पड़े हैं।

चयन तो मन की जननी है। दो में से एक का तो जन्म होगा ही। दो में से एक का जन्मना सच्चाई का प्रगटन नहीं है, अपितु राजनीति है। जैसे ही आपने चुना की मन की ईंट रखी। यदि वह आधारहीन है, तो उसका परिणाम महल नहीं, वरन माटी का टीला होगा। पति और पत्नी तो जीवन की गाड़ी के दो पहिये हैं। वह तभी चलेगी जब उसके दोनों पहिये बराबर होंगे। एक पहिया ट्रेक्टर का और दूसरा स्कूटर का तो वह कैसे चल पायेगी? पहियों का साम्य ही गाड़ी की गति है।

पर मजे की बात यही है कि गाड़ीवान ही जोड़ रहा है दो भिन्न-भिन्न पहिये। परस्पर विरोधी चित्तों को एक ही स्थान में लाकर रख रहा है। यह विपरीत का आकर्षण अध्यात्म में भौतिकता का प्रभाव है। चित्त का बिखराव अन्तर में उपजी-संजोयी गई इच्छाओं और कामनाओं के कारण होता है। वह अपनी इच्छाओं को पूरी करना चाहता है। पर क्या पूरी हुई? इच्छा की आपूर्ति ही दोहरे संघर्ष को जन्म देती है। मनुष्य कभी चेतना के आदर्शात्मक तो कभी वासनापरक पक्ष से संघर्ष करता है। इसे मनोविज्ञान की भाषा में कहते हैं 'ईड' और 'सुपर इगो।'

संघर्ष का स्तर दो तरह का हुआ करता है। पहले स्तर में तो चेतना का आदर्श और भीतर की वासना है। चेतना का आदर्श है समता और शरीर का स्वभाव है वासना। संघर्ष दोनों के बीच का टकराव है। एक तरफ आदर्श और दूसरी तरफ वासना। दोनों में जब संघर्ष होता है और शरीर में रहने वाले हारमोन्स जब जीत जाते हैं तब भीतर का संघर्ष बाहर व्यक्त होता है और फिर दोनों तत्त्वों में संघर्ष शुरु होता है। उससे हम वासना की पूर्ति करना चाहते हैं।

पुरुष के भीतर वासना उठी। अब उसका बाहरी तत्त्वों से संघर्ष होगा। पुरुष का स्त्री के प्रति और स्त्री का पुरुष के प्रति संघर्ष होता। दोनों का एक दूसरे के प्रति होने वाला आकर्षण-विकर्षण ही संघर्ष है। पहले संघर्ष भीतर और फिर बाहर। भीतर और बाहर संघर्ष ही संघर्ष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बचता है। यों व्यक्ति दुःख में उलझ जाता है। उसके इस संघर्ष में चित्त का विकेन्द्रीकरण होता है। वह उस विकेन्द्रीकरण से अपनी आन्तरिक शक्तियों को बिखेर डालता है। उसकी शक्तियां भटक जाती हैं। वे कुण्ठित हो जाती हैं। उनका दोहरा संघर्ष चलता है सुख और दुःख में, लाभ और अलाभ में, जीवन-मरण में, संयोग-वियोग में। जो व्यक्ति संघर्ष से छूटना चाहता है, उसके लिए बीच का मार्ग है। और वह है समभाव। मन की दृष्टि में शान्ति की रोशनी ही संघर्ष से मुक्ति है। यही वह मार्ग है, जो जय एवं पराजय दोनों परिस्थितियों में मनुष्य को टूटने से रोकता है। यह तटस्थता है। इसे अपनाने के बाद कहां रह जाता है मनमुटाव और कहाँ रहती हैं दिल की दूरियां!

समभाव है सरिता। सरिता दो तटों के बीच बहने वाली है। यही तो वह बीच का रास्ता है, जो हमारी जीवन नौका को सागर तक ले जाता है। सागर यानि विराट, भूमा, स्वयं का परमात्म-स्वरुप। इसलिए जो सबमें समभाव रखता है, वही साधक है। समभाव के द्वारा ही तनाव से मुक्ति पाई जाती है। अभी तक तो हम अपने भीतर से बाहर आये हैं। अब वापस बाहर से भीतर लौटना है। यह वापसी की प्रक्रिया ही प्रतिक्रमण है। लौटा लाओ गंगा को फिर से गंगोत्री की ओर। मूल उत्स की ओर लौटने का नाम ही साधना है।

हमें अपने स्वभाव को ओर जाना है। विभावों को छोड़ना है। हमें अपने निकुंज की ओर आने के लिए पंख फैलाना है। हमने इच्छाओं की चिड़ियाएं बनकर सारे आकाश-मण्डल में भ्रमण किया। अब सांझ हो गई है। पुनः लौट आएं अपने नीड़ में, साधना के अन्तरंगीय कक्ष में। अपनी उन सारी चिड़ियाओं को, चेतना की खण्ड-खण्ड में बंटी ऊर्जा को केन्द्रित कर लें। फैलाव बहुत हो गया। अब सिकुड़ना शुरु करें। जो चिड़ियाएं अभी तक आकाश में उड़ रही हैं, वे वापस आ जाएं अपने घोंसले में। जो सूर्य की किरणें अभी तक सारे संसार को प्रकाशित कर रही हैं। सूर्यास्त का समय आ गया है। अपने भीतर उन सारी किरणों को समेट लें।

सूरज हर सुबह अपनी किरणें फैलाता है और शाम को वापस अपने में खींच लेता है। हम भी दिन में सेवा के लिए वृत्ति फैलायें और शाम को वापस अपने अन्दर खींच लें। यही सबसे बड़ा उद्योग है, ऊंचा योग है। किरणों को अपने में समेटना, चिड़ियाओं का नीड़ में लौटना, ममत्व को छोड़कर समत्व में स्थित हो जाना बस इसी का नाम है साधना।

इतिहास में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं जिनमें समभाव की साधना एड़ी से चोटी तक आभा फैलाती मिलेगी। महावीर को ही लीजिये। इनके जैसा समत्वयोगी कोई नहीं हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोगों ने उनको मारा, पीटा, घसीटा, उठा-उठाकर पटका, कानों में कीलें ठोकीं, पर वे तो संतुलित रहे। यदि वे समभाव को छोड़ देते उनका चित्त विपरीत परिस्थिति से कंप जाता तो सचमुच उन्हें परम ज्ञान उपलब्ध न हो पाता। परम ज्ञान की उपलब्धि में परम सहायक रहा उनके लिए समत्व-योग।

आचार्य स्कन्दक और उनके पांच सौ शिष्य थे। उन्हें मंत्री पालक घाणी में बैल द्वारा पिलवा देता है। पर समत्व-योग की साधना के कारण पांच सौ शिष्य मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, वहीं स्कन्दक मंत्री के प्रति विभाव-परिणाम होने के कारण अपनी गति बिगाड़ लेते हैं। साधना के इससे बढ़कर और कौन-से मापदण्ड हो सकते हैं? गुरु गुड़ ही रह गये, पर चेले समभाव के माधुर्य में समाधि का रसास्वादन कर बैठे।

आपने सोम मुनि का नाम सुना होगा। सोम मुनि को मार्ग पर चलते-चलते परम ज्ञान उपलब्ध हुआ। कहते हैं सोम मुनि एक बार आचार्य चण्डरुद्र को कंधों पर बैठाकर ले जा रहे थे। रास्त में उबड़-खाबड़ जमीन होने के कारण आचार्य को कुछ तकलीफ हुई। वही उनके लिए विभाव का कारण बनी। वे 'चण्ड' से प्रचण्ड हो गये। पर सोम सौम्य हो गये। समता की निर्मल गंगा में नहाकर सोम ने पवित्रता प्राप्त कर ली। प्राप्त हो गया उन्हें परमज्ञान, मंजिल की दूरी तय करते हुए।

कुरगुडुक भी आपसे छिपे नहीं हैं। वे जन्म-जन्म के भूखे थे, उनके साथ यह कहावत चरितार्थ हो गई थी। उन्होंने जीभ का स्वाद तो जीत लिया मगर भूख के सामने वे पराजित हो चुके थे। कई मुनि आठ, पन्द्रह उपवास में थे तो कई मासक्षमण करने वाले, महीने-महीने भर तक भूखे रहने वाले। पर कुरगुडुक मुनि तो ठहरे जनम-जनम के बुभुक्षित। वे भूख को न रोक पाए और जब वे भिक्षा लेकर गुरु के पास पहुंचे आहार दिखाने के लिए, तो गुरु ने क्रोधित होकर आहार-पात्र में थूक दिया। दुत्कारते हुए गुरु ने कहा मुने! तुम्हें धिक्कार है कि महापर्व में भी तू खाने के लिए मर रहा है। कुरगुडुक के लिए यह कटाक्ष तमाचा था। पर वे मौन रहे। मौन कैसे रह गये। हैवानियत क्यों नहीं आई? वास्तव में यहां मौन रहकर उन्होंने मुनित्व को सार्थक कर दिया। मौन रुप में ही प्रकट की मुनित्व की सच्ची परिभाषा।

कुरगुडुक ने अन्य मुनियों को भी आहार दिखाया और आहार ग्रहण करने के लिए निवेदन किया। मगर सभी धिक्कारने लगे। कुरगुडुक तो इस पर भी शान्त रहे। सोचने लगे, मैं तपस्वी मुनियों के थूकने के लिए थूक-दान या पात्र न ला सका।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उस आहार पर आत्म-ग्लानि स्वाभाविक थी। उसी के फलस्वरुप उनके द्वार पर कैवल्य ने दस्तक दी।

जिन्दगी में परिस्थितियां हमेशा एक-सी बनी रहे यह मुश्किल है। जिन्दगी कई करवट बदलती है। चाहे जैसी करवट बदले, पर स्वयं की तराजू न कंपे इसका ध्यान रखना। जैसे ही तराजू कंपी, जीवन का समत्व गिर जायेगा। जिसके मूल में समभाव की साधना है, वही समाधि में अंकुरित और पल्लवित होता है। चाहे कैसी भी स्थिति क्यों न आ जाये, मगर साधक सन्तुलित रहे, समत्व को साधे। सन्तुलन ही समत्व की पहचान है। वे लोग तो अवश्य साधें, जो साधना की पगडंडी पर पहला कदम रखने की तैयारी में हैं या रख चुके हैं। साधक के लिए यह बीच का रास्ता जबरदस्त लाभदायक है।

समभाव के बीच के रास्ते को साधने के लिए ही योग, ध्यान, जप, तप वगैरह किये जाते हैं। गृहत्याग भी करते हैं। जो साधु बनते हैं पर समता की साधुता नहीं रखते तो वे कहलाने भर के साधु है। समता ही साधुता है। क्रोध कीचड़ है। जिन्हें बात-बात में क्रोध आता है, वे वास्तव में गंगा में रहने वाले बिच्छु हैं। साधु और क्रोध! दोनों का कहां संबंध! साधु साधु है और क्रोध क्रोध है। साधु सोना है और क्रोध अंगारा है।

संसार के इतिहास में जब-जब भी अभिशाप शब्द का प्रयोग हुआ, उसमें प्रायःकर साधु जरूर शरीक रहा है। हालांकि ऐसे लोगों को साधु तो नहीं कहना चाहिए, जो श्राप देते फिरते हैं। श्राप और साधु भला दोनों में कहीं कोई मेल है? श्राप तो राक्षसी प्रवृत्ति है, जहरीली गैस है। दुनिया की सबसे अधम चीज है। साधु जीवन की ऊंचाई है, सच्चाई है, दिव्यता है, ईश्वरीय आभा है। साधु विश्व का एक आदर्श है। पर दुर्वासा जैसे ऋषि इसके अपवाद हैं।

दुर्वासा ने अपनी जिन्दगी में संसार का जितना भला किया, उससे दस गुना अधिक बुरा किया। दुर्वासा ने की होगी ऊंची-से-ऊंची साधना। भगवान को भी अपनी चुटकी में कैद कर लिया होगा। पर गहराई में जाकर सोचता हूं तो रावण और दुर्वासा दोनों को एक ही मंच पर पाता हूं। फर्कइतना ही है कि रावण राजा था और दुर्वासा ऋषि। रावण कामुक था और दुर्वासा क्रोधी। साधुता तो राम की बखानी जाएगी।

मैंने बचपन में सुना है—

तुलसी इस संसार में, सत्ताईस गाडा रीस।
सात गाडा संसार में, सन्तों में है बीस।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहते हैं कि एक बार संसार में सत्ताईस गाड़ियां क्रोध की आईं। दाता उलझ गया कि किसको कितनी बांटी जाये। पता नहीं, उसे क्या सूझा कि क्रोध की रेवड़ियों से भरी बीस गाड़ियां तो साधुओं में बांट दीं और शेष सात गाड़ियां सारे संसार में। शायद इस बात में कुछ अतिशयोक्ति हो सकती है। पर शत-प्रतिशत गोल-गप्प नहीं है। इसमें कुछ तथ्य भी है, सच्चाई भी है। इसलिए मैं इस दोहे को वजनदार समझता हूं।

एक प्रोफेसर हैं डॉक्टर सागरमल जैन। वे प्रोफेसर हैं तो संसार में, किन्तु गृहस्थ-संत कहूं तो सत्य का सही बयान होगा। सन्ध्या-प्रतिक्रमण के बाद मैं किसी शास्त्रीय ऊहापोह में उलझ गया। उलझन का समाधान कैसे हो, इसी उद्देश्य से असमय में ही मैंने उन्हें बुलाया। वे शीघ्र ही आ गये।

उस समय रात के करीब नौ बजे थे। डेढ़ घण्टे तक शास्त्रीय सन्दर्भों पर विचार मंथन होता रहा। उठने से पहले उन्होंने अपने सिर पर हाथ रखा और हाथ के जोर से सिर को दबाया। वापस जब उन्होंने हाथ नीचे किया तो उनका हाथ लहुलुहान था। मैं और मेरे भाई ललितप्रभजी दोनों स्तब्ध रह गये। मैं झट से खड़ा हुआ और उनके लहुलुहान माथे को देखा। खून उनकी कमर तक बहा चला गया था।

मैंने कहा यह क्या हो गया? बोले कुछ नहीं, ऐसे ही थोड़ी चोट लग गई। मैं चकित हुआ। पूछा कैसे लग गई? तो उन्होंने कहा कुछ नहीं, आप इसे प्रमुखता मत दीजिए। मैंने कहा आखिर क्या हुआ? तो वे बोले सेविंग करवाकर नहाने के लिये बैठा। खड़े होते समय नल शिर में चला गया। मैंने कहा, यदि ऐसी बात थी तो कष्ट की कोई आवश्यकता नहीं थी। वे बोले, यह कैसे सम्भव हो सकता है। मेरे लिए तो आपकी सूचना ही प्रमुख थी। चोटें तो यूं लगा ही करती हैं। मेरा समय आपके काम आ गया।

उनके शब्दों ने मेरे अन्तर की वीणा के सोये हुए तारों को छेड़ दिया। मेरी आंखें भर आईं। एक ऊहापोह का समाधान पाया, तो दूसरे ने नई प्रेरणा दी। तब मैंने सीखा कृष्ण के समत्व-योग को, महावीर के समभाव को और बुद्ध के मध्यम मार्ग को।

शायद आप लोगों के लिए इस घटना की कोई कीमत न हो। यह एक छोटी-सी घटना लगती हो, पर इस घटना ने मेरी दृष्टि बदल दी। घटना घटना ही होती है। चाहे वह छोटी हो या बड़ी। जीवन में नई दिशा किसी से भी, कहीं से भी, किसी तरह से भी आ सकती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और मैं कहूंगा संसार में जियो तो ऐसे। कीचड़ से ही कीड़ा पैदा होता है और कीचड़ से ही कमल। कीचड़ में पैदा हुआ कीड़ा कीचड़ में ही पैठता चला जाता है और कमल उसी कीचड़ में निर्लिप्त होकर सौरभ बिखेरता चला जाता है। परमात्मा का प्रकाश उसके बदन के अंग-अंग को रोमांचित कर देता है। उस कमल की प्रफुल्लता, निर्लिप्तता और सुषुमा में ही परमात्म-प्रकाश की सार्थकता है। सीखें हम कमल से कि जीवन किसे कहते हैं, साधना कैसे की जाती है और साध्य कैसे फल जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महत्त्व दें आत्म-मूल्यों को

दुनिया में न कोई ओछा है, न अज्ञानी। मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी और पेड़-पौधे भी महान और ज्ञानी हैं। बोधि उन्हें भी है। अनुभव की क्षमता से वे भी सम्पन्न हैं। इसलिए स्वयं के लिए यह कहने की आदत छोड़ देनी चाहिए कि मैं अधमाधम हूं, निरा अज्ञानी हूं। अपने आपको हीन और अज्ञानी मानना कोरी भ्रान्ति है।

मनुष्य सम्राट है। प्रत्येक अस्तित्व अपने आपका राजा है। पेट के कारण वह किसी का चाकर भले ही कहला ले, पर पेट-के-पार तो वह खुद ही मालिक है। मेरा प्रयास यही है कि व्यक्ति अपनी मालकियत पहचाने; स्वयं को ओछा कहने की प्रवृत्ति से मोक्ष पाए।

यहां हर कोई विराट् है। हर कोई आत्मवान् है। हर कोई भगवान है। प्रत्येक मनुष्य गत्यात्मक चेतना का धनी है। किसी को अधम और किसी को उत्तम कहना तो मात्र विकृत समाज-व्यवस्था है।

मनुष्य को चाहिए कि वह आंख आकाश की ओर उठाए। धरती पर आंख गाड़ने से थोड़ा-सा ग्रहण होगा और ऊपर उठाने से सारा आकाश आंखों में होगा। आंख सम्पूर्ण विराट् को स्वयं के दुकूल पात्र में समवा सकती है। आंख की क्षमता बहुत बड़ी है। क्षुद्रता है व्यक्ति की जो अपने-आपको छोटा निकम्मा मान रहा है।

नीचे झांकना क्षुद्रता है, ऊपर देखना विराटता।

यहां हम सब समान हैं। जैसा मैं, वैसे ही सब। जैसा मुझे अपना दिया जलता दिखाई देता है, वैसा ही औरों का भी। दिक्कत यही है कि आदमी अपने ज्योतिर्मय दिये को देखने की कोशिश नहीं करता। वह तो बस भागा जा रहा है रोशनी की तलाश में। भागिये मत; देखिये। रोशनी बह रही है अपने ही भीतर। प्रकाश विद्यमान है अपने ही अन्दर। स्वयं ही बनिये स्वयं के दीपक—अप्प दीपो भव।

जीवन सबका स्वतंत्र है। मैं किसी के जीवन में हस्तक्षेप न करूंगा। मेरा तो मात्र इतना ही कहना है कि जल रहे दिये को जलाने के लिए दियासलाई मत खोजिये। अपने को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अज्ञानी कहकर हीनता की घोषणा मत करिये। कुछ करना ही है तो अपनी अर्थवत्ताओं को जगाइये। जागरण ही आत्म-उपलब्धि है। इतना समझ लेना ही सम्बोधि-धर्म को आचरण में प्रगट करना है।

आत्मा उपलब्ध है। जीवन ही आत्मा है। उसे खोजना नहीं है, मात्र पहचानना है। धन सबकी जेबों में है। आत्मज्ञानी वह है जिसने हाथ डाल लिया है अपनी जेब में। धन तो व्यक्ति के पास ही है, चाहे जेब में हाथ डाले या सकुचाया रखे। फर्कसिर्फइतना ही है कि जेब में हाथ डाल लिया, तो धनवान और न डाला तो खुद के पास धन रहते हुए भी बेखबर होने के कारण निर्धन। जेब में हाथ ले जाने की प्रक्रिया का नाम ही ध्यान है।

विश्व में अभी करीब तीन सौ धर्म हैं। कोई धर्म ऐसा नहीं है, जो मनुष्य को अन्तरज्योति की उपेक्षा करने की बात कहता हो। मैं तो जो कुछ भी कहूंगा, जब भी कहूंगा, व्यक्ति के स्वयं के मूल्यों के लिए कहूंगा।

यदि मैं कहता हूं कि गुस्ताखी मत करो, तो आत्म-मूल्यों के लिए कह रहा हूं। यदि मैं कहता हूं किसी को माफ कर दो, तो वह भी आत्म-मूल्यों के लिए ही। कषाय हो या द्वेष उससे छुटकारा आत्म मूल्यों की रक्षा ही है।

आत्म-मूल्य से बेहतर कोई भी जीवन-मूल्य नहीं है। जो व्यक्ति आत्म मूल्य को ही जीवन-मूल्य मानता है, उसके लिए संसार में बलात् प्रवृत्ति कुछ भी नहीं होती। स्त्री और पुरुष के बीच होने वाली क्षुद्रता आत्म-मूल्यों के ह्रास काकारण है। आत्म-मूल्यों का सम्मान करने वाला मानवीय मूल्यों का सच्चा अनुयायी है।

आत्म-मूल्य प्राथमिक हों और विश्वास आनुषंगिक, तो ही जीवन में चैतन्य-क्रान्ति सम्भव है। आत्म-मूल्यों का समर्थन मानवीय मूल्यों का अनुमोदन है और यही वसुधैव कुटुम्बकम् के प्रति आस्था की आधारशिला है। यदि ऐसी सम्भावना मुखर हो जाये, तो कहां होगा फंसना अन्ध-विश्वासों तथा रूढ़ियों के भंवर में।

कहते हैं; महादेवी भिक्षु-जीवन स्वीकार करने के उद्देश्य से लंका के बौद्ध महास्थविर से मिलने गई। महादेवी ने अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी, क्योंकि वे भिक्षुणी बनने जा रही थीं। पर जब वहां राजशाही ठाठ-बाट देखा तो उन्हें लगा, यह कैसा भिक्षु है; भई! इतना तामझाम ही रखना था तो भिक्षु काहे को बने?

सिंहासन पर बैठे महास्थविर ने महादेवी से बातचीत करते समय अपने चेहरे को पंखे से ढक रखा था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जब महास्थविर के सचिव महादेवी को वापस पहुंचाने बाहर तक आए, तो महादेवी ने सचिव से पूछा महास्थविर मुंह पर पंखा क्यों रखते हैं? उन्होंने उत्तर दिया— वह स्त्री का मुख-दर्शन नहीं करते। महादेवी ने कहा, इतने दुर्बल व्यक्ति? तो मैं अपना गुरु नहीं बना सकती। जिसका खुद का मनोबल कमजोर है, वह हमें क्या देगा?

महास्थविर जो भी रहे हों, पर थे आत्म-मूल्यों से वंचित। उनका ब्रह्मचर्य स्वभाव-बोध नहीं वरन् बलात् था। जबरदस्ती पाला गया ब्रह्मचर्य देह-मूल्यों को सान्त्वना है, किन्तु आत्म-मूल्यों का दमन। आत्म-मूल्य को महत्त्व देने वाले के लिए भेद ही कहां रहता है स्त्री और पुरुष का। आत्मा न तो स्त्री है, न पुरुष; केवल मिट्टी के शरीर को इतना महत्त्व कि यह देखेंगे, वह नहीं देखेंगे। जीवन में चाहिए सहजता; स्वाभाविकता और वह भी बेनकाब। संन्यास जीवन की आभा हो, व्यवहार की आंखमिचौली नहीं।

आत्म-मूल्य ही जीवन में सज्जनता का इंकलाब है। बात चाहे स्त्री से करें या पुरुष से, छोटे से करें या बड़े से, ऐसे लगे जैसे किसी आत्मा से बोल रहा हूं। कोई आत्मा मेरे सामने है और आत्मा से सीधे संवाद हो रहे हैं। खुद में जैसी ऊंचाइयां और गहराइयां हैं, वैसी ही दूसरे में भी दिखाई पड़ जाये तो संवाद कोरा-संवाद नहीं रहता। वह भी उत्सव बन जाता है। वह संवाद एक नया रंग लाता है; आनन्द की बूंदाबांदी करता है। अहंकार सर्वकार में ढल जाये, तो विश्व-बन्धुत्व के चेहरे पर निखार आएगा ही।

अपनी आत्मा की तरह दूसरे की भी आत्मा चीन्ह लो, तो खुद का अहंकार रहता ही नहीं है। व्यक्ति जो कुछ भी अपने लिए चाहता है, वही दूसरों के लिए भी उसे चाहना चाहिए। यदि कोई अपने लिए किसी के मुंह से अपमान और अपशब्द सुनना नहीं चाहता, तो दूसरों के लिए भी वैसा ही सोचना चाहिए।

आत्म-मूल्य के इस धरातल पर जो होता है, सहज-साफ होता है। एक दूसरे का मिलन भी अभिवादन होता है। वहां आशीर्वाद देने का भाव भी नहीं रहता; लेने का भाव भी खो जाता है। उसमें होता है एक सहज अपनत्व। प्रभुता उसी की है, जो लघु को भी प्रणाम करने के लिए प्रस्तुत हो। आशीर्वाद में इतना भरोसा क्यों? भरोसा हो स्वयं पर, स्वयं के कर्तृव्य पर। अपने कर्म ही ऐसे हों कि वे ही शुभाशीर्वाद के सूत्र बन जायें।

मैंने बचपन में ही सुन रखा है कि साधु सन्त लोग महान् होते हैं। महान् के प्रति नतमस्तक होना स्वाभाविक है। सन्त प्रतीक है शान्ति का। सन्त यदि सच्चा हो, तो उसकी सोहबत तनाव-मुक्ति की सही तैयारी है। पुराने सन्तों की बानी मैंने घड़ों-भर पी है। सन्तों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की यदि कोई सबसे बड़ी त्रुटि है, तो वह है फिरकेबाजी की कट्टरता। यह उनका एक समाज-समादृत राग है। सत्य तो यह है कि साम्प्रदायिक राग किसी पारिवारिक राग से कम नहीं होता। इस राग की बढ़ोतरी ने ही उसकी अनन्त विराट् सम्भावनाओं को सीमांकित किया है। इसीलिए तो खतरे में पड़ी है सन्त की शान्त एवं विनम्र प्रवृत्तियां भी।

कई बार ऐसा होता है कि एक फिरके का साधु अगर दूसरे फिरके के साधु से मिल जाये, तो उनकी भाषण-अभ्यस्त जुबां को भी लकवा मार जाता है। दोनों एक दूसरे को नमस्कार करने से भी कतराते हैं। परस्पर मिलते ही आदर के भाव कम और सिद्धान्तों की दूरियों के भाव अधिक पुख्ते हो जाते हैं।

जो ऐसे हैं, वे प्रज्ञावान् नहीं हैं। उनके लिए सम्प्रदाय का मूल्य ज्यादा है, मानवता का कम। वास्तव में जो अपनी श्रेष्ठता का जितना दावा करते हैं, वे भीतर से उतने ही हीन हैं। अपनी श्रेष्ठता का हर दावेदार हीनता की ग्रन्थियों से जकड़ा है। श्रेष्ठ वह है, जिसे अपनी श्रेष्ठता का पता भी नहीं है।

साधु का सौन्दर्य तो निरहंकार है। एक साधु द्वारा किसी साधु को नमन न करना एक हीन किस्म का अहंकार है। भला, जब एक गृहस्थी भी किसी अपरिचित को अपना हाथ जोड़ने के लिए तैयार होता है, तो साधु विनम्र होने के लिए प्रस्तुत क्यों नहीं है? क्या वह साधु असाधुता के अंधे गलियारे में नहीं है, जिसके नमस्कार को दीमक लग चुके हैं?

सच तो यह है कि विनम्रता और सद्भावना की कटौती ने ही फिरकाबाजी बनाम वर्गभेद को बढ़ोतरी दी है। जीवन-मूल्यों पर ध्यान देने वाले साधु फिरकों-से-दूर आत्म-रसमयता की खुमारी में ही लवलीन रहते हैं। सच्ची साधुता के प्रकाश में ही जीवन की सही पहचान है।

साधु धार्मिक समाज का तो अगुवा होता ही है। यदि साधु साधुमात्र के प्रति ही नहीं, आम आदमी के प्रति भी नमे नयन रहे, तो विनम्रता एवं भाईचारा कोरा आदर्श न रहकर यथार्थ हो जायेगा। प्रभाव बोध देने से नहीं, बोध को आचरण में प्रकट करने से बढ़ता है।

मुझे पश्चिम बंगाल में ऐसे सन्तों के साथ भी रहने का मौका मिला है, जो गृहस्थ को भी साष्टांग प्रणाम करते हैं। मैंने जाना कि कोई भी सन्त, सन्त बाद में, सन्त से पहले मनुष्य है। स्वयं को दूसरों के समान न मानकर बढ़ा-चढ़ा मानना आत्म-मूल्यों की खुल्ली अवहेलना है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्म-मूल्यों को आत्मसात् करने के लिए चाहिए सहजता। सहजता पूरी तरह से हो, तो जगत् से संघर्ष एवं तनाव के प्रक्षेपणास्त्र न्यूनतर हो सकते हैं। सहजता ही परमात्म-दर्शन और आत्म-दर्शन की प्राथमिक भूमिका है।

अपने अहंकार और दूसरों की निन्दा-उपेक्षा से दूसरों का अहित होता है कि नहीं होता, पर अपना जरूर होता है। व्यक्ति दूसरों की निन्दा करेगा, तो भी आखिर वह अपनी ही कमजोरी का बखान होगा। वह अपनी ही हीनता और दरिद्रता की घोषणा होगी। अकड़े रहेगा, तो अपनी नजर में वह भले ही बड़े होने का सुख महसूस कर ले, पर दुनिया उससे कटेगी, दूर सरकेगी।

इसलिए स्वयं पर दया कीजिये और अपने अकल्याण से बचिये। हम सीखें अपने आपसे प्यार करना; आत्म मूल्यों का महत्त्व आंकना। सहज बनना सबके लिए विशुद्ध प्रेम एवं अपनत्व का जन्म है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आइये, करें जीवन-कल्प

चित्त परमाणुओं की ढेरी है। हर मनुष्य की यह निजी सम्पत्ति है। एक मनुष्य के पास कहने को तो एक ही चित्त होता है; किन्तु उस एक में अनगिनत सम्भावनाएं छिपी हुई हैं।

चित्त का अपना समाज होता है। जितना ज्यादा सम्पर्कऔर जितनी कल्पना, चित्त का समाज उतना ही ज्यादा विस्तृत, इसलिए चित्त हमारा घर नहीं है, वरन् इलाका है। इसमें कई गलियां हैं। कई कमरे हैं। इसका अपना बगीचा है। कई पाठशालाएं हैं। दोस्तों और दुश्मनों की भी कमी नहीं है।

चित्त व्यक्ति की अनन्त कल्पनाओं और संभावनाओं का आईना है।

मनुष्य आमतौर पर सचित्त ही रहता है। अचित दशा तो झील-का-शान्त होना है। चित्त ही व्यक्ति की चल सम्पत्ति है।यदि जीते-जी अचित/अचल-दशा की अनुभूति हो जाए तो वह समाधि-के-पार की अनुभूति है। अचित दशा में चित्त के परमाणु तो रहते हैं, मगर परमाणुओं का संघर्ष नहीं रहता। सरोवर तो जल से लबालब रहता है, पर हवाई तरंगें समाप्त हो जाती हैं। ठहर-ठहर कर उठने वाली विचारों और कल्पनाओं की तरंगें ही चित्त-चांचल्य है। जिस क्षण वायवी कल्पनाएं जाम होंगी, कक्ष निर्वात होगा, उसी क्षण जीवन-कल्प की संभावना मुखर हो पड़ेगी।

जीवन-कल्प काया कल्प से बहुत ऊपर की स्थिति है। काय-शुद्धि, वचन-शुद्धि और मनःशुद्धि का नाम ही जीवन-कल्प है। आत्म-शुद्धि जीवन-कल्प का ही शब्दान्तर है।

वह व्यक्ति जीवन-कल्प से कोसों दूर है, जो चित्त-चांचल्य का गुणधर्मी है। चित्त के साथ बहना मुर्दापन है। जीवन्तता बहने में नहीं, तिरने/तैरने में है।

आदमी हमेशा चित्त के कहे में रहा, इसीलिए तो उसे युग-युग बीत जाने के बाद भी कोई मंजिल नहीं मिली। यहां मंजिलें तो सत्य के मार्ग पर सैकड़ों हैं; पर हर कदम पर मंजिल होते हुए भी एक भी मंजिल नहीं मिली है। जो भटकाव है, वह भटकाव-के-नाम पर चित्त-का खेल है। चित्त की उलटबांसी को समझें—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यही जिन्दगी मुसीबत, यही जिंदगी मुसर्रत (आनन्द)।
यही जिन्दगी हकीकत, यही जिन्दगी फसाना।

मैंने सुना है; किसी ने, किसी से पूछा, भाई कहां जाते हो? उसने कहा— जिधर वह गधा जाता है। आदमी गधे पर सवार था। पूछने वाले व्यक्ति के बात समझ में न आयी। जहां गधा जाता है, वहां मैं जाता हूं, तो क्या गधे से पूछा जाए कि वह किधर जा रहा है? क्या यह जवाब देगा?

उसने कहा— भाई! तेरी बात समझ में न आयी। तो वो बोला— गधा मेरे काबू में नहीं है। मैं गधे के काबू में हूं। मैं दाये चलाना चाहता हूं तो वह बायें चलता है। मैं जब इसे बायें चलाने की कोशिश करता हूं, तो यह दायें चलता है। मैं घर जाना चाहता हूं तो वह बाजार की ओर चलता है और बाजार की ओर घुमाता हूं तो वह घर की ओर चलता है। मैंने सोचा यह तो फजीती हो गयी। लोग क्या समझेंगे कि गधा मेरे काबू में नहीं है। मैं गधे से भी गया-बीता हूं; इसलिए मैंने लगाम ढीली छोड़ दी है। जिधर चाहे उधर यह चले। कम-से-कम फजीती तो न होगी। मेरी इज्जत तो नहीं लुटेगी।

तो उसने पूछा— आखिर गधे ने तुम्हें कहां पहुंचाया? बोला— सुबह गांव से शहर की ओर चला। अभी तक कहीं नहीं पहुंचा। शहर के नरक के पास खड़ा हूं। अकूड़ी तक पहुंचा हूं।

पूछने वाले ने आगे बढ़ते हुए कहा— भाई! मैं तो आगे जा रहा हूं, पर तू इतना जरूर सोच कि तुम दोनों में गधा कौन है?

मनुष्य ऐसी ही जिन्दगी जी रहा है। फजीहत से घबराता है। जिधर चित्त जाता है, व्यक्ति स्वयं को उधर का राही बना लेता है। दिशाहीन यात्रा भला कहां पहुंचाएगी? ज्यादा-से-ज्यादा दुकान-से-घर और घर-से-दुकान। घर-से-घाट और घाट-से-घर। जिन्दगी की अनमोल घड़ियां इसी के बीच बीत जाती हैं।

चित्त अचेतन है। व्यक्ति स्वयं सचेतन है, पर क्या खूब है कि ड्राइवर कार नहीं चलाता, अपितु जिधर कार जा रही है, उधर ड्राइवर है; क्योंकि ब्रैक फैल है। ऐसी दशा में क्या कहीं किसी गन्तव्य की संभावना है? क्या कहीं कोई मंजिल है?

ताब मंजिल रास्ते में, मंजिलें थीं सैकड़ों।
हर कदम पर एक मंजिल थी, मगर मंजिल न थी।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्य के रास्ते पर यात्रा तो तब होती है, जब व्यक्ति चित्त से कुछ ऊपर उठे; वह अचित बने, अचल बने।

पर हां, योग केवल अचित्त होने से सधे, ऐसी बात नहीं है। स-चित्तता भी चेतना के द्वार पर दस्तक बन सकती है।

मोटे तौर पर चित्त की दो ही संभावनाएं हैं। या तो वह मार-से-कम्पित होता है, या राम-से-आन्दोलित। चित्त, मार और राम इन दो में से किसी एक को चुनता है। प्रशान्त चित्त होना समाधि में प्रवेश करने का द्वार है। मार से वासना को ईंधन मिलता है। राम तो मुक्ति की झंकृति है। चित्त का राम होना उसका विराम नहीं है। यह उसका अन्तिम पड़ाव नहीं है। वह तो चित्त की प्रखर ऊर्जा को परमात्म-दर्शन की राह पर संयोजित करना मात्र है।

चित्त का विराम दमन है और दमन भूकम्प की पूर्व संभावित तैयारी है। अगर चित्त राम से आन्दोलित हो उठे तो साधना को साधने में और अपने अन्तर्यामी को पहचानने में चित्त से बड़ा मददगार अन्य कोई नहीं है। जीवन की टूटी-बौखलाई टांगो को वही चित्त बैशाखी बनकर आगे बढ़ने में जबर्दस्त मददगार हो जाता है। जो नौका अब तक हमें भटकाये हुए थी, वही किनारा पाने में सहायक हो जाती है।

अगर चूक गये राम-से-आन्दोलित होने से, तो फंसेंगे मार के चंगुल में। मार अगर प्रभावी हो गया, तो उसकी मिठास-चिपकी छुरी को चाटना पड़ेगा। छुरी पर लगी चासनी को खाना शक्कर के नाम पर जहर पीना है। यह अमृत के नाम पर विषपान है।

मार तो नशे की गोली है। जिसने खायी, उसकी दशा बिल्कुल हीरोइन-पियक्कड़ की तरह होगी। अगर हीरोइन ली, तो जीवन की गोद में मौत का खतरा है; अगर न पी, तो तड़फेंगे, झुलसेंगे। यह तो प्याले में उभरात तूफान है।

पहले समझें राम और मार को। 'मार' का अर्थ चांटा लगाना नहीं है। मार राम की उल्टी शब्द 'संयोजना है। राम की संधि तोड़ो। र, अ, म, यह राम का अक्षर-संधि विच्छेद है। इसे पलटो। अब अक्षर-रचना हुई म, अ, र। म से अ की संधि हुई तो मा बना। मा के साथ र की संयोजना ही मार है। यह बिल्कुल राम का उल्टा है। इन दो शब्दों को अगर ध्यान से समझ लिया, तो शास्त्रों की एक बड़ी खेप आपकी समझ में आ गयी।

मार काम-वासना का देवता है। किसी को किसी के चंगुल में फंसा देना, यही मार का काम है। मार विपरीत का आकर्षण है। दो विपरीत धर्मों को एक सूत्र में बांधना ही मार का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कृतित्व है। वर्णसंकर इसका व्यक्तित्व है। पुरुष एक धर्म है। स्त्री दूसरा धर्म है। दोनों एक-दूसरे से विपरीत हैं। दो विपरीत तत्वों का रागात्मक संबंध ही मार है। वही संसार है। मार से प्रभावित होना स्वयं का संसार के प्रति लोकार्पण है और राम से प्रभावित होना चित्त का परमात्मा के परम पथ पर संयोजन है।

मार और राम दो हैं। ये एक स्थान में नहीं रह सकते। एक सिंहासन पर एक ही राजा की बैठक हो सकती है, दो की नहीं। जहां राम है, वहां मार नहीं। जहां मार है, वहां राम नहीं। भला राम और रावण कभी दोनों संग-संग रहे हैं? राम और काम दोनों परस्पर शाश्वत वियोगी कवि है।

सम्बद्ध लोगों की बात छोड़ो, आम आदमी तो मार के चंगुल में है। मार चार्वाक् दर्शन की बुनियाद है। आदमी चाहे जैन कुल में जन्मा हो या बौद्ध कुल में या ईसाई, पारसी, हिन्दु कुल में बातें सिद्धान्तों की चाहे जितनी कर ले, पर कर्म से तो वह चार्वाकी है। आत्मा और परमात्मा की बातें करने वाले, शरीर और संसार की नश्वरता का बखान करने वाले 'खाओ, पियो, मौज उड़ाओ' की उमरखैयामी जिन्दगी जी रहे हैं।

मार के पीछे बड़े-बड़े धुरन्धर पागल हैं। आम आदमी तो मार के इशारे पर है ही, यह उन लोगों को भी डिगा देता है, जिनका चित्त राम से आन्दोलित है। ले आता है यह किसी अप्सरा को और उसे कर्त्तव्य-पथ पर आगे बढ़ने से फिसला देता है। मेनका मार की ही तो माया है।

समझें मार की राजनीति बनाम कूटनीति को। मार और कुछ नहीं, व्यक्ति की स्वयं-की-कमजोरी है। मूलतः मार का कोई अस्तित्व नहीं है। यह तो व्यक्ति की दुर्बलता है। मार वहीं पर शैतान बनता है, जहां वह व्यक्ति को दुर्बल देखता है। कहते हैं 'निर्बल के बल राम'। यह तो मात्र संतोष करने के लिए है। शैतानियत जितनी निर्बल करते हैं, उतनी सबल लोग नहीं करते। जहां व्यक्ति सबल है, वहां शैतान नहीं है। जहां व्यक्ति निर्बल है, शैतान वहीं है। मार वहीं है।

जो व्यक्ति जितना ज्यादा निर्बल होगा, वह मार से उतना ही प्रभावित होगा। सैक्स या एड्स से वे ही पीड़ित हैं, जो दुर्बल हैं। जिसने पहचान लिया अपने बल को और बल के कारणों को, उसका चित्त मार से कभी कम्पित नहीं हो सकेगा। एड्स निर्बलता है। निर्बल की सोहबत से निर्बलता को बढ़ावा मिलेगा, सबल के सम्पर्क से सबलता निखरेगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कांच को सूरज की ओर करके देखो, उसमें भी बिजली पैदा हो जाएगी। अगर उसके झलके को किसी दूसरे व्यक्ति की आंखों पर गिरा दो तो वह क्षण भर में आन्दोलित हो जाएगा। वास्तव में सबल होने का नाम योग है। सबल होना चारों ओर से संयत होना है और संयम-से-भरा जीवन अस्तित्व की सबसे बड़ी उपलब्धि है। निर्बल का पुरुषार्थ तो अंधेर से लड़ना है। उसे जो भी सूझता है वह अन्धे का सूझना है। कैसा व्यंग्य है यह कि अन्धे को अंधेरे में दूर की सूझती है।

यह चित्त राम से आन्दोलित होता है, तब निश्चित है कि मार उसके समाने निष्प्रभ हो चुका है। राम के सामने मार की तूती कम बजती है। जीवन की गंध तो दोनों ही हैं— मार भी राम भी। मगर राम जीवन की सुगन्ध है और मार जीवन की दुर्गन्ध। जो दुर्बल है उस पर मार हावी है। दुर्बल की चेतना मार की कथरी में दुबकी रहती है। सबल योगी है और सबल होने की कला का नाम योग है।

इसलिए यह कभी न समझना कि स्त्रियां खराब है, नरक का द्वार है; क्योंकि यह भूल सदियों-सदियों से होती रही है। पुरुष ने अपनी निर्बलता को पहचाना नहीं; इसलिए उसने स्त्री को मोक्ष में बाधा माना। मनुष्य की इस भूल ने नारी-जाति पर बहुत बड़ा अत्याचार किया है। चाहे कोई ऋषि हो या शास्त्र, जिसने भी ऐसा कहने की हिम्मत की उसने मानवीय कमजोरी को नहीं पहचाना। नारी-जाति के लिए वह एक अक्षम्य अपराध है।

मोक्ष या साधना के लिए न कभी पुरुष बाधक बनता है और न स्त्री। बाधक स्वयं की कमजोरी है, स्वयं की निर्बलता है और स्वयं की मार है। स्वयं की कमजोरी छिपाने के लिए यदि कोई व्यक्ति स्त्री के माथे पर दोष मांडने का दुस्साहस करता है तो वह वास्तव में उसी यान में बम-विस्फोट करने की धमकी दे रहा है जिसमें वह खुद चढ़ा/बैठा है।

मेरे पास कई लोग जो आते है, ध्यान की कला सीखने के लिए, समाधि के आकाश में उड़ने के लिए; सब आप बीती सुनाते है। उनकी आत्म-कथा सुनो तो बड़ी हंसी आती है। कल ही एक सज्जन कह रहे थे कि मैंने मंदिर जाना बंद कर दिया। मैंने उनसे इसका कारण पूछा और उन्होंने सही-सही कारण बतला दिया। झूठ मुझे पसंद नहीं है यह बात नहीं, आदमी स्वयं झूठ बोलने की मेरे सामने आत्म-प्रवंचना कर नहीं पायेगा। [illegible] के सामने भी अगर तथ्य छिपाओगे तो फिर सच्चाई का बयान कहां करोगे? यहां तो किये का पछतावा होना ही चाहिये। मेरी दृष्टि में कन्फेसन (आत्म-स्वीकृति) का बड़ा मूल्य है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जानते हैं उन सज्जन ने क्या कहा? कहने लगे— मंदिर जाता हूं, तो जैसे ही किसी सुन्दर स्त्री को वहां देखता हूं, मेरी आंखें मलिन हो जाती हैं। एकाग्रता धूमिल हो पड़ती है। मैंने सोचा यहां दृष्टि निर्मल नहीं रह पाती, इसलिए मैंने मंदिर जाना छोड़ दिया।

मैंने कहा— वह आपकी नासमझी है। अगर बदलना ही है तो अपनी नजरों को बदलो। मंदिर जाना बंद क्यों करते हो? अपनी वृत्ति और अपनी कमजोरी को न पहचान कर दोष डाल रहे हो किसी सुन्दर स्त्री पर, भगवान के मंदिर पर। अपराधी न स्त्री है और न स्त्री का सौन्दर्य। अपराधी तुम स्वयं हो। अपराध तुम्हारी स्वयं की कमजोरी है। चोर स्वयं हो और दोष मंड रहे हो अन्यों पर।

जब ध्यान करने बैठोगे तब मन की चंचलता उभरती दिखायी देगी। वास्तव में वह मन की चंचलता है ही नहीं। तुम बैठे हो एकान्त में तो मन तुम्हें कुछ सुनाना चाहेगा। वह तुम्हारे स्वयं की कहानी सुनायेगा। क्या तुमने कभी अपनी आत्मकथा पढ़ी है? गांधी या टॉल्सटाय की आत्मकथा पढ़ने वाले लोग कभी अकेले में जाकर बैठे और खुद पढ़ें खुद की आत्मकथा को। जन्म से लेकर अब तक जो भी अच्छा-बुरा किया है, उसका सारा इतिहास अपने मस्तिष्क में स्मरण करो, उसका मनन करो और गांधी की आत्मकथा की तरह उससे कुछ सीखो। आश्चर्य होगा आपको कि गांधी की आत्मकथा पढ़ते-पढ़ते अभी तक जीवन में कोई क्रान्ति न आयी, पर स्वयं की आत्मकथा पढ़ते-पढ़ते जिंदगी एक ही दिन में गांधी के मंच पर जा चढ़ी।

दूसरे की आत्मकथा को सौ बार पढ़ने की बजाय स्वयं की आत्मकथा को एक बार पढ़ना ज्यादा बेहतर है।

ध्यान के समय मन अगर चंचल होता लगे, तो ध्यान से भागना मत, अपितु मन के व्यक्तित्व को और उसकी गतिविधियों को समझना; मन को टिकाने का अचूक साधन है।

मन कुछ सुनाने को उत्सुक है। वह लालायित है कुछ कहने को, पर वह सुनायेगा व्यक्ति को एकान्त में ही। जब सुनना चाहोगे तभी सुनायेगा। जब आंखे बंद हों, होठ चुप हों, काया टिकी हो, तभी मन हमारे कानों में कुछ गुनगुना सकता है। मन की गुन-गुनाहट और फुस-फुसाहट को सुनने की कोशिश कीजिये।

मन अच्छी बातें कहने के लिए कभी नहीं आयेगा। वह स्वयं नहीं सिखायेगा, अपितु सीखने के निमित्त उपस्थित करेगा। वह व्यक्ति के बदकिस्मत बने अतीत से सीखने के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिए व्यक्ति को प्रेरित और उत्साहित करेगा। वह अपने पॉकेट में दबी कतरन को दिखायेगा। स्वयं के सोये पुरुषार्थ को जगाने के लिए मन चुल्लू-भर पानी छिटकेगा। कभी पूरी न होने वाली उन हवाई कल्पनाओं से साक्षात्कार करवायेगा, जिसका अंकुरण व्यक्ति ने स्वयं किया है; जिन्दगी-भर किया है, इसलिए ध्यान के समय होने वाली मन की चंचलता वास्तव में व्यक्ति की अतृप्ति और तृष्णा का छायांकन है।

इसीलिए मैं कहता हूं कि अपनी कमजोरी को समझने की कोशिश कीजिये। अपनी वासना और अपनी सेक्स-भावना को पहचानने की चेष्टा कीजिये। जिस क्षण स्वयं की दुर्बलता को समझोगे उसी क्षण चित्त मार से अकम्पित हो जाएगा। उसका सारा आंदोलन राम से जुड़ा होगा, न कि मार से।

व्यक्ति दुःखी जब-जब भी होता है, मार के कारण होता है, पर अब वह इतना अभ्यस्त हो चुका है कि वह खुजली खुजलाने में सुख की अनुभूति कर रहा है। यदि कोई इसे सुख कहता भी है, तो यह सुख चक्षुष्मान कभी नहीं हो सकता। यह सुख सूरदास है। खुजलाने से मिलने वाले आनंद का अनुभव तो बार-बार स्मरण आता है और फिर-फिर खुजलाने के लिए तत्पर हो जाते हो। पर जरा याद करना उस दर्द को, उस पीड़ा को, उस मवाद और उस खून को, जो परिणाम है खुजलाने का। उस रास्ते क्या चलना जो बढ़ाये जा रहा है अन्धकूप की ओर। स्याही से कपड़े को भिगो कर साबुन से धोने की अपेक्षा तो अच्छा तो यही है कि उसे स्याही से भिगोया ही न जाए।

गंगा पवित्र है, उजली है; पर तभी तक जब तक वह अपने स्वरूप में है। विपरीत के साथ उसका मेल उसकी पवित्रता के लिए चुनौती है। चित्त का प्याला अगर शान्त हो जाए तो वही समाधि है, अगर वासना से प्रभावित हो जाए तो उसी प्याले में तूफान है और अगर परमात्मा से आन्दोलित हो जाए तो उसी में आसमान है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

घुटन का आत्मसमर्पण

मनुष्य परम श्रेय के प्रति समर्पित है। जीवन में प्राप्त होने वाली हर सफलता पर उसे गर्व है, तो असफलता पर खेद भी। मेहनत करने के बावजूद जब व्यक्ति को असफलता का सामना करना पड़ता है, तब उसका अपने-आपसे खीझना स्वाभाविक है।

मनुष्य खड़ा है पुरूषार्थ और भाग्य के दोराहे पर। वह सुख और सफलता को भगवान् का अमृत मानता है; किन्तु दुःख और असफलता को वह भगवान् का वरदान मानने के लिए तैयार नहीं है। लड़ रहा है वह अपने भाग्य के साथ, पर यदि वह भाग्य का आत्मीय बन जाए, तो उसके साथ उसकी लड़ाई समाप्त हो सकती है।

प्राप्त कर्त्तव्य में पुरूषार्थ का उपसंहार ही भाग्योदय है।

मनुष्य सुख सुविधाओं का इतना चाही है कि हर असफलता/प्रतिकूलता उसका जीना हराम कर देती है। जीवन का यथार्थ सुख तनाव-शून्यता में है। किसी कार्य में असफल होना पहली पराजय है, मगर उसे मन में रहने के लिए न्यौता देना दूसरी पराजय है। पहली पराजय को भाग्य की चुनौती कहा जा सकता है; किन्तु दूसरी पराजय प्रज्ञा-दृष्टि और जीवन-बोधि की कमी की द्योतक है।

यों तो व्यक्ति आठों याम कुछ-न-कुछ सोचता रहता है। सोच चाहे चाहा हो या अनचाहा, मेहनबाजी करवा ही जाता है। जीवन-दर्शन के प्रति सोच तब गर्भज होता है, जब असफलताएं ठेठ हत्तन्त्री को झकझोर डालती है।

असफलता जीवन-चिन्तन की जननी है। जीवन में क्रान्ति चरम वेदना के क्षणों में ही घटित होती है। जब व्यक्ति चारों तरफ से असहाय, अशरण और निराधार खड़ा हो, उस समय थोड़ी सी सूझ भी डूबते को तिनके-का-सहारा बनती है। असफलता पर असफलता पाने वाले सम्राट के लिये मकड़ी की सोलह बार फिसलन और आखिरी बार घर-जाल-की-बेहदी-पर दस्तक सफल प्रेरणा का लाजवाब जीवन्त सूत्र सिद्ध हुआ है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य का प्रयास रहना चाहिए कि वह जीवन को भरपूर सफलता से जिये। तनाव और घुटन भरी जिंदगी जीना चलते फिरते शव को कन्धे पर ढोना है।

तनाव दुःखदायी स्वप्न यात्रा है। सपनों के साथ बितायी गयी रात मात्र समय बिताना है, नींद की आवश्यकता को आपूर्त करना नहीं। धन, परिवार या अन्य सुविधाएं होते हुए भी व्यक्ति घुटन भरी जिंदगी क्यों जिये?

धुंए-सी जिन्दगी जीने के बजाय दीपक-सी जिन्दगी जीना लाख गुना बेहतर है। धुएं सी जिन्दगी मौत है। जीवन, जलना है अनिमेष दीपक का।

मनुष्य विवश है। उसकी विवशताएं ही उसे प्रेरित करती है स्वयं के लिए सोचने को। भीड़ भरी जिन्दगी में भी मनुष्य को अपने लिए सोचने की कुण्ठित या उन्मुक्त जिज्ञासा जागृत होती है। वह अपनी मुंह बोली मौलिकता के अस्तित्व को पहचानने के लिए अन्तःप्रेरित होता है। उसकी यह अन्तःप्रेरणा ही अध्यात्म की ओर कदम बढ़ाना है।

मनुष्य की अन्तर-जिज्ञासा यदि सघन-से-सघनतर होती जाए, तो सत्य की खोज के लिए वह न केवल चिन्तन करता है, अपितु अपने कृतित्व को उस पथ पर संयोजित भी करता है। वह अपने आप से ही पूछता है-आखिर में कौन हूं, मेरा जीवन-स्रोत, मेरी मौलिकताएं और मेरे मापदण्ड क्या है, यह दुनिया क्या है, और मैं यहां क्यों हूं; सुख सुविधाओं के अम्बार लगने के बावजूद दुःख और तनाव के कारण क्या हो सकते हैं?

चिन्तन की गहराइयों में उसकी जहां तक पहुंच हो सकती है, वह तलस्पर्श करने का अदम्य पुरूषार्थ करता है। वह उस आखिरी सत्ता को भी खोज निकालना चाहता है, जो संसार चक्र की धुरी है। चिन्तन की इस आत्यन्तिक गहराई का नाम ही जीवन-समीक्षा और योग-अनुप्रेक्षा है।

कविताओं की रहस्यवादिता जिस सत्ता/शक्ति से जुड़ी है लोगों को उसकी झलक अपने भीतर मिलती है, जबकि कल्पना की जमुहाई लेने वाले कवियों को उसका प्रतिबिम्ब प्रकृति के सहस्रमुखी/सहस्रबाहु रूप में मिलता है। उस शक्ति को नाम फिर आप आत्मा दें या परमात्मा, उस तादाम्य की अनुभूति ही ध्यान की स्नातक सफलता है।

यह सत्ता ही अस्तित्व की मौलिकता है। उसका परिचय पत्र क्या? यदि ध्यान से उसकी उपलब्धि हो जाए, तो विजय का उन्माद कैसा? यदि हत्तन्त्री में उसकी झंकृति न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी हो, तो हार का शिकवा कैसा? हाथ में प्राप्त हो या अप्राप्त, पैसा तो पर्स में ही है। आखिर है तो वही व्यष्टि बनाम समष्टि का व्यक्तित्व।

एक व्यक्ति की घड़ी खो गई थी, सो वह उसे ढूंढने लगा। पड़ौसी भी उसकी मदद करने लगे। सारी गली छान ली, पर घड़ी की छांह भी हाथ न लगी। ढूंढते-ढूंढते पड़ौसी ने पूछा- 'घड़ी खोयी कहां थी? कहा—'घर में'।

पड़ौसी सकते में आ गया। कहने लगा- 'यह कैसी मूर्खता, घर में खोयी घड़ी को ढूंढ रहे हो गली में? व्यक्ति ने कहा-बात तेरी पत्ते की है, पर घर में अंधेरा जो ठहरा। गली में तो रोशनी बह रही है।

घर में खोयी वस्तु घर में ही ढूंढनी पड़ती है, फिर चाहे घर में अंधेरा हो, या उजाला। भीतर में पाये गये तनाव के अंधेरे से बिदक कर कहीं और आंख फैलाना सत्य की खोज नहीं, मात्र क्षितिजों में आकाश की सीमा ढूंढना है, कोरा भटकाव है।

आठों पहर चलने वाले इन्सान को भी यह खबर नहीं है कि वह कहां जा रहा है, उसका लक्ष्य क्या है, वह लक्ष्यपूर्ति के लिए कितना समर्पित है? सुबह से शाम की यात्रा में जिन्दगी यूं ही तमाम होती है। मेहनत की कुल्हाड़ी से खाई खूब खोदता है, पर स्वयं की राख से ही उसे पाट डालता है। हाथ सिर्फ माटी लगती है, रत्नों का संभार नहीं।

मनुष्य स्वयं चेतना की विराटता का सूत्र है। उसे अपनी गतिमान चेतना का समन्वय स्थापित कर स्वयं के आनन्द का उत्सव मनाना चाहिए। उसका उत्सव महोत्सव की रंगीनियां पाये, इसकी बजाय उसने स्वयं को दलदल के कगार पर ला खड़ा किया है। इससे उसकी घुटन घटी नहीं है, बल्कि सौ गुना बढ़ी है।

कहते हैं, आर्य विकसित सभ्यता के प्रवर्तक हैं। आज आर्यता स्वयं प्रश्नचिह्न बन कर उपस्थित है स्वयं आर्य के समक्ष। गुण का पुजारी कहलाने वाला आर्य भी बेइमानी और बलात्कार पर उतर आये, तो अनार्य की परिभाषा क्या होगी? आने वाले आर्यों की आर्यता किसी समय इतनी छिछली होगी, यह कभी पूर्वज अनार्यों ने सोचा भी न होगा। अनार्यों ने खुद को मांजने के लिए आर्यों की संस्कृति अपनायी। परिस्थितियां चेहरे बदलती हैं। अनार्य कदम बढ़ा रहा है आर्यता की देहरी की ओर, और आर्य आंखें गड़ा रहा है अनार्यता के अन्धकूप की ओर।

युगों-युगों से अमृतवाही कही जाने वाली गंगा में भी आज अमृत की खोज करनी पड़ रही है। जिस गंगा के दो चुल्लू पानी से सरोवर पवित्र हो जाते थे, आज वही गंगा मैली हो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रही है। स्वर्ग से उतरी उसकी दूध जैसी धारा पर इतना मैल चढ़ गया है, कि उसकी धुलाई के लिए धोबी-घाट की तलाश जारी है। एक बात तय है कि पावनताएं कितनी भी कुण्ठित हो जाएं; किन्तु एकाग्रचित से एकनिष्ठ हो कर कोशिश की जाए तो पावनता की वापसी सहज संभव है।

मेरी शिकायत यात्रा से नहीं, भटकाव से है। मनुष्य की जिन्दगी ठौर ठौर घूमने वाले बंजारे सी है। केवल पांव चले, तो कोई शिकायत नहीं, पर मन भी चलतापुर्जा रहे तो जीवन की एकाग्र अखण्डता लंगड़ी खायेगी ही।

पांवों-का-योग और मन-का-वियोग ही संन्यास है। मन की पलकों का न झपकना ही अध्यात्म के धरातल में ध्यान की निष्ठा है। वह तो घरबारी ही है जिसके पांव तो एक घर से, एक परिवार से बंधे है; पर मन घर-घर में गोचरी करता फिरता है। मन की इस प्रवृत्ति का नाम ही अन्तर्जगत् का दारिद्रय है।

पांव तो चलने ही चाहिए। चलते पांव ही तो कर्मयोग की कथा के पात्र है। पांव प्रतीक है कर्मयोग का। पांव रूका कि पटाक्षेप हुआ कर्मयोग के नाटक का। क्या नहीं सुना है बचपन से- 'बहता पानी निर्मला, रूके तो गंदा होय'। पानी है परिचायक/रूपक गांव का।

मन की व्यवस्था पांवों के कर्मयोग के ठीक विपरीत है। यदि चलना ही कर्मयोग कहा जाए, तो मन से बड़ा कर्मयोगी संसार में कोई भी नहीं है। यहां तक कि संसार की सारी योजनाओं का व्यवस्थापक भी मन की कर्मयोगिता के सामने कुबड़ा लगेगा।

जीवन में अपेक्षा मनोकर्म की नहीं, मनोयोग की है। मनोयोग है मन की एकाग्रता। समुंदर की लहरों की तरह छितराने वाला मन कर्मयोग नहीं, वरन जीवन रोग है। तनाव और घुटन का मवाद रिसता है मन के घाव से ही।

इसलिए मन रोग है रोग-मुक्ति जीवन-स्वास्थ्य की अनिवार्य शर्त है।

मन है सुविधावादी/अवसरवादी। अच्छे विचार और बुरे विचार की प्रतिस्पर्धा का प्रतियोगी है वह। जो भी चीज उसे उसके अनुकूल लगेगी, वह उसके साथ रहने में ही अपना सत्संग मानेगा। ध्यान है विचारों का मौन। विचार चाहे अच्छे हों या बुरे, तनाव की जड़ है। जहां अच्छाइयां हैं, वहां बुराइयां भी हैं, जहां बुराइयां हैं वहां अच्छाइयां भी है। ध्यान अच्छे-भाव/बुरे-भाव-से-मुक्त, मात्र स्वभाव है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो व्यक्ति मन में है, वह अधार्मिक है। अधर्म है विभाव-में-रमण, धर्म है स्वभाव-में-चरण। मन की हर परिणति स्वभाव के लिए चुनौती है। मन के कर्म-योग के रहते व्यक्ति का अवसरवाद और पाखण्ड नामर्द नहीं हो सकता।

अमन है जीवन में सदाबहार चमन करने का राज। सुख-दुःख तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, धूप-छांव का खेल है। जीवन में जरूरत है उस आनन्द की, जिसके प्रास्ताविक से उपसंहार तक कहीं भी तनाव न हों। जीवन आनन्द के लिए है, नृत्य के लिए है, पुण्य-कृत्य के लिए है, तनाव या दम घुटाने के लिए नहीं।

अमन-दशा में मन की मृत्यु नहीं होती, वरन् मन विलय पा लेता है आत्मा के धरातल पर। मन का देह से जोड़, सारे जहान से मन का चुम्बन जीवन में संसार-निर्माण की आधार-शिला है। यदि साक्षित्व-का-सर्वोदय हो जाए तो बिना किसी ननुनच के मन के तादात्म्य का निरोध हो सकता है।

कहते है; जंगल से गुजरते समय गौतम की भेंट अंगुलिमाल से हुई। अंगुलिमाल था रक्त-पिपासु हत्यारा और गौतम थे चेतना-के-शिखर।

अंगुलिमाल ने गौतम को ललकारा और जिस पगडंडी पर वे चल रहे थे, वहीं ठहरने का निर्देश दिया। गौतम मुस्कुराये और चलते-चलते ही कहा, मैं तो ठहरा हूं, हे निर्देशक! चलना तू बन्द कर!

गौतम का वक्तव्य प्राणवन्त था, पर अंगुलिमाल के लिए वह उलटबांसी था। चलते राही गौतम स्वयं को रूके हुए बता रहे थे और पहाड़ी की चोटी पर खड़े अंगुलिमाल को चलता हुआ। यह बात तो उसे बाद में समझ में आयी कि व्यक्ति का चलना तो वास्तव में उसी दिन समाप्त हो जाता है, जिस दिन मन की चाल में वैशाखी हाथ से छुट जाती है।

गौतम ने कहा- 'अंगुलिमाल ! अपने मन में बहते गन्दे नाले को देख ! मुझ रुके हुए को रुकने को क्यों कह रहा है? जिन कृत्यों से तू जुड़ा है, उन्हें जाग कर परख। कितने भयंकर हो सकते हैं उनके परिणाम ! जीवन मृत्यु की ओर बढ़ने के लिए नहीं; छीना-झपटी और भागदौड़ के लिए नहीं; तनावमुक्त आनन्दमय महाकरुणा के लिए है।'

कहते हैं; अंगुलिमाल का दिल बदल गया। वह फर्शाधारी से काषायधारी बन गया। यह एक अभिनव क्रान्ति थी।

चूंकि अंगुलिमाल ने हजारों लोगों के घर उजाड़े थे, कितनों की हत्याएं की, इसलिए ठौर-ठौर पर उसके दुश्मन थे। पर साधक को तो मृत्यु के प्रति भी मित्रभाव रहता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भिक्षाचर्या के लिए निकलने पर पहले ही दिन लोगों ने उसे पत्थरों से मार कर अधमरा कर दिया। जीवन की आखिरी घड़ी में उसने गौतम को अपने पास पाया। वह कृतज्ञ था। मार के बीच भी मुस्कान थी उसके मृत्युंजय चेहरे पर।

गौतम ने उससे पूछा- 'वत्स! तेरा क्या भाव है? अंगुलिमाल ने कहा, भन्ते ! ठहरे हुए का क्या भाव !'

गौतम बोले— 'पुत्र ! तुम्हें प्रणाम है। तुम्हारा मरण डाकू का नहीं, महा-महोत्सव है अरिहन्त का। तुम निर्वाण पा रहे हो जिन !'

जीवन-भर सोयी दशा में पाप कृत्यों का कृतित्व अदा करने वाला व्यक्ति यदि जाग कर छोटे से पुण्य कृत्य को भी अपनी सम्पूर्ण समग्रता से करे, तो निर्वाण की सम्भावना को नकारा नहीं सा सकता। जागृत अवस्था में अन्तरनेत्रों का विमोचन ही ध्यान की भूमिका है। ध्यान है शिवनेत्र। यदि यह न खुले, तो व्यक्तित्व सूरदास है।

जीवन बना हुआ है गलाघोंट संघर्ष और ध्यान है उससे मुक्ति का उपाय। मनुष्य ने भले बुरे विचारों का पर्दा बुना है और वह पर्दा ही उसके लिए घुटन का कारण है। उस पर्दे को उठाने का नाम ही ध्यान है। समाधि है विचारों के पार झांकने की क्षमता। समाधि है शान्ति; विचारों की शान्ति; मन की ऋषिता। इस प्रतिक्रिया एवं संघर्ष-मुक्त स्थिति की प्राप्ति ही जीवन में सम्यक् शान्ति की उपलब्धि है।

ध्यान है प्रसाद का क्षण, प्रसन्नता का घूँट। यह वैसी ही प्रसन्नता है जैसी बचपन में बच्चे को होती है। अंगूठे को चूसने में, रेती का घरौंदा बनाने में, या बट्टू (पत्थर) बीनने में भी वह प्रसन्न है। उसके अन्तर्जगत में उस स्थिति में न रहता है विचार, न विचारों की उथलपुथल; रहता है सिर्फ प्रसाद/आनन्द। ध्यान घटता है प्रसन्नता के क्षणों में। ध्यान सध जाए, तो व्यक्ति रहेगा, जगत् भी रहेगा, उठ जाएगा मात्र विचार का पर्दा दोनों की सन्धि के बीच।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वयं के मार्ग में

जीवन खोने के लिए नहीं है, वरन् कुछ उपलब्ध करने के लिए है। ज्योति बुझे, उससे पहले उसके अस्तित्व की अमर यादगार के पद-चिह्न मंड जाने चाहिए।

जीवन का सम्पूर्ण आभा-मण्डल सत् है। सत् अस्तित्व की विरलतम घटना है। सत्य सत् का ही फैलाव है। सत्य से बढ़कर जीवन कैसा और सत्य से बढ़कर प्यार कैसा? सत्य-से-प्यार जीवन-से-प्यार है। सत्य की अवहेलना स्वयं के प्रति आंख मूंदना है।

सत्य को जीवन में आत्मसात् करने वाला सत् का सच्चा वफादार है। अगवानी चाहे सत् की करो या सत्य की, दोनों एक ही हैं। ऐसा समझें सत् सत्य की नींव है। इसलिए जो कुछ करें, वह सत्य पर आधारित हो, सबका कल्याण करने वाला हो, सुन्दर हो।

सत्य हमेशा मधुर होता है। कड़वाहट का सत्य से क्यावास्ता? कहते हैं सच्ची बात कड़वी होती है। यह अतिरेक है। वह सत्य तो असत्य से भी बदतर है,जो दूसरे को कड़ुवा लगे। कहने का तौर-तरीका सही और सधा हुआ हो, तो कोई भी सच्ची बात तीखी/तीती नहीं लग सकती।

साधक को तो सत्य का रत्ती-रत्ती पालन करना होता है। सत्य से प्यार हो जाये, तो पालन करने की व्यावहारिकता भी नहीं रहती। वह जो कुछ कहता है, जो कुछ करता है, वह सत्य रूप ही होता है। सत्य से हटकर जीवन का अस्तित्व मरियल होगा।

सत्य से बेहद प्रेम होना चाहिए। जहां सत्य है, वहां प्रेम रहता ही है। प्रेम भी सत्य की ही अभिव्यक्ति है। बिना प्रेम के आदमी जंगली है और बिना सत्य के मरघट।

स्वयं की पहचान के लिए सत्य को पहचानना पड़ता है और सत्य को पहचानने के लिए खुद को मेहनत करनी पड़ती है। उन लोगों से भी भरे दिल मोहब्बत करनी पड़ती है, जिन्होंने सत्य को पाया है, स्वयं सत्य रूप हुए हैं। किसी बुझे हुए दीप का ज्योतिर्मय दीप से सम्पर्क ज्योति-बोध के लिए सबसे सही पहल है।

सत्संग का सही रहस्य है। सत्संग सन्त के लिए नहीं, वरन् अपने लिए होता है। शान्त चित्त होकर स्वयं के व्यक्तित्व को मुखर करना है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वयं की पहचान कैसे हो, अपने व्यक्तित्व का विकास कैसे करें, इसीलिए सत्संग है; ताकि जिन्दगी में कोई-न-कोई ऐसा संग मिल जाये, जिससे सत् का सर्वोदय हो सके। कोई-न-कोई ऐसा झरोखा मिल जाये, जिससे हम आसमान में उगते सूरज को निहार सकें। वह ऊषा मिल जाये, जिससे कुम्हलाये कमलों के द्वार पर जीवन के नए क्षितिज खुल सकें।

विकास का यह वातावरण सूरज के लिए नहीं, स्वयं के लिए है, अपनी पहचान और अपने सत् की स्वर-माधुरी सुनने के लिए है। स्वयं को पहचानने के लिए ही तो सारी साधना/आराधना/प्रार्थना है। स्वयं के परिचय से बढ़कर ज्ञान का दूसरा कोई बेहतर उपयोग नहीं है। यदि कोई यह कहे कि हमारे मन में धर्म के प्रति प्यार नहीं है, ध्यान के प्रति अनुराग नहीं है, परमात्मा के प्रति समर्पण नहीं है, तो यह बलात्कृति है। यदि धर्म के प्रति प्यार न होता, ध्यान के प्रति अनुराग न होता, परमात्मा के प्रति समर्पण न होता, तो न तो हम मन्दिर में कभी पांव रखते और न किसी सन्त-साधक के पांवों में अपना मस्तक नमाते।

यदि हमारे कदम किसी मन्दिर की तरफ जा रहे हैं तो निश्चित रूप से हमारे मन में परमात्मा के प्रति प्यार है। अगर हमारे कदम किसी धर्मस्थान की ओर बढ़ रहे हैं, तो निःसन्देह हमारे मन में धर्म के प्रति अनुराग है। यदि हमारा मन कभी संसार की अशांतियों से अशांत होता है, तो निश्चय ही हमारे मन में ध्यान की शुरूआत है। ऐसे ही होती है जीवन में वैराग्य की दस्तक।

साधु संसार-विरक्त होता है। संसार के प्रति उसके मन में राग नहीं रहता। राग रहना भी नहीं चाहिए। पर घृणा भी तो किसी काम की? आत्मजागृत पुरुष की राग-समाप्ति वीतरागता में होती है, किन्तु आवेश में की गई राग को चोट घृणा और निन्दा को जन्म देती है। जो साधु अपने पूर्व-जीवन में क्रोधी रहता है, वह बाद में अपने उपदेशों में कहता है 'हे मानव! तू क्रोधी है।' वह आम आदमी को औसतन क्रोधी ही देखता है।

सम्भव है आदमी का स्वभाव क्रोधी हो, पर क्रोधी कहना क्रोध की समाप्ति नहीं, वरन् लंगड़े को लंगड़ा कहकर चिड़ाना है।

किसी को धिक्कारो मत, उसे गले लगाकर क्षमा और प्यार की परिभाषा अपने आचरण से सिखाओ।

इन्सान धिक्कारने के लिए नहीं, प्यार और शान्ति पाने के लिए है। असत्य की बातें बताने की जरूरत नहीं है। सत्य की बातें कही जानी चाहिए। माटी के दीये को अन्धकार का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपदेश क्यों? उसे प्रकाश बताओ। अन्धकार स्वयं समझ में आयेगा। गलत को छोड़ने के लिए इतना जोर मत दो, जितना ठीक को अपनाने के लिए। अंधेरे को कब तक खदेड़ोगे। दीया जलाओ; दीप-प्रज्वलन ही अन्धकार के निष्कासन का आधार है। किसी को यह मत कहो कि तुम क्रोधी हो, कामी हो, चोर हो। उसे यह कहो कि क्षमा तुम्हारा व्यक्तित्व है, भाईचारा तुम्हारा आदर्श है, ईमानदारी तुम्हारी इज्जत है।

निषेधात्मक पहलुओं को भूलकर विधेयात्मक पहलुओं पर प्रकाश डालना विश्व-कल्याण का सही सूत्र है।

'स्टोप थींकिंग' की बजाय 'टॉप थींकिंग' आम जीवन के उज्ज्वल भविष्य का सही रास्ता है।

सत्य का मायना है स्वयं के प्रति ईमानदार होना। स्वयं का सत्य स्वयं में ढूंढना होता है। प्रश्न अपने आप से करें और उत्तर अपने आप से पाएं। सत्य स्वयं की अनुभूति है और सबकी अनुभूति निजी होती है, आम नहीं।

अनुभव गूंगे का स्वाद है। वह हृदय की आवाज है। उसका अनुभव हृदय से होता है। आंख से बहते आंसू आंख से समझे जा सकते हैं, जुबान या कान से नहीं। बोल संकरे होते हैं और अनुभव गहरे। अध्यात्मजीवी पुरुष की ध्यानरत आंखों से उमड़ने वाले आंसू भीतर की खुमारी है। अन्तर्यामी ही आंक सकता है मोल उस अमृतस्राव का।

अनुभवी की गहराई तो राम की अभिव्यक्ति है। राम जीवन्त है। यह रमण का प्रतीक है। राम रमेश-महेश का सार है। राम का आदि स्रोत ऋषभ है और उसका उपसंहार महावीर। राम अध्यात्म है। राम का विलोम मार है। मार संसार है। मन अगर राम बन जाये, तो वह जीवन की जीवन्तता हो जायेगी। मन का देह से लगाव संसार है और आत्मा से संयोजन संन्यास है।

राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध ये अमिताभ हैं। इन्हें खोजना हो, ऐसी बात नहीं है। सत्य समाधि सधेगी, तो हम वही हो जायेंगे, जो ये हैं। यदि यह मानें कि हमारे भीतर भगवान हैं, तो इसका मतलब साफ है कि हम स्वयं भगवान हैं। यदि कोई अपने आपको भगवान कह भी देता है, तो इसका मतलब है उसने वह कहा है जो वह भीतर से है। भीतर विराजे भगवान को उसने अपने नाम के साथ रसमय किया है। जीवन और जीवन से जुड़े सारे परिवेश के साथ भी यदि भगवान को जोड़ सको, तो यह आपका सौभाग्य है। अपनी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवत्ता को पहचानो। भगवत्ता को फैलाओ। भगवान आपको आह्वान कर रहा है सौन्दर्यमय शिवस्कर सत्य के लिए।

अन्तरपाट पर विराजित भगवान् को, अपने आपको पहचानना ही अध्यात्म है।

अध्यात्म है आत्मा में, अपनी अनुभूति में। मन संसार में रहने का अभ्यस्त है। वह संसार की गरिमाएं बखानेगा। पर संसार एकत्व की अनुभूति नहीं हो सकेगा। वह होगा द्वित्व की अनुभूति। साक्षीभाव प्रगाढ़ हो जाये, तो संसार सिर्फ प्रतिक्रिया लगेगा। साधना का पहला सोपान प्रतिक्रिया से विमुक्ति है।

संसार में वह सब कुछ मिल सकता है, जिसकी मन में ठानी है। पर वह कहां से मिलेगा जो संसार में नहीं है। 'मैं' मेरे पास मिलेगा, 'तूं' में नहीं।

यहां हर कोई 'मैं' है, कोई 'तूं' नहीं है। मैं मेरा हूं। तूं तेरा है। तूं मेरा नहीं हो सकता, तो मैं तेरा कैसे हो सकता हूं। मैं तुम्हें मेरा मानूं और तू मुझे तेरा माने—यह एक भारी भरकम भूल है। इस भूल को सुधार लो तो मैं समा जाएगा मैं में। सत्य तो यह है कि मैं तुमसे भिन्न नहीं हूं और तुम मुझ से भिन्न नहीं हो। मैं में मैं नहीं है और तूं में तूं नहीं।

मैं-तूं मन की राजनीति है। मैं भी एक अस्तित्व हूं और तूं भी एक अस्तित्व है। दोनों रमण करें अपने अस्तित्व में। जो अपने में रहेगा, उसके लिए तूं तो खोएगा ही, मैं भी फिसल जाएगा। मन के फितूर किस काम के स्वयं के मार्ग में।

जो व्यक्ति अपना अस्तित्व दूसरे में ढूंढ रहा है, वह आत्मवंचना के कगार पर है। बाहर आकाश ही आकाश है और आकाश का कहीं कोई छोर नहीं है। हर क्षितिज-के-पार क्षितिज मिलेगा। आकाश का कोई समापन नहीं है। वहां न दुराहा है, न चौराहा। वह सपाट है। शुरूआत भीतर है, अपने अन्दर है। अपने भीतर झांक लो।

यह स्वयं के लिए किया जाने वाला प्रयास ही स्वार्थ है। अगर बन सको तो स्वार्थी बन जाना। परार्थ की पगडंडिया छूटे तो कतराना मत। स्वार्थ-की-साधना जिंदगी-की-साधना है। स्वार्थ-की-साधना एक बारीक साधना है। परार्थ संसार की लहर है। स्वार्थ अपने लिए लालच नहीं है, वरन् स्वयं में बसेरा करना है। आत्म-स्थिति स्वार्थ है। स्वयं के लिए स्वयं को पहचानना, स्वयं में रम जाना यही है स्वार्थ। परार्थ है पर में जुड़ जाना। स्वयं में होने वाली स्थिति ही स्वास्थ्य-लाभ है। रोग-मुक्ति स्वास्थ्य नहीं, विदेह-अनुभूति स्वास्थ्य है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदमी कहता है मैं कर रहा हूं परार्थ, दूसरे के सुख के लिए। पिता कहेगा मैं परार्थ कर रहा हूं बेटे के लिए। पति कहता है मेरा सारा परार्थ पत्नी के लिए है। परन्तु पत्नी कहेगी मैं तो तंग आ चुकी हूं अपने पति से। बेटे से पूछो। बेटा कहेगा बाप अगर दो दिन गांव के बाहर रहे तो मेरी बेचैनी टलेगी।

दोस्तों के इस सदर सदमे उठाये जाने पर
दिल से दुश्मन की शिकायत का गिला जाता रहा।

अब गम दुश्मनों से नहीं, दोस्तों से है। आप जो करते हैं अपने वालों के लिए, पर अपने वाले रूठे हैं आपके अपनेपन से। मित्रों ने ही इतने सदम दिये हैं कि अब दुश्मनों की क्या शिकायत करनी!

कहते हैं मैं भगवान को पूजता हूं। पर भगवान से पूछो। वे कहेंगे तूं मुझे पूजने के लिए मंदिर नहीं आता; तूं मन्दिर आता है अपनी कामना को बुझाने के लिए। बेटा चाहिए इसलिए मन्दिर आया है, धन चाहिए इसलिए मंदिर आया है। मेरी पूजा तो तब होती है जब तुम दुकान में बैठे-बैठे जमाखोरी, चोरी, सीनाजोरी करते वक्त भी ध्यान रखो कि भगवान यह सब देख रहा है। छिपकर पिया गया जहर क्या मृत्यु का कारण नहीं होगा? इसलिए मन्दिर में ही नहीं, बाजार में भी पूजो! पूजा का स्थल तो यहां-वहां सारा जहां है। निर्लज्ज और भिखमंगी प्रार्थनाएं मन की भाषा है, चैतन्य की नहीं।

मन्दिर वास्तव में परमात्मा के प्रति स्वयं का समर्पण है, स्वयं का जागरण है। वह हमारा प्रतिबिम्ब है। उसमें बैठी प्रतिमा गूंगी है। आईना भी गूंगा ही होता है। फिर भी वह, वह सब कुछ बोल सकता है जो हम हैं। सम्यग् दर्शन की बारीकी हो, तो मन्दिर हमारे अन्तरजगत का अभिव्यक्त घर है। लक्ष्य आंखों से ओझल न हो, इसलिए मन्दिर और मूर्तियां हैं। मन्दिर तो बहाना है हमारी आध्यात्मिक सजगता का, लक्ष्य के प्रति कटिबद्धता का।

परमात्मा के लिए चाहिए तल्लीनता, रसमयता, सजगता। रोजाना सुबह उठ कर मन्दिर जाना चाहिए— इसे मात्र दैनंदिनी जिंदगी का एक अभ्यास-सूत्र न बना लें। परमात्मा अभ्यास में नहीं है। परमात्मा स्मरण में है। आत्मा किसी आदत मे नहीं है। आत्मा स्वयं के रमण में है, स्वयं की स्वीकृति में है। इसलिए याद कर सको तो अपने आप को याद करते चले जाओ। तुम तुम हो। तुम में अनन्त सम्भावनाएं हैं। अपनी सम्भावनाओं का साक्षात्कार करो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मौसम ठीक है तो लगता है कि यहां सब और भी मेरे ही हैं। वास्तव में यहां मेरा वही है, जो वेदना की चरम घड़ियों में भी स्वयं के लिए काम आये। कोई भी देश उसको शहीद कहता है, जो उसके लिए अपने आपको बलिदान करता है। जीवन के परिसर में शहीद कम होते हैं और भगोड़े ज्यादा। भगोड़ों से सावधान रहना।

एक पहुंचे हुए सन्त हुए हैं— अनाथ। अनाथ— यह संत का नाम है। अनाथी भी नाम है उनका। ऐसे आत्मजाग्रत मनीषी कभी-कभार होते हैं धरती पर। अनाथ उन्होंने नाम रखा एक अलबेली घटना से। अनाथ को जंगल में भर जवानी साधना करते देख सम्राट श्रेणिक चकराया। कहने लगा, तुम इस कच्ची उम्र में अकेले जंगल में साधना कर रहे हो। ऐसा क्यों?

सन्त ने कहा, मैं अनाथ हूं इसलिए। सम्राट तो अक्कड़बाज और सत्ता के गर्वीले होते ही हैं। सो श्रेणिक ने कहा यदि ऐसी बात है तो मैं तुम्हारा नाथ हो जाता हूं। संत मुस्कराया। बोला, तुम जो खुद ही अनाथ/असहाय है, वह दूसरों का नाथ कैसे हो सकता है?

सम्राट के लिए सन्त की बात चुनौती थी। कहा, सन्त ! अगर और कोई होता, तो उसकी जबान खींच लेता। पर तुम हो...। मेरे पास सोने-हीरे के खजाने हैं, लम्बी चौड़ी सेनाएं हैं, हर सुविधा और हर सुख है। तुम कैसे कह रहे हो, मैं अनाथ हूं?

सम्राट नहीं समझ पाते सन्तों को। सन्तों को समझने के लिए सम्राट को सन्त का व्यक्तित्व आत्मसात् करना पड़ता है।

सन्त ने कहा, राजन् ! जिन साधनों की वजह से तुम अपने को नाथ मानते हो, वे साधन तो मेरे पास भी थे। फिर भी मैंने अपने आपको बेचारा पाया। कभी, मैं बीमार था। मेरी पीड़ा बरदास्त के बाहर थी। मेरी पत्नी, बच्चे, राजचिकित्सक, माता-पिता, राजमंत्री सब मेरे पास रहते थे। पर मेरी पीड़ा को मैं ही भोग रहा था, राजन! सिर्फ मैं ही। पीड़ा को कैसे बांटा जा सकता है राजन! सबका नाथ होते हुए भी मैं अकेला था राजन! निपट अकेला। मैंने पाया हमदर्दियों के आसुंओं के बीच भी हर आदमी आखिर अनाथ है।

कौन है अपना? किसी को अपना मानना मात्र सपना है। सपने में पर के लिए किया गया कुर्बान भी स्व के लिए लगता है। परन्तु यह सपना टूटेगा। आज भी टूट सकता है, कल भी, कभी भी टूट सकता है। सपना टूटा तो या तो ध्यान में प्रवेश कर जाओगे या फिर विक्षिप्त हो जाओगे। विक्षिप्तता का अंधियारा छाये, उससे पहले सपने की दुनिया से मुड़ जाओ, तो बेहतर है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सपने में यात्रा बाहर की होती है, भीतर की नहीं, भीतर की यात्रा की शुरूआत तो स्वप्न-मुक्ति से है। भीतर की यात्रा होगी, तो ही आध्यात्मिक शान्ति जीवन्त होगी। सब अध्यात्म में रमें, तो बहुत ही बढ़िया है। हर कोई अध्यात्म में रमे, यह नामुमकिन है। पर रम जाये, तो अच्छा ही होगा। सारा विश्व शान्ति में तैरने वाला हो जाए, तो इससे विश्व का कल्याण ही होगा।

कल एक भाई कह रहे थे आये दिन दीक्षाएं हो रही हैं। यों तो सारा संसार दीक्षा ले लेगा तो?

मैंने कहा, हर आदमी संसार के कल्याण की भावना करता है और तुम यह सोचकर चिंतित हो, अगर सारे संसार का कल्याण हो गया तो! दीक्षा जीवन के कल्याण का ही एक उपक्रम है। जीवन के संस्कारों में एक अभिनव क्रान्ति हो जाना ही दीक्षा है। दीक्षा दिव्यत्व की जिज्ञासा है। अगर सारा संसार दिव्यत्व पाये, तो इसमें विश्व का भला ही है। दीक्षा घटना है। जब जीवन में नव रूपान्तरण हो जाये, तभी दीक्षा अर्थ-सन्धि के बीच प्रकट होती है।

अन्तर्यात्रा इसीलिए है, ताकि प्रत्येक अस्तित्व स्वतन्त्र शान्ति में लीन हो। मन, वचन, काया से बहिरात्मपन को छोड़ो और अन्तर-आत्मा में आरोहण करो।

हमारा सम्पूर्ण अतीत हमें बहिर्यात्रा की याद दिलाता है। अतीत का अन्त नहीं है। बाहर की सीमा नहीं है। दूसरे को स्वयं में पकड़े रखने की जो प्रवृत्ति है, वह ढीली पड़ जानी चाहिए।

द्वन्द्व से उबारने के लिए रास्ते हैं, मगर व्यक्ति स्वयं उसके लिए तैयार नहीं है। वह परमात्मा का प्रमाण चाहता है और अगर परमात्मा उसके समक्ष आ जाये, तो वह परमात्मा को पहचानने के लिए प्रस्तुत नहीं है। जिसे जानना चाहते हो, जिसे पाना चाहते हो, जिसे छोड़ना चाहते हो, उसके लिए पहले अपनी पूरी तरह तैयारी करो।

मुझे याद है, एक युवक ने फकीर से कहा, मैं संन्यास लेना चाहता हूं, पर मेरे घर वाले इसके लिए प्रस्तुत नहीं हैं। फकीर ने कहा, पहले तुम अच्छी तरह सोच लो कि संन्यास लेना है या नहीं। यदि लेना है तो घर वालों की समस्या मैं हल कर दूंगा। जहां कानून है, वहां बचने के रास्ते भी हैं।

युवक ने अपना दृढ़ संकल्प जताया और कहा कि मेरे पीछे घरवाले यदि आत्महत्या न करें तो मैं संन्यास लेने के लिए पूरा तैयार हूं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

युवक घर पहुंचते ही बीच आंगन में धड़ाम से गिर पड़ा। डॉक्टर ने उसे बेजान पाया तो उसने मृत्यु का प्रमाणपत्र परिवार वालों को थमा दिया।

परिवार वालों ने मृत्यु के बाद दिये जाने वाले दहेज की रश्म अदा की। सीढ़ी, बांस, दुशाला, सबकी आंखों से गंगा-यमुना फूटफूटकर बहने लगी। अरथी को लिये घरकी देहरी तक पहुंचे, कि फकीर पहुंच गया। फकीर को वस्तुस्थिति बतायी, और युवक को पुनर्जीवित करने के लिए लोगों ने निवेदन भी किया।

फकीर ने कुछ देख-परखकर कहा- जीवित तो हो सकता है, पर किसी के घर आई हुई मौत कभी खाली हाथ नहीं जाती। अगर इसके स्थान पर कोई दूसरा मरने को तैयार हो तो यह युवक जीवित हो सकता है।

सब चौंके। सन्नाटा छा गया। मरने वाले के पीछे कौन मरे? आफत की घड़ी में रुपये से सहयोग किया जा सकता है, पर जीवन को दांव पर कौन लगाए? प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन किसी दूसरे के जीवन से लाख गुना ज्यादा प्यारा होता है। मनुष्य को धन से बहुत प्रेम होता है। धन से ज्यादा उसे मां-बाप से प्रेम होता है। मां-बाप से ज्यादा स्वयं के बच्चों से प्रेम होता है। बच्चों से ज्यादा पत्नी से प्रेम होता है। पर इन सबसे भी स्वयं के जीवन से सबसे ज्यादा प्यार होता है। अतः फकीर के कहने पर कौन मरे?

माता-पिता के बाल पक गये, पत्नी का रंगीन जीवन खो गया, भाई बच्चों की अपनी विवशता। मरने वाले के पीछे कौन मरे। पिता ने कहा पांच-पांच बेटें हैं, आखिर मैं किस किस के पीछे मरूंगा।

मां ने कहा पत्नी पतिनिष्ठ होती है। ढलती उम्र में पति की सेवा पत्नी का सर्वस्व है। भाइयों ने कहा हमारी कुंवारी साधें पूरी किये बिना संसार से विदा नहीं ली जा सकती। पत्नी ने कहा मरने वाले तो मर ही गये। मैं अपनी जिन्दगी जैसे तैसे भी खींच लूंगी। मरने वाले के पीछे मरना संभव नहीं है।

हां सैंकड़ों लोग खड़े थे। फकीर ने एक एक से पूछा पर सबने पीठ दिखा दी। कोई मरने को तैयार नहीं हुआ।

जब टिकट मिला है जाने का, डेरा जो लगा है मरघट में।
जलाने वाले लाखों हैं, संग जलने वाला कोई नहीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खुद फकीर की आंखें भीग गयीं। ओह! ये लोग कैसे हैं? जिनके लिए व्यक्ति जीवनभर श्रम करता है, उसके लिए आखिर कौन है उसका?

फकीर ने युवक से कहा— नाटक का पटाक्षेप करो। बहुत कर लिया अभिनय। अब खड़ा हो जा, बोल, तेरी क्या इच्छा है? युवक खड़ा हो गया।

मृत्यु मात्र अभिनय थी पर क्या युवक तैयार था संन्यस्त होने के लिए।

स्वयं की प्रस्तुति सर्वप्रथम आवश्यक है। दूसरों की ली जाने वाली ओट बहानेबाजी है। स्वयं की कमजोरी को यों मत छिपाओ। गुरु जीवनकल्प के लिए तैयार है; जरूरत है स्वयं की तैयारी की। मन वमन-क्रिया कर रहा है, उसे पहचानें। कस्तूरी वास कर रही है नाभि में। स्वयं की ओर आंखें मुंड़े तो सुरभि का केन्द्र दूर कहां! जरा अपने में डूबो, स्वयं को पहचानो।

बैठ जाएं एकान्त में और सोचें मैं कौन हूं? कहां से आया हूं? कहां जाना है? किनके साथ रिश्ते रखने हैं? यह प्रक्रिया है अंगुलियां चलाना हत्तन्त्री पर।

शायद अभी तो यह लगता है कि वीणा के तार हमें बजाने नहीं आते फिर कहेंगे कि वीणा के तार ऐसे बज रहे हैं, मानों मैं स्वयं ही तानसेन हूं।

रसरी आवत जात है, सिल पर पड़त निशान।
करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।।

अभ्यास करते-करते सब सध जाता है। अभ्यास ही तो द्वार है सिद्धि का। अध्यात्म अभ्यास की पूर्णता है।

अध्यात्म की यात्रा शून्य की यात्रा है। यह कृष्णलेश्या से शुक्लेश्या की यात्रा है। इसे ही मूलाधार से सहस्रार की यात्रा कहेंगे। नाम केवल बहाने हैं। अध्यात्म वास्तव में स्वयं का स्वयं में निवास है। अभी तो लगता है कि तलहटी भी पार नहीं होती मगर बाद में लगेगा एवरेस्ट भी पार हो सकता है। अभी यदि यह यात्रा चढ़ते समय कठिन लगती है, मगर चढ़ना शुरू कर दो तो बहुत जल्दी पहुंच जाओगे। जो व्यक्ति बाहर से हटा, कुछ भीतर का रस पैदा हुआ, शुरू हुई यात्रा अन्तर की, आह्लाद की। बाहर से हटना प्रत्याख्यान है और भीतर लौटना प्रतिक्रमण है।

सारा मूल्य अपने आप का है, अपने में शान्त रहने का है। मगर पापों से छुटकारा नहीं होता है। अभी सामायिक तो बहुत होती है, मगर क्रोध एवं कषाय दूर नहीं होते हैं। अभी तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन्दिर भी बहुत जा रहे हैं, पर भक्ति वीणा भीतर में झंकृत नहीं हो रही है। ध्यान सौ बीमारियों की दवा है। भीतर बैठेंगे तब ऐसी स्थिति होगी क्रोध जल गया, कषाय गल गया, तपस्या शुरू हो गई, पाप छूट गये, प्रतिक्रमण हो गया। समता के भाव जग गये, सामायिक हो गई। भगवान आकर बस गये, भगवान की पूजा हो गई। भीतर का अभ्यास हो जाए तो जीवन की ज्योतिर्मयता असंदिग्ध है भीतर हजारों दीयें जल रहे हैं। अन्तर मार्ग से रोशनी बह रही है। अपना प्रकाश देखो। प्रकाश भीतर है। केवल बाहर में आवरण आ गये हैं। भीतर का दीया बुझा हुआ नहीं है। भीतर के दीये को जलाना नहीं है वह तो ज्योतिर्मय है। प्रकाश ही प्रकाश है। बाहर के आवरणों को हटा दो। पर का राग, पर की परणिती, पर का सम्मोहन, पर का आकर्षण, पर का जोड़ जैसे-जैसे मौनव्रत लेगा, वैसे-वैसे अन्तर्यात्रा त्वरा से होगी। और जब अन्तर्यात्रा अपने समापन की बेला पर हो, तो यात्रा होगी परमात्मा की, स्वयं की विराटता की।

डग भरें स्वयं के मार्ग में। मैं केवल एक हूं, यह बोध ही सम्बोधि है और यही है एकान्त और कैवल्य। एकान्त, मौन और ध्यान के चरण ही पहुंचाते हैं समाधि की मंजिल तक। समाधि समाधानों का समाधान है, सड़कों की सड़क है। समाधि में जीने वाला सम्राट है सत्य के साम्राज्य का।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चलें, मन-के-पार

अध्यात्म शरीर, वाणी और मन की प्रतिध्वनियों के पार है। शरीर और वाणी की कर्मठता सीधी और साफ है। बिना पैंदे का लोटा तो मन है। घोड़े-की-तरह-खुंदी-करते रहना मन की आदत है। अध्यात्म के साथ मन का कोई विनिमय-संबंध नहीं है। अध्यात्म विकल्प-मुक्ति है और मन विकल्प-युक्ति; अतः मन का अध्यात्म के साथ किसी भी प्रकार लेन-देन भला कैसे हो सकता है? जीवन की सारी जीवन्तता और जिंदादिली यथार्थ के साक्षात्कार से जुड़ी है। मन का यथार्थता से भला क्या वास्ता? जब उसके ही व्यक्तित्व की असलियत खतरे में है, तो सोने का सम्यक्त्व सही-सही कैसे आंका जा सकता है?

मन यात्रालु है। परमात्मा को खोजने की बात भी वही कहता है और संसार का स्वाद चखने की प्रेरणा भी वही देता है। उसका काम है, व्यक्ति को शरीर और विचार से हटा कर कभी आराम-कुर्सी पर न बैठने देना। आठों याम भ्रमर-उड़ान भरना यात्रालु मन का स्वभाव है। वह कभी मरघट की यात्रा नहीं करता, उसकी सारी मुसाफिरी माटी-की-काया की जीवन्तता में है।

मन तो चलनी है। बुद्ध, या बुद्धिमान कहलाने वाला मनुष्य मन के आगे निरा बुद्धू है। मनुष्य अपने अखिल जीवन का जल मन की चलनी में से निरुद्देश्य बहाता रहता है। आशावाद जीने का आधार अवश्य है, पर उन आशाओं की कब्र कहां बनायी जाएगी, जिनके लिए व्यक्ति ने जीवन की बजाय श्मशान की यात्रा की? जफ़र ने गाया है—

उमरे दराज मांग कर लाये थे चार दिन,
दो आरजू में कट गये, दो इंतजार में।

प्रवृत्ति जीवन के लिए कर्मठता का अवलम्ब जरूर है; किन्तु निवृत्ति का उपसंहार पढ़ना अपरिहार्य है। निवृत्ति इसलिए कि एक दिन मनुष्य को सब यहीं छोड़-छाड़कर खालिस एकाकी जाना पड़ता है। रवानगी का टिकिट मिलने के बाद जलाने वाला पूरा समाज-का-समाज होता है, मगर साथ जलने वाला सारे जहान का एक भी सदस्य नहीं होता। उसकी चिता में रुपये-पैसे भी नहीं, मात्र थोड़ी-सी सूखी लकड़ियां ही जलती हैं—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चार जने मिलि खाट उठाये, रोवत ले चले डगर डगरिया।
कहे 'कबीर' सुनो भई साधो, संग चली वह सूखीलकरिया।।

जीवन में घटित होने वाली यह मृत्यु हकीकत नहीं, मात्र मन की आपा-धापी का विराम है, उसकी व्यर्थता का बोध है। अगर किसी एक जन्म में आत्मा, परमात्मा या अध्यात्म को पहचान न पाया; परन्तु निरे मन का परिचय-पत्र भी बारीकी से पढ़ जांच लिया, तो भी यह कहा जा सकेगा कि उसने मंजिल की ओर जाने वाली राह का एक बड़ा हिस्सा पार कर लिया।

व्यक्ति को शरीर और विचार की समझ तो पल्ले पड़ जाती है, पर वह मन-की-पूंछ को थाम नहीं पाता। दौड़ते चोर की चोटी पकड़नी भी फायदेमन्द होती है, पर पहले चोर की पदचाप तो सुनायी दे। ओर-छोर का पता नहीं और नापने बैठे हैं आसमान?

मन तो चपल है पल-पल। यदि मन स्वयं ही जीवन हो, तो उसके पालन के लिए घर-बार और दुकानदारी की व्यवस्था की जानी चाहिये। अगर मन मुर्दा हो, तो उसे दफनाने के लिए सूखी लकड़ियां बीनने में संकोच कैसा? चाहे पालना हो या दफनाना उसकी वास्तविकता का बोध होना स्वय के प्रति सजगता है।

मन की उपज शारीरिक रचना की अनोखी प्रस्तुति है। कई परमाणुओं के सहयोग और सहकार से शरीर का ढांचा बनता है। मन उसमें ठीक वैसे ही मुखर होता है, जैसे शराब की निर्मित से मदहोशी/नशा। जिन चिन्तकों ने जमीन-जल, पावक-पवन के समीकरण से उपजने वाले तत्त्व को जीवन-तत्त्व, आत्म-तत्त्व स्वीकार किया, वह वास्तव में जीवन या आत्मतत्त्व नहीं, वरन् मनोतत्त्व है। मन का अपना मौखिक/मौलिक अस्तित्व नहीं है। वह बेसिर-पांव का तत्त्व है।

मनुष्य ने मन एवं मन-के साथ नाना मुसीबतें पाल रखी हैं। वह दुनिया से अपना कोई पाप छिपा भी ले, पर मन से छिपाना उसके वश के बाहर है। वह दूसरों की, किसी तरह अपनी आंखों में भी धूल झोंक सकता है, पर मन सहस्राक्षी है। मन की हजारों आंखें हैं। उसमें कुछ भी गोपनीय नहीं रखा जा सकता। जगत् की आपाधापी से तंग आकर मनुष्य चाहे जहां पलायन कर जाए, पर मन से बच कर कहां भागेगा? बाहर की घुटन से मुक्त होने के लिए बातों-ही-बातों में प्रयास हो जाते हैं, पर भीतर की घुटन से छुटकारा पाने के लिए वह कोई भी मोर्चा तैयार नहीं कर पाता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जनता की भीड़ से अधिक घातक, विचारों की भीड़ है। विचारों की भीड़ में मन का जी लगता भी है, तो घुटता भी है। मनुष्य को जो चिन्ता, तनाव और घुटन विचारों की भीड़ के कारण होती है वह जनता की भीड़ में नहीं होती। जनता की भीड़ से बचने के लिए गुफा में एकान्त-वास हो सकता है; किन्तु विचारों के भीड़-भड़क्के से बचने के लिए दुनिया में न कहीं कोई गुफा है, न एकान्त। जनता की गरद अपने आजू-बाजू रहे, तो कोई नुकसान नहीं है, पर विचारों की भरमार से घुटन-ही-घुटन है। विचारों की घुटन ही मानसिक तनाव की खास धमनी है।

स्वास्थ्य-लाभ के लिए मन को तनाव-मुक्त करना जरूरी है। स्वास्थ्य की पूर्णता शरीर के साथ-साथ मन की तनाव-मुक्ति से जुड़ी है। तनाव-मुक्त पुरुष स्वस्थ अध्यात्म-पथ का पथिक है। जो मन की परेशानी से जकड़ा हुआ है, वह तन से तन्दुरुस्त और निरोग भले ही हो, पर मानसिक रूप से अपने-आपको हर-हमेशा उखड़ा-उखड़ा-सा/उचटा-उचटा-सा महसूस करता है। दिलचस्प बातों में घड़ी-दो-घड़ी वह पद्मासन लगाये लगता है; किन्तु आमतौर पर वह लंगूर छाप जीवन बिताता है। एक ठांव पर उसके पांव टिके रहें, ऐसा मनुष्य को अपने अनुभवों की किताब में पढ़ने में नहीं आता।

मन व्यक्त भी रहता है और अव्यक्त भी। मन का अव्यक्त रूप ही चित्त है। मन का काम बाहरी जिन्दगी और तौर-तरीकों से जुड़ा रहना है। मन भविष्य के आकाश में ही कूद-फांद करता है, जबकि चित्त अतीत से वर्तमान का साक्षात्कार है। पूर्व स्मृतियों और पूर्व संस्कारों के बीज चित्त की धरती पर ही रहते हैं। पूर्वजन्म के वृत्तान्त भी चित्त की मदद से ही आत्मसात् होते हैं।

ध्यान की एकाग्रता जितनी गहरी होती चली जाएगी, अन्तर-के-पर्दे पर चित्त के सारे संस्कार चलचित्र की भांति साफ-साफ, दिखाई देने लग जाएंगे। स्वयं के पहले जन्म/जीवन की घटनाओं का दर्शन और कुछ नहीं, मात्र चित्त के संस्कारों का छायांकन है। 'जाति-स्मरण' अतीत के प्रति चित्त का गहराव है; किन्तु भविष्य का दर्शन चित्त के जरिये नहीं हो सकता। चित्त भविष्य के वर्तमान के दर्शन को अतीत की कड़ी बनाता है। भविष्य मन का परिसर है। मन की एकाग्रता सध जाए, तो व्यक्ति को अपने भविष्य के कुछ संकेत अग्रिम प्राप्त हो सकते हैं।

ध्यान का संबंध चित्त की बजाय मानसिक क्रियाओं से ज्यादा है; इसलिए मन की शुद्धि ध्यान के लिए अनिवार्य है। मगर ध्यान की परिपूर्णता चित्त को संस्कार-शून्य करने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में है। मन-रिक्त व्यक्ति अनिवार्यतः मुक्तपुरुष हो जाता है। चित्त-शून्यता से ही मन-मुक्तता की अनुभूति होती है; इसलिए मन-की-शुद्धि और चित्त-की-शुद्धि दोनों आवश्यक हैं समाधि और कैवल्य के द्वार पर दस्तक के लिए।

ध्यान के क्षणों में जो मन की छितराहट दिखाई देती है। उससे व्यक्ति को न तो घबराना चाहिये और न ही उखड़ना चाहिये। उसे तो उससे जागना चाहिये। परम जागरण ही ध्यान-सिद्धि की आधार-शिला है। ध्यान की घटिकाओं में होने वाली चंचलता व्यक्ति की ध्यान-दशा नहीं, अपितु स्वप्न-दशा है। चंचलता चाहे ध्यान में हो, या स्वप्न के रूप में नींद में हो, वह फंतासी मन का ही फितूर है।

मन द्वारा किया जाने वाला पर्यटन स्वप्न-दशा का ही रूपान्तरण है। फर्कमात्र इतना है कि पहले में शरीर और मन दोनों जाग्रत रहते हैं और दूसरे में शरीर सोया रहता है, जबकि मन जाग्रत। अकेलापन तो दोनों में रहता है। रात को सोते समय भी व्यक्ति नींद में निपट अकेल होता है और ध्यान में भी वह कोरा अकेला रहता है। चाहे शयन-कक्ष में दसों लोग साथ सोये हों और ध्यान-कक्ष में सैकड़ों लोग बैठे हों, तो भी उसका एकाकीपन तो एकान्तवासी ही होता है।

ध्यान मन की चंचलता में नहीं, उसकी एकाग्रता या शून्यता में है। जैसे स्वप्न में हुई विचार-यात्रा मन की भगदड़ है, वैसे ही पद्मासन में हुई मन की हवाई उड़ान स्वयं की बैठक से च्युति को चुनौती है। जैसे स्वप्न के साथ रात-भर सोना, सोना नहीं है, वैसे ही मन की भगदड़ के साथ ध्यान करना ध्यान नहीं है। वास्तव में व्यक्ति को ध्यान की घड़ियों में मन से जुड़ना नहीं चाहिये, बल्कि मन को परखना चाहिये। निर्विचार/निर्विकल्प स्थिति बनाने के लिए मन में उभरने वाले विचारों/विकल्पों को तटस्थ होकर देखना अचूक फायदेमन्द है।

ध्यान की एकाग्रता अक्षुण्ण बनाये रखने का मूल मन्त्र है 'जो होता है, सो होने दो' तुम केवल उसके द्रष्टा बनकर होनहार का निरीक्षण करते चले जाओ। यदि मन ध्यान में नहीं टिका है, तो एक बात दुपट्टे के पल्ले बांध लो कि वह ध्यान के समय ध्यान से हटकर जहां भी पाएगा, वहां भी नहीं टिकेगा। वह टिकाऊ माल है भी नहीं। अध्यात्म में जीने के लिए मन का अलगाव सौ टंच के स्वीकार्य है।

मन में जो कुछ आता है, आने दें। मात्र स्वयं की दोस्ती उससे न जोड़ें। मन के कहे मुताबिक जीवन की गतिविधियों को ढाल लेना ही अध्यात्म-च्युति है। जिन लोगों ने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस आत्म-च्युति को हू-ब-हू स्वीकार किया है, वे नश्वर के नाम पर अनश्वर को दांव पर लगा रहे हैं।

मन की संलग्नता आकर्षण और विकर्षण दोनों में है। दोनों मन के ही पालतू हैं। आकर्षण राग है, विकर्षण द्वेष है। मन चाहे राग से भरा हो या द्वेष से, है तो भरा हुआ ही। पात्र में पानी धौला हो या मटमैला, वह खाली तो कहलायेगा नहीं। पात्र की स्वच्छता पानी-मात्र से शून्य हो जाने में है। भरा मन व्यक्ति का शत्रु है और खाली मन अमृत-मित्र। स्वयं को प्रकृति का सिर्फ उपकरण मानने वाला साधक अहिस्ता-अहिस्ता मन-मुक्त होता जाता है। वह हर उल्टी-सीधी परिस्थिति में भी तटस्थ और जागरूक रहता है। वीतरागता का घर मन-के-पार है। अध्यात्म मन की प्रत्येक सीमा-रेखा के पार है।

मन के साथ जुदाई जरूरी है, पर यह बार-बार दोहराने की जरुरत नहीं है कि 'मैं मन नहीं हूं; मैं मन नहीं हूं,— यह भी मन की ही खटपट है। यह भी एक सोच ही है। समाधि निर्विकल्प दशा में है। 'मैं मन नहीं हूं'—यह तो स्वयं मन का ही एक विकल्प है। ध्यान में हुई मन की हर सोच विकल्प को ही निमंत्रण है। 'मैं मनुष्य हूं' यह कहां कहना/जपना पड़ता है। 'मैं देह नहीं हूं' यह भी बार-बार दोहराना देह का भुलावा नहीं, अपितु देह की स्मृति को तरो-ताजा करना है।

साधकों ने 'मैं देह नहीं हूं' इसे भी किसी मंत्र की तरह अपना लिया है। मैं ऐसे सैकड़ों साधकों के सम्पर्कमें आया हूं, जो 'देह नहीं हूं' 'देह नहीं हूं' कहते-कहते जीवन के सान्ध्य में प्रवेश कर गये हैं, फिर भी उनके देह-लगाव का तापमान घटा नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि ध्यान गहरा हो जाने पर देहाध्यास स्वयमेव न्यूनतर हो जाता है। खरगोश पर करुणा करने वाला हाथी तीन-तीन दिन तक एक टांग पर खड़ा रह जाता है। उसे कहां अपने-आप से बार-बार बोलना पड़ा कि 'मैं देह नहीं हूं, मन नहीं हूं।' लक्ष्य को जीवन का सर्वस्व मानने वाला अपने आप मुक्त हो जाता है स्वयं-के-लक्ष्य-से-भिन्न-लक्ष्यों-से। 'मैं देह नहीं हूं' को हजारों बार बोल चुकने के बाद भी ध्यान में बैठा आदमी अपने शरीर पर मच्छर की काट भी सहन नहीं कर पाता। एक मच्छर की काट से बौखलाने वाले साधक की क्या कोई सहिष्णु-अस्मिता हो सकती है? उपसर्गजयी/कष्टजयी कहलाने वाला साधक मच्छर से भी बिदक जाए, यह देहानुभूति-शून्यता नहीं है।

जरा देखो, घर में खेल रहे उस बच्चे को। उसके हाथ पर पट्टी बंधी है। हाथ पर कोई घाव है, घाव से दर्द है, पर उसके चेहरे पर उभरती मुस्कराहट को देख कर क्या हम यह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्बोधि प्राप्त नहीं कर सकते कि उसने देह से अलग रह कर जीने-की-कला हासिल कर ली है? शरीर में घाव और वेदना होते हुए भी उसे भूल बैठना भेद-विज्ञान की ही पहल है। रोजमर्रा की जिन्दगी में भी जब देह-व्यथा से अतिरिक्त हो कर जिया जा सकता है, तब क्या ध्यान की बैठक में स्वयं को देह/विचार/मन से ऊपर नहीं माना जा सकता? तुम सम्राट हो, सम्राट बन कर रहो। यदि मन की खटपट और अशान्ति तुम्हारे सिर चढ़ी है तो तुम दर-दर भटकने वाले भिखमंगे हो।

एक आम आदमी मन के कहे में जिये, माना जा सकता है; किन्तु गृह-त्याग कर साधु-सन्त बनने वाला व्यक्ति भी यदि शान्त चित्त और मूक मन नहीं रह सकता, तो उसका गृह-त्याग अपने को ठगना ही हुआ। साधु-साध्वियां कहती हैं कि 'हम स्थित-प्रज्ञ नहीं हैं। मंदिर इत्यादि में ध्यान करने बैठते तो हैं, किन्तु मन मंदिर से बाहर भी भटकता रहता है। मेरी समझ से मन की इस चंचलता का कारण संकल्प-शैथिल्य है। आवेश में आकर या किसी के उपदेश मात्र से प्रभावित होकर प्रवज्या लेने वाले समय-की-कुछ सीढ़ियों को पार करने के बाद वापस अपने अतीत की ओर आंख मारने लग जाते हैं। फिर संन्यास-जीवन स्वयं की वीतरागता में सजग न रह कर मात्र कथित अनुशासन या मर्यादाओं की औपचारिकताओं/व्यावहारिकताओं में ही रच-बस जाता है।

घर छोड़ना ही संन्यास है, ऐसा नहीं है। घर छोड़ना, वेश-बदलना या अकेले रहना, इतने मात्र से संन्यास की पूरी परिभाषा नहीं हो जाती है। संन्यासी तो वह है, जिसके ममत्व की मृत्यु हो गयी है। आंखों में ध्यान और समाधि के भाव रमने के बाद तो व्यक्ति के लिए घर भी आश्रम और हिमालय हो जाता है; पर जिनकी आंखों में संसार की खुमारी है उनके लिए आश्रम और हिमालय भी घर और बाजार है। घर में रहने वाला ही गृहस्थ हो, ऐसी बात नहीं है। गृहस्थ तो वह, जिसके मन में घर बसा है, परिवार रचा है, संसार का तूफां है। साधु तो अनगार होता है। अनगार यानी गृह-मुक्त, जिसके मन से बिसर चुके हैं घर-बार। मन से किया गया अभिनिष्क्रमण जीवन की अप्रतिम राह है। स्वकेन्द्र-में-स्थिति का उपनाम ही साधना है।

वीतरागता की उपलब्धि के लिए संकल्प सुदृढ़ हों, तो मन-मुक्ति अनिवार्य है। यदि स्वयं में शक्तियों को जागृत और आमंत्रित करना हो, तो मन की एकाग्रता प्राथमिक है। एकाग्र मन से ही किसी शक्ति के प्राण-तत्त्व से सम्पर्क किया जाता है। यदि मनोव्यक्तित्व प्रखर/प्रशस्त हो, तो अपने सप्राण शरीर में अन्य व्यक्तित्व का प्रवेश भी संभव है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कई बार जब मेरे सामने बड़े टेढ़े-मेढ़े प्रश्न आ जाते हैं या लोगों द्वारा हाथों-हाथ चाहे गये विषय पर मुझे घंटो प्रवचन देना पड़ता है तब अकस्मात् जैसे शिव के सिर पर गंगा उतर आये, मुझमें नये-नये तर्कों/विचारों की बाढ़ आती हुई लगती है। मैं स्वयं दंग रह जाता हूं उस पर जो मैं कहता हूं। मैं यह तो स्पष्ट नहीं कह सकता कि कोई अज्ञात शक्ति मुझमें प्रवेश कर लेती हो, पर एक बात तो पक्की है कि अतिरिक्त शक्ति अवश्य प्रकट होती है। मैं इसे चमत्कार नहीं, वरन् मनोव्यक्तित्व की एकाग्रता कहूंगा।

यदि हम अपने एकाकी क्षणों में एकाग्र मन रहें तो हमें आश्चर्य में डालने वाली कई ध्वनि-प्रतिध्वनियां, कहां-कहां की छाया-प्रतिच्छाया मानस-पटल पर आती-जाती लगेंगी। दूसरों के मन की पर्यायें यों हमारे मन के आईने में उभरती लगेंगी। वास्तव में अलौकिक चीजों का साक्षात्कार व्यक्ति द्वारा चेतन मन पर विजय प्राप्त करने के बाद अचेतन मन की आंख खुलने से ही संभव हो सकता है; वे मरीचिकाओं पर लुभा कर मूल तत्त्व से दूर खिसकते हैं। स्वयं के सम्पूर्ण अन्तर-व्यक्तित्व का निखार तो तब होता है, जब कामना की सौ फीसदी कटौती हो जाती है।

परसों (आबू) की बात है। मैं ध्यान से उठा ही था। साधक लोग मेरी अगल-बगल उपस्थित हुए अध्यात्म-चर्चा के लिए। सबकी अपनी-अपनी साधना-परक दिक्कतें थीं। चर्चा गहरी और अध्यात्म-एकाग्र हो गयी। अकस्मात् एक साधिका विशारदा (मूल नाम 'विनोद' ध्यान-दीक्षित नाम 'विशारदा') की देह में किसी अन्य व्यक्तित्व ने प्रवेश कर लिया। विशारदा की स्थिति तत्क्षण बदल गयी, बड़ी अजीबोगरीब। मैंने दो साधिकाओं—पारदर्शिनी और योगमुद्रा को संकेत किया। उन्होंने विशारदा को संभाला। उसने थोड़ी देर में आंखें खोलीं।उसमें अन्तर-प्रविष्ट व्यक्तित्व ने मुझसे बातचीत की। अन्त में वह उस शरीर से तभी बाहर निकला, जब उसकी मुक्ति के लिए सहयोगी बनने हेतु मैं वचनबद्ध हुआ। वह व्यक्तित्व वास्तव में उसके मृत भाई चन्द्रसेन का प्राणतत्त्व था। मरते समय उसके मन में साधना के प्रति बेहद लगाव जगा था। बारीकियों को छूने के बाद मैंने पाया कि मनोव्यक्तित्व की एकाग्रता व्यक्ति के साथ किस प्रकार संबद्ध रहती है।

साधना की शुरुआत में शक्तिपात भी उपयोगी है; किन्तु मन से मुक्त होकर निर्विकल्प होने के लिए शक्तिपात की बजाय स्वयं का शक्ति-जागरण अधिक श्रेयस्कर है। शक्तिपात पर चलने की मैंने भी कोशिश की, पर मैंने स्वयं को उससे अतिशीघ्र मुक्त भी कर लिया। प्राप्त अनुभव यही बतलाता है कि शक्तिपात से मन केवल उसी को देखना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहता है, जो शक्तिपात करता है। शक्तिपात से जो मंजिल मिलती है, वह मंजिल नहीं होती वरन् एक सोपान ही होती है। हां, आत्मजाग्रत साधक का संस्पर्शन और दर्शन स्वयं की ऊर्जा के जागरण में स्वीकारना चाहिये, पर यह कृपा नहीं, मात्र सहकारिता है। यह मात्र शान्त मन की समदर्शिता का वितरण है। असली गुरु तो वीतरागता की मस्ती में जीता है। जिसके पास बैठने और जीने से तुम्हारा मन शान्त, निर्विकल्प और निर्विकार बनता है, वही तुम्हारे लिए गुरु हैं। जहां बैठने से तुम्हारा अशान्त मन शान्त हो जाए, वही तुम्हारे लिए मंदिर है। जिसे निहारने से तुम्हारे लक्ष्य तुम्हारी आंखों से ओझल न हो, वही तुम्हारा भगवान् है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दस्तक शून्य के द्वार पर

जीवन भाषा में नहीं, भाव में जीवित है। भाव हृदय की धड़कन है। जीवन गूंगे का भी हो सकता है, किन्तु हृदय-विहीन जीवन मात्र चलता-फिरता शव है। जहां हृदय नहीं, वहां ली/दी जाने वाली आमंत्रण-पत्रिका निरी व्यावहारिकता है, कोरी औपचारिकता है।

हृदय भाव-भरा है। शब्द ओछे हो सकते हैं। भाषा बौनी जो ठहरी। हृदय बौने शरीर में रहने वाला विराट है। आंसू हृदय से आते हैं। आंसुओं को देखा तो आंखो से जाता है, किन्तु पहचाना हृदय से जाता है। यदि कुछ हृदय से कहा जाये तो वह जीवन की बोलती गाथा होगी।

जीवन के शिलालेख पर दोनों तरह की रेखाएं खिंची मिलती हैं—उत्थान की भी, पतन की भी। जीवन उत्थान-पतन, मीठे-तीखे अनुभवों का लम्बा-चौड़ा इतिहास है। जीवन के इस इतिहास को पढ़ने-निरखने का नाम ही स्वाध्याय है।

आओ, बैठें तरु के नीचे,
कहने को गाथा जीवन की,
जीवन के उत्थान-पतन की,
अपना मुंह खोलें, जब सारा
जग है अपनी आंखें मींचे।
अर्घ्य बने थे ये देवल के,
अंक चढ़े थे ये अंचल के,
आओ, भूल इसे आंसू से,
अब निर्जीव जड़ों से सींचें।
भाव-भरा उर, शब्द न आते,
पहुंच न इन तक आंसू पाते,
आओ, तृण से शुष्क धरा पर,
अर्थ सहित रेखाएं खींचे।
आओ, बैठें तरु के नीचे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तरु के नीचे बैठने का मतलब है जीवन के इतिहास को शान्त चित्त से पढ़ना। पढ़ लिया हो तो सोचना और सोच लिया हो तो सम्बोधि आत्मसात् करना। समाधि के शिखर पर आरोहरण करने के लिए इस सारी प्रक्रिया को अनुभूतिजन्य अनिवार्यता मानें।

साधक की बैठक होती है शिखर पर। शान्त चित्त ही उसकी समाधि का अपर नाम है। प्रज्ञा की आंख सोयी नहीं रहनी चाहिए। वह निष्पटल रहे, तो ही कैवल्य-दर्शन पास फटकता है। बाहर के लिए उत्सुकताएं कम रहनी चाहिए। उसके आचरण में उदासी मुखर होनी चाहिए। उदासीनता वीतरागी चेहरे पर झलके, तो ही अन्तर की माधुरी का आस्वाद किया जा सकता है। स्वयं के ध्रुव रूप को उजागर करने के लिए यही स्वस्तिकर है।

उदासीनता का मतलब है—निर्लिप्तता। उदासीनता की बारीकियों को अपनाएं तो साधना के द्वार पर सहज दस्तक बनेगी। उदासीनता 'छोड़ने' से नहीं आती, 'छूटने' से आती है। 'छोड़ने' का संबंध बाहर से है और 'छूटने' का संबंध मन से है। छोड़ना छूटना नहीं है। पर हां, छूट जाये तो छोड़ने की माथाकूट नहीं करनी पड़ती। उदासीनता छूट जाने का नाम है। 'देहानुभूति शून्य हूँ'—ऐसा कहने से देह-भाव नहीं छूटेगा। देह-भाव छूटने से देहानुभूति-शून्य स्वयं बन जाएंगे। ध्यान जितना प्रगाढ़ होगा, उदासीनता उतनी ही जीवन्त होगी।

स्वयं का होश और बाहर से बेहोश—यही उदासीनता की मूल गहराई है। मुंह लटकाना उदासीनता नहीं है, वरन शून्य के द्वार पर दस्तक है।

साधना का प्रथम चरण उदासीनता में प्रवेश है तो अन्तिम चरण उदासीनता की उपलब्धि है। यह सच है कि वही साधक आसन पर शासन कर पाता है, जिसने असत्य के प्रति उदासीनता को आत्मसात कर लिया है। आसन का मतलब है बिछावट और उदासीनता का अर्थ है ऐसी बिछावट जो संसार से ऊपर हो, अडोल हो, कमल हो। जिसका आसन संसार से उपरत है, वही साधना की सीढ़ी पर चढ़ रहा है। उदासीन होना यानी ऊंचा आसन करना—उत्+आसन। उदास होना यानी आशा-अभिलाषा के ऊपर उठना। आखिर उदासीनता ही तो मायाजाल से मुक्ति का अभियान है।

जीवन में संन्यास अंगीकार करने का मतलब है स्वयं के आसन को मायाजाल से मुक्त करना, संसार के दावानल से ऊपर करना। संन्यास है ममत्व-की-मृत्यु। माता, पिता, भाई, पत्नी, बच्चे—ये सब ममत्व के ही पारिवारिक सदस्य हैं। संन्यास परिवार से दूरी है। इसलिए एक व्यक्ति का संन्यास उससे संबंधित परिवार के बीच रेशम-डोर से बंधे रिश्तों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर कैंची चलाना है। उसे जीना होता है शिखर पर। शिखर से अभिप्राय है संसार से ऊपर। फिर चाहे हल्दी घाटी में तलवारें चलें या कुरुक्षेत्र में चक्रव्यूह रचे, पर साधक इन सबसे बेखबर होगा। वह अप्रभावित रहेगा। सारे दृश्य होंगे, मगर वह दृश्य का ग्राहक नहीं होगा। दर्शक देखता है, अभिनय नहीं करता। विश्व को चलचित्र की भांति मूकदर्शक बने देखना ही अन्तरजागरण की पहल है।

मन भी अपनी चंचलता दर्शाता है, पर द्रष्टाभाव को मक्कम कर लो तो मन हमारा नौकर होगा। मन में पचासों विचार चलते हैं। वह घोड़े की तरह खुंदी करेगा ही। मन के मुताबिक करेंगे तो यह कहा जाएगा कि हम किसी और के कहे में आ गए। मन के अनुसार कृति की, तो हम पर केस चलेगा। द्रष्टा और दृश्य में भेद रखा, मन से विलग रहे, तो कहां रहेगा सजा से संबंध! मन का मानना तो आसमान में थेंगले लगाना है।

उदासीनता हो, तो दर्शन, गमन, स्पर्शन होते हुए भी कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी। वह क्रिया कभी बन्धनकर नहीं होती, जिसके प्रति अन्तर में कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है। प्रतिक्रिया से मुक्त होने का नाम ही ध्यान-सिद्धि है। धन-धरती वगैरह के प्रति आसक्तिमूलक या घृणामूलक प्रतिक्रियात्मक रवैया अपनाने वाले ही फंसते/कूल्हते हैं।

क्रिया गमन है, किन्तु प्रतिक्रिया लुढ़कना है। उसकी दशा उस पानी जैसी है, जिसेक भाग्य में नीचे की ओर जाना ही लिखा है। मैं आरोहण के लिए कहूंगा, पर ऊर्ध्वारोहण। करें यात्रा ऊपर की ओर; गंगोत्री की ओर।

ऊर्ध्वारोहण की प्रतीक है ज्योति। ज्योति का जन्म शून्य में है और अन्त विराट में। ज्योति हमेशा ऊंचाइयों को छूने का प्रयास करती है और पानी ऊपर चढ़ाये जाने के बावजूद सिर के बल ही गिरता है। ज्योति का व्यक्तित्व चढ़ना है और पानी का आचरण लुढ़कना है। चेतना तो ज्योति स्वरूप है। उसे वह पानी न समझें जो शिखर से पादमूल की ओर बहता है। बहना मुर्दापन है। उसने मुर्देपन के साथ गलबांही कर रखी है। जीवन की जिन्दादिली और जीवन्तता को मात्र इसी में है कि हम बहना नहीं, अपितु तैरना सीखें। जो पानी में बहता है, वह लाचार है। अन्त्येष्टि-संस्कार हो चुका है उसके बाहुबल का।

एक मित्र-साधक अपनी अलमस्ती में बैठा है शिखर पर, तरु के नीचे। कहने में भले ही कह दें आसन पर, पर वो बैठा है अपने आप में। भीतर की बैठक में सर्वेक्षण कर रहा है स्वयं का। चालू हो चुकी है प्रज्ञा की धरा पर परिक्रमा, मंदिर में लगाई जाने वाली फेरी-सी, प्रदक्षिणा-सी। पर उसका पांव 'चरैवेति-चरैवेति' का सूत्रधार नहीं है। स्वयं ही कुछ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दृश्य उसकी बन्द आंखों में आ रहे हैं। मानों पाताललोक से कोई अजनबी जनम रहा है। वह ठहरा द्रष्टा, आते-जाते दृश्य तो उसके लिए ठीक वैसे ही हैं, जैसे बगल में हवा का झोंका।

पहला दृश्य—

एक गर्भवती महिला जा रही है अस्पताल की ओर। बीच रास्ते में उसे प्रसव-पीड़ा घेर लेती है। नवजात बच्चा रोने लगता है। आखिर रोते हुए ही तो सभी आते हैं। परिवार वाले आते हैं और जच्चे-बच्चे को ले जाते हैं।

दूसरा दृश्य—

साधक देखता है एक ऐसे व्यक्ति को जो खांसता-खांसता चला जा रहा है। दो अंगुलियों के बीच सिगरेट थमी है। मुंह से दमघोंटू धुंआ निकल रहा है। छाती जल रही है। खांसी रुक नहीं रही है। पर सिगरेट और उसके धुएं का सम्मोहन कहां छूट पा रहा है! वहीं लड़खड़ाता हुआ गिर पड़ता है। अस्पताल में, कानों में डॉक्टर के शब्द आते हैं— 'सिगरेट एक-दूजे के लिए नहीं, कैंसर के लिए।'

तीसरा दृश्य—

एक बूढ़ा चल रहा है। हाथ में लाठी, झुकी गर्दन, टेढी कमर, हांफती सांस। बूढे ने आगे बढ़ने के लिए इस दफा जैसे ही लाठी आगे रखी, लाठी के नीचे केले का छिलका आ गया। लाठी फिसली और बूढा गिर पड़ा। जैसे-तैसे सम्भल, खड़ा हुआ, फिर चलने लगा पर इस बार किसी से टक्कर लग गयी। आदमी ने कहा, बुड्ढे! अंधे हो क्या? देखकर नहीं चलते? बूढ़े ने कहा, बूढ़ा हूं। मेरी आंखें कमजोर हैं। पर तुम तो जवान हो। सही आंखें होते हुए भी टकराने वाला सूरदास है।

चौथा दृश्य—

वह अनन्त का यात्री निरपेक्ष था। यात्रा मौन थी, लोगों की दर्द भरी आवाज के बीच। पांथ अकेला था सार्थियों के कन्धे पर। नयन मुंदे थे भीड़ की खुली आंखों में। स्वयं एड़ी से चोटी तक सजा था, संगी-साथी उघाड़े थे। जीवन-संगिनी विदाई दे चुकी थी घर की देहरी पर।

टिकट मिल चुका था। शमशान में डेरा लग गया। सब जला रहे थे, वह जल रहा था। साथ में वे कोई न जले, जिनके लिए उसने अपना जीवन जलाया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शमशान के करीब से गुजरते संत ने कहा, दुनिया सराय-खाना है। इसमें ठहरे राहगीर के लिए आंसू? उसके लिए नहीं, अपने लिए रोओ। यह तुम्हें तुम्हारी मृत्यु की सूचना है। ज्योति बुझे, उससे पहले अपनी सम्पदा के ढूंढ़िया बनो। यही तेरा पंथ है।

दृश्यों का तांता खत्म हो गया। ये चार दृश्य चार-दिन की जिंदगी की फोटोग्राफी है। तरुवर के नीचे बैठे साधक ने सारे दृश्य को साक्षी बनकर देखा। आंखें खोलीं। उनमें एक मन्द मुस्कान थी। उस रहस्यमयी मुस्कान में अनुगूंज थी।

ये ऐश के बंदे सोते रहे, फिर जागे भी तो क्या जागे?
सूरज का उभरना याद रहा और दिन का ढलना भूल गये।

धन, धरती, रूप, मजा में फंसा। कराहता मनुष्य सदा ऊंघ में रहा। पहचाना ही नहीं कभी अपनी ऊंघ को, नींद को। कार चलाना तो याद रहा, पर ब्रेक लगाना भूल बैठे। जन्म और जन्म-दिवस की स्मृति बनाये रखी, पर मृत्यु और मृत्यु-दिवस का सोच भी पैदा न हुआ।

जीवन के सूरज का उपयोग वही कर सकता है, जो उसके उदय और अस्त दोनों स्थितियों को याद रखता है।

जिन्दगी मृत्यु के करीब होती जाती है। यहां यात्रा भी मृत्यु है और मंजिल भी मृत्यु। मृत्यु तो मृत्यु है ही, पर जिन्दगी भी मृत्यु के लिए है। जन्म और जिन्दगी याद रहे, पर मृत्यु को बिसरा बैठे।

अगर संसार से कुछ सीखे हो तो मरना ही होगा। मृत्यु ध्यान की पूर्णता है, समाधि की पहल है। मौत जीवन की नहीं, चित्त पर रोज-ब-रोज आते संस्कारों की धूल की करनी है। आदमी को रोज मरना ही चाहिए। हर अगला दिन जन्म है। कल और कल की बातें मर जाएं तो मानसिक और वैचारिक उठापठक की पकड़ ढीली होती जाएगी। हर अगले दिन आप नवजात शिशु होंगे। यह हमारा सौभाग्य है कि हमें मात्र इसी जन्म की बातें याद हैं। यह ऊपर वाले की मेहरबानी है कि हमें पूर्व जन्म की बातें याद नहीं हैं। चित्त की पकड़ उस तक नहीं है, अन्यथा उस गये/बीते अतीत को चित्त से हटाने में बड़ी कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। सोचें, जब एक जन्म के ही संस्कारों से शून्य होने में इतनी उठापठक करनी पड़ती है, तो जन्मों-जन्मों के चित्त-संस्कारों की स्वच्छता के लिए कितने लम्बे-चौड़े अभियान चलाने पड़ते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतीत के प्रति मूकता और वर्तमान के प्रति जागरूकता भविष्य के द्वार पर सहज दस्तक है। वर्तमान को नजरों से परखने के लिए ही मैंने तरुवर के नीचे बैठने की सुधरी सलाह दी। तरु जीवन्तता है, हरीतिमा है। पत्ते-पत्ते में जीवन के गीत हैं तबले की थाप भी है, कण्ठ के आलाप भी हैं, नृत्य भी है।

तरु साधक है। वह खुद भी साधक है। अतीत का संन्यासी और वर्तमान का अनुपश्यी है वह। कल को भूल बैठा है। वर्तमान का द्रष्टा बन भोग रहा है। भोग हो, पर द्रष्टा-भाव सध जाये तो वह भोग योग का विपरीत नहीं हो सकता।

द्रष्टा हर क्रियाकलाप के बीच तटस्थ रहता है। तरु तटस्थ है। तटस्थता न्याय है। न्यायाधीश तटस्थता का ही पर्याय है। वह सत्य को देखता है। दोनों पक्षों के प्रति वह एकसम रहता है। वह सबकी सुनता है, देखता है, पर समर्थन मात्र सत्य का करता है। सत्य के लिए जान जोखिम में डालने वाले आखिरी दम तक जीवन-कलश में सत्य-सुधा भरते रहते हैं।

सब कुछ होता रहे, किन्तु उस होने में-से मात्र सत्य की अनुमोदना हो तो वही सत्यार्थ-प्रकाश है।

मैं यह न कहूंगा देखना छोड़ो, सुनना छोड़ों, सूंघना छोड़ों। क्योंकि ये क्रियाएं तो उस समय भी चालू रहती हैं जब समाधि 'चरण-चेरी' बन जाती है। इसलिए मैं कहूंगा पकड़ना छोड़नो। आंख बंद भी कर लोगे, कान में रूई डाल दोगे, तो भी मन देखेगा, सुनेगा, कहेगा। उसकी पहुंच बन्द आंखों में भी है और खुली आंखों में भी। हमारा दायित्व मात्र इनता ही है कि देखना 'देखना' ही रहे। देखे हुए को अगर चित्त पर आमंत्रित/छायांकित कर दिया, तो वह देखना हमारी शान्त होती वृत्तियों का अतिक्रमण होगा। कमल कीचड़ में रहे, रहना भी पड़ेगा पर कीचड़ कमल पर न चढ़े इसके लिए आठों याम चौकसी रखनी बुद्धिमानी है।

मुक्त बनें, मन से मुक्त बनें। वह आकाश बनें, जिससे सब कुछ अस्पृश्य रहता है। आंधी चले या मेघ गरजे, दिन उगे या रात पले, पर आकाश को उन सबका कहां स्पर्श! जिसमें कोई स्पर्श नहीं होता, वही मन-से-मुक्त है। रास-लीलाएं चलती रहें, तो रहें, पर व्यक्ति के चित्त पर वे न झलकें। द्रष्टाभाव में रहने के बाद होने वाली रास-लीला भी स्वयमेव उदासीनता को बुलाएगी। ऐसे ही तो होती है शून्य से शिखर की यात्रा। परम-जागरण परम सहकारी है शिखर की यात्रा के लिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमें अपनी खुमारी को समझना चाहिये। हम अपनी तन्द्रा को पहचानें और जागें। मंदिरों में बजाये जाने वाले बड़े-बड़े घण्टों का यही रहस्य है। घण्टे बजाना आम है। क्या घण्टा बजाकर तुम अपने आने की खबर परमात्मा तक पहुंचा रहे हो या भगवान को सोया समझ जगाने की पहल कर रहो हो?

मंदिर में घण्टा परमात्मा के लिए नहीं, अपने लिए बजाया जाता है। उस चित्त के लिए बजाया जाता है, जो सारे जहान की तन्द्रा में तल्लीन है। स्वयं को जगाने के लिए घण्टारव है। खुद जगे तो खुदा जगा। खुदा उसके लिए हर-हमेशा सोया रहेगा, जो खुद सोया है।

जागरण भगवान् की भगवत्ता को आत्मसात् करने का पहला चरण भी है और आखिरी भी। दूसरे के मन की बातों को जानने के लिए स्वयं की भाव-उर्मियों को दूसरों के हृदय में प्रतिबिम्बित करने के लिए आत्म-जागरण सर्वोपरि है। इसकी सानी का कोई विकल्प नहीं है। जागरण-समाधि ही ध्यान-समाधि का प्रवेश-द्वार है।

अगर जागरण जीवन्त है, तो संसार की हर घटना खुद को खुद के पास ले जाएगी। खुद में चलने के लिए प्रेरित करेगी। खुद में खुद के चलने का नाम ही ब्रह्मचर्य है। यदि हम जागरण का दीप जीवन की देहलीज पर रख दें, तो उजाला बाहर भी होगा और भीतर भी। फिर संसार हमारे लिए बंधन नहीं, मुक्ति में मददगार होगा। जन्म-मरण की लहरों से भरे संसार के समन्दर में आत्म-जाग्रत पुरुष होगा द्वीप, दीप-शिखा, गति, प्राण-प्रतिष्ठा।

हम सीखें अशब्द को सुनना। अशब्द में जीना ही ध्यान है। भीड़-भरी दुनिया में अकेले होने का मजा चखें। अपनी आंखों को अर्थ-भरी करें। परम त्याग और परम ध्यान के पथ पर चलने के लिए मित्र भाइयों को खुल्ला न्यौता है।

मैं चाहता हूं कि कोई भी व्यक्ति मानवीय दृष्टि से विकलांग न हो। जीवन का कोई भी क्षण दर्द और दुःख से व्यथित न पाए। व्यक्तित्व के किसी भी अंग का पक्षाघात न हो।

जीवन महान् उपलब्धि है। उसे सुख और शान्ति की अनुभूति के साथ जीना है। जीवन का कोई भी क्षण अर्थहीन न बने। जीवन को परम श्रेय के साथ मंजिल तक ले जाना ही आध्यात्मकि जीवन को आचरण में प्रकट करना है। यही जीवन का विधायक इंकलाब है।

स्वयं की बुद्धि को जगाएं। खुद की बुद्धि सुस्त रखेंगे तो मेरा कोई प्रयोजन नहीं होगा। शास्त्र हमारे लिए जीवन के अनुशास्ता नहीं बन पायेंगे। आंखे ही नहीं, तो आईना किस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काम का? मेरे दिल में उसके प्रति स्वागत-भाव रहता है, जिसके हृदय में जागरण-का-स्वागत है। भगवान् हमारे द्वार पर है, स्वागत गीत गाएं, आरती उतारें।

मानस में जागरण इतना प्राणवन्त हो जाये कि भेद-विज्ञान उससे जुदा न रह पाये, पर स्वयं आये अनक्षर बन, मन-की-शून्यता में, समाधि हमसफर बन जाये सांसों की हर ऊर्ध्वता और नम्रता में। फिर खुद-ब-खुद हो जायेगा मन के अनन्त संसार का अन्त; हमारी ही बौनी अंगुलियां खीचेंगी उस अनन्त की सीमा-रेखा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान स्वयं के आर-पार

ध्यान स्वयं की मौलिकताओं को पहचानने की प्रक्रिया है। ध्यान का संबंध मन, वचन और शरीर के व्यापारों के नियंत्रण से है। आत्मा का न कभी ह्रास होता है और न ही विकास। संकोच और विस्तार तो दीवार के आकार-प्रकार में होता है; रोशनी के फैलाव की दूरी एवं नजदीकी में होता है; किन्तु रोशनी में नहीं।

आत्मा तो चैतन्य-ज्योति है। परतों से रुंधी पड़ी है आभा। छोटे कक्ष में दीप की रोशनी बौनी लगती है वहीं महल में भूमा। सूरज में कहां फर्कआता है रोशनी की निगाहों से; किन्तु एक छोटे से बादल का पर्दा उसकी सारी उज्ज्वलताओं को अपनी काख में दबा लेता है। ध्यान सूरज की रोशनी को पाना नहीं है वरन् आवरणों का उघाड़ना है। स्त्रोत प्रकट करने के लिये जरूरत है चट्टानों को हटाने की। इसलिये ध्यान स्वयं को बेनकाब करने का अभियान है। ध्यान है महाशून्य में प्रवेश करने के लिये, छिलकों को उतारने के लिये।

व्यक्ति को अपनी जिन्दगी में कमल की पंखुड़ियों की तरह जीना होता है। संसार में रहना खतरे को बुलावा नहीं है। आखिर ऐसा कोई ठौर भी तो नहीं है जो संसार से जुदा-बिछुड़ा हो।

मित्र समझते हैं कि गुफा का जीवन ही संन्यास है। गुफा के फायदे जरूर हैं पर गुफा की सत्ता संसार की समग्रता से अलग-थलग नहीं है। आम आदमी के लिये यह संभव भी नहीं है कि वह घर-बार से नाक-भौं सिकोड़कर गुफावासी बन जाए। वह ध्यान टेढ़ी खीर है जिसे साधने के लिये व्यक्ति सिर्फ गुफावासी ही हो। ध्यान तो जीवन की परछाई है। अपनी छाया को छोड़कर आदमी कहां भाग सकेगा? अपनी छाया को तलवार से काट भी कैसे पाएगा? डर है कि मनुष्य कहीं अपनी छाया को काटने के चक्कर में अपने पांव पर घाव न कर ले।

ध्यान तो जीवन को कमल की तरह निर्लिप्त करना है। अपनी किसी भी पंखुड़ी को कीचड़ से न सटने देना ही जीवन में आत्म-जागरण की पहल है। प्रमाद तो हृदय में संसार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को बसाना है। जिन्दगी के कारवां में कितने ही हमसफर बन जाते हैं और कितनों के लिये विरह की कविताएं रच जाती हैं। इस गुजरने और बिछुड़ने के बीच होने वाले भावों को स्वयं के चित्त पर छायांकित न करने का नाम ही साधना है।

ध्यान सिर्फउन लोगों के लिये नहीं है जिनके जीवन का वृषभ बूढा हो चुका है। ध्यान के लिए चाहिये ऊर्जा। यौवन ऊर्जा का जनक है। ध्यान और यौवन का जिगरी संबंध है। जो अपनी जवानी का हाथ ध्यान के हाथ से मिला लेता है, उसके सामने संसार का हर तूफां परास्त है।

तनाव के बीज जवानी में ही बुए जाते हैं। शैशव तनाव-के-पार है। ध्यान मनुष्य को बुजुर्ग बनाना नहीं है; ध्यान स्वयं की शैशव में बापसी है। परमात्मा शिशु के ज्यादा पास है। उसे बेहद प्रेम है बच्चों से। जीवन को सदैव शिशु की तरह निर्मल, निश्छल और सरल बनाये रखने का उपनाम ही सहज योग है। यह वह योग है जिसे साधने के लिये दुनिया भर के योगों की पगडंडियां हैं।

सहजयोग को साधने के लिये मनुष्य स्वयं को दूसरे के प्रभावों से मुक्त करे। मैं दूसरों को प्रभावित करूँ— यह तृष्णा ही संसार की नींव को और चूना-सिमेन्ट पिलाती है। प्रभाव सहजता से किलकारियां भरे तो ही वह टिकाऊ बन पाता है। ऊपर से लादा गया प्रभाव अन्तरंग की अभिव्यक्ति नहीं, वरन् ओहदे या पैसे का प्रताप है।

प्रभाव मन की तृष्णा है और स्वभाव तृष्णा का अभाव है। ध्यान मन से ऊपर उठने की बेहतरीन कला है। आत्म-जागरण मन से ऊपर उठना है, विचार से ऊपर उठना है, शरीर से ऊपर उठना है। चैतन्य-दर्शन सबके पार है— मन के, वचन के, शरीर के। शरीर आत्मा के लिये है, ऐसा नहीं। आत्मा की उपस्थिति के कारण शरीर नहीं है, अपितु आत्मा की उपस्थिति विदेह के निमित्त है। जहां देह की स्वस्थ अनुभूति है, वहां स्वास्थ्य नहीं है। असली स्वास्थ्य-लाभ तो वहां है, जहां देह के अनुभव की कोई गुंजाइश ही नहीं है।

मित्र-साधक मुझसे मशविरा करते हैं चैतन्य-दर्शन के लिये, अनन्त की अनुभूति के लिये। मेरी सलाह रहती है स्वयं को ऊपर उठाने की। पात्र की चमक जरूर पाना चाहते हो, किन्तु इसके लिये पहले उसे मांजने की पहल की जानी चाहिये। स्वयं को ज्योतित देखने का एक मात्र उपाय यही है कि अपने आपको विदेह में, निर्वचन में, अमन में झांको। पारदर्शी हुए बगैर स्वयं तक न पहुंच सकोगे। मुझे भी जानना चाहो, तो देह-के-पार देखो। क्योंकि मैं देह नहीं हूं, मैं देह में हूं, पर देह नहीं हूं। स्वयं को भी ऐसे ही देखो देह-के-परदों-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के-पार। विदेह की अनुभूति घर के दरवाजे का वह छेद है जिससे अन्तर-जीवन के कक्ष में सजी मौलिकताओं को नजर मुहैया किया जा सकता है। शरीर जड़ है और ध्यान के लिए जड़ के प्रति होने वाले तादात्म्य की अन्त्येष्टी अनिवार्य है। मन में शब्दों की भारी भीड़ और भारी कोलाहल है। जो अपने मन से ऊपर उठ जाता है वह सबसे मन से ऊपर उठ जाता है। मन का पारदर्शी सिर्फस्वयं को ही शरीर, वचन और मन से अलग नहीं देखता, वरन् दूसरों के जीवन का भी आत्म-दृष्टि से मूल्यांकन करता है। अन्तर की इस वैज्ञानिक पहल का नाम ही भेद-विज्ञान है।

ध्यान हमारी आंख है। जिसकी हथेली से ध्यान छूट गया उसका जीवन इकाररहित 'शिव' है। जिसकी आंख ही फूट गई है उस बेचारे को तो अन्धा कहना ही पड़ता है, पर बड़ा अन्धा तो वो है जिसने ध्यान की आंख में लापरवाही की सुई चुभा दी है।

आज सुबह की बात है। एक सज्जन मेरे पास आये। कहने लगे, मैं बीस साल से ध्यान करता हूं वह भी रोजाना चार-पांच घण्टे। मेरे गुरुजी ने मुझे ध्यान सिखाया है। मैंने पूछा, वह कैसे? उसने झट से पद्मासन लगाया और स्वयं को अकम्प/अडोल बना लिया। मैंने कहा अगर आपका चित्र खींचा जाए तो लाजवाब होगा। किन्तु वह ध्यान कैसा जो व्यक्ति को पत्थर की मूर्ति मात्र बना दे।

वे झिझके। मैंने कहा, पहली बात; ध्यान करते बीस साल हो गये, किन्तु ध्यान हुआ नहीं। करना अभ्यास है। बीस साल तक पढ़ने के बावजूद छात्र ही रह गये, गुरु न बन पाये। दूसरी बात; ध्यान घंटों के दायरे में नहीं आता। चार-पांच घंटों तक जो ध्यान करते हैं, वह भीतर का उत्सव बनकर नहीं, वरन् बाहर से भीतर लादते हो। ध्यान में आठों पहर हो। जब भी कोई पूछे तुम क्या कर रहे हो, उत्तर आना चाहिये—ध्यान में हूं। पद्मासन, श्वांस-प्रेक्षा, ज्योति-केन्द्र में चित्त स्थिरता, दो घंटे की बैठक यह सब तो सुबह-शाम ली जाने वाली दवा की गोली मात्र है, ताकि उसकी तरंग दिन-भर/रात भर रहे।

मुझे ध्यान से उज्ज्वलताएं मिली है; पर मैं उस ध्यान में डूबा रहता हूं, जो मुझे मुरझाए नहीं, हुलसाए।

ध्यान सिर्फ शरीर को अकड़ कर बैठाना नहीं है, श्वांस पर नजर की टकटकी बांधना नहीं है। ध्यान रोजमर्रा की जिन्दगी से जुदा नहीं है। दफ्तर में काम करना, दुकान में कपड़ा नापना, घर में रसोई बनाना सब में एकाग्रता के गीत सुनाई देते हैं। ध्यान एकाग्रता की निर्मिति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। जहाँ एकाग्रता वहाँ ध्यान और जहां ध्यान वहां जीवन की पहचान। जो ध्यान से चूका वो जीवन से चूका, जो ध्यान से जुड़ा वह जीवन से जुड़ा।

ध्यान जीवन की समग्र एकाग्रता है। जियो, जीवन जीने के लिये है। जीवन जन्म और मृत्यु के बीच सिर्फ टहलना नहीं है, जीवन आनन्द के लिये है, उत्सव के लिये है। जीवन सिर्फ गति के लिये ही नहीं है, गीत के लिये भी है। उसमें संगीत भरो; अन्तर-शक्तियों को तनाव-मुक्त करो। खाओ, मगर ध्यान पूर्वक; पियो, मगर ध्यान के साथ; मौज उड़ाओ, मगर ध्यान को आत्मसात् कर। जीवन की हर प्रवृति में सजगता और निर्लिप्तता का वाक्य-विन्यास करना अपने ही हाथों से अपना वेद रचना है। ध्यानपूर्वक चलना, ध्यानपूर्वक बैठना, ध्यानपूर्वक सोना, ध्यानपूर्वक खाना, ध्यानपूर्वक बोलना समाधि की मंजिल की ओर कदम-दर-कदम बढ़ाना है।

अधिकांश साधकों की यह समस्या रहती है कि वे ध्यान के प्रति अभिरुचि होने के बावजूद समाज/संसार को छोड़ नहीं पाते। मेरी समझ से छोड़ना आत्यन्तिक अनिवार्य नहीं है। छूट जाए तो कोई नुकसान नहीं है। न छूटे तो परेशान होने की भी जरुरत नहीं है। आखिर यह परेशानी भी एक सलौने ढंग का तनाव ही है। ध्यान तो हर तनाव के पार है। तनाव से अतिमुक्त करना ही ध्यान का दायित्व है।

'तृप्ति' (मूल नाम : ट्राडिल ऑटो, ध्यान-दीक्षित-नाम तृप्ति; बर्लिन, वेस्ट जर्मनी) भी इसी तनाव में उलझी। महावीर को पढ़ा तो महावीर से प्रभावित अवश्य हुई; वह सोचती है कि मैं महावीर के ध्यान-मार्ग पर तो चलूं, किन्तु समाज से अलग-थलग होकर नहीं।

मैं तो कहूंगा तृप्ति समझी नहीं। महावीर विद्रोह के सूत्रधार नहीं; बोध के सूत्रकार हैं। महावीर खूब रहे, सो जंगलों में रमे और जब साधना सध गई तो शहरों में लौट आये। महावीर बन सको तो अच्छा ही है, पर हर आदमी महावीर की तरह जंगलों में जाकर नहीं रह सकता। अगर हर आदमी जंगलों की ओर कदम बढ़ा ले तो जंगल भी शहर का बाना ओढ़ लेंगे। स्थान बदल जाएंगे, वस्तु-स्थिति से घूंघट नहीं उघड़ेंगे। स्थान-परिवर्तन मात्र से तो शहर जंगल बन जाएंगे और जंगल शहर।

स्थान के बदलने मात्र से आदमी नहीं बदल जाता। मुखौटों के बदलाव से स्वभाव में बदलाव कहां आता है। मांसाहार छोड़ने से हिंसा मरती नहीं है, किन्तु हिंसा को मन से देश निकाला दिये जाने के बाद मांसाहार को छूटना ही पड़ता है। इसलिये भीतर के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिवर्तन में अपना विश्वास-प्रस्ताव पारित करो। क्या नहीं सुना है तुमने 'मन चंगा तो कठौती में गंगा?' अगर अन्तरंग को न बदल पाये तो सारा बदलाव गीदड़ द्वारा हिरण की खाल ओढ़ना है। स्वयं को अन्तर-जगत में निर्विष किये बिना किया गया आचरण बिच्छु का तार्किक संवाद है।

ध्यान स्वयं को देखना है, स्वयं के द्वारा देखना है, स्वयं में देखना है। इसलिये ध्यान पूरे तौर पर अपने आपको हर कोण से ऊपर उठकर देखने की कला है। जहां शरीर, वचन और मन का अंत आ जाता है वहीं यात्रा प्रारंभ होती है अनन्त की। डूबें हम स्वयं में ताकि उभर पड़े नयनों में नयनाभिराम अन्तर्यामी। निमंत्रण है सारे जहान को अनन्त का, अनन्त की लहरों में। अनन्त का निमंत्रण चूकने जैसा नहीं है। स्वयं को आर-पार देखो। शरीर, मन, वचन जीवन की उपलब्धि अवश्य है, पर वह माटी के दिये से ज्यादा नहीं है। उस दिये से ऊपर भी अपनी नजरें उठायें, जहां लौ माटी के दिये को प्रकाश से भिगो रही है। ज्योति का आकाश की ओर उठना ही चेतना का ऊर्ध्वारोहण है। ज्योति की पहचान से बढ़कर जीवन का कोई बेहतरीन मूल्य नहीं है। मर्त्य में अमर्त्य की पहचान ही अमृत-स्नान है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह है विशुद्धि का मार्ग

मानवता विश्व की सबसे बेहतरीन नीति है। यह विश्व की आंख है, अस्तित्व की आभा है। मानवता का सम्मान विश्व के लिए अमृत-स्नान है। मानवता का गला घोंटना विश्व को विषपान के लिए विवश करना है।

विश्व-शान्ति का पहला पगथिया मानवता को अन्तर्द्वन्द्व से मुक्त करना है। भला, द्वन्द्व का मानवता से क्या संबंध! मानवता उजाले का मंचन है; द्वन्द्व अंधेरे का मन्थन है। अन्धेरे से अन्धेरा पैदा होता है और उजाले से उजाला। अन्धेरे से अन्धेरे को कभी खदेड़ा नहीं जा सकता। उजाले का अवतरण ही अन्धेरे के निरस्त्रीकरण का साधन है।

अन्तर्द्वन्द्व मानवता के लिए चुनौती है। उसका अधिकार शान्ति है, द्वन्द्व नहीं। द्वन्द्व का रिश्ता स्वयं मनुष्य के चित्त से है। अगर चित्त को ही फाड-फूड़ कर कचरे की टोकरी में फेंक दिया जाए, तो अन्तरघर में द्वन्द्व की गन्दगी कहां फैलेगी!

द्वन्द्व से छुटकारा पाने के लिए दो ही विकल्प हैं—या तो चित्त को मृत्यु के दस्तावेज पढ़ा दिये जायें या उसे धो-मांजकर/झांड-पोंछकर/साफ सुथराकर सजा-धजा लिया जाए। जीवन में महाशून्य और महाशान्ति की अनुभूति के लिए ये दोनों ही तरीके अनन्त के वरदान है।

चित्त सूक्ष्म परमाणुओं की मिली भगत सांठगांठ है। इसका खालिस होना जीवन का सौन्दर्य है। घरबार को सजाने में लगे इंसान द्वारा हृदय-कक्ष को नयनाभिराम बनाने के लिए संकल्प जगना ही ग्रन्थि-शोधन की आधार-भूमिका है। तृष्णा और वासना के बीच धक्के खाते रहना तो मृत्यु के द्वार पर जीवन का संसार-भ्रमण है। मन के रहते तृष्णा भी जन्मेगी और शरीर के रहते वासना भी; किन्तु शरीर को मन की जी-हजूरी में लगाना और शरीर को मात्र शरीर के साथ खिलवाड़ में उलझाना मनुष्य की सबसे ओछी बुद्धि की पहचान है। आखिर शरीर और मन के आगे भी पड़ाव की संभावनाएं हैं। गोरी चमड़ी के लिए मन की बांहे फैलाना और चोरी/दमड़ी के पीछे ईमान को नजर-अन्दाज करना जीवन की आन्तरिक असभ्यता और फूहड़पन है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमें तो अन्तरजगत् को फूल की तरह खिलाना और महकाना है। मनुष्य का दायित्व तो दूसरों के जीवन में भी सुवास-संचार का है, पर जहां खुद के पांव दलदल में जमे हों, तो विशुद्धि का मार्ग आंखों से ओझल कहलाएगा ही। सीखें हम फूलों से महकना और गुलशन को महकाना।

सौरभ को जीवन-द्वार पर आमंत्रित करने के लिए जरूरी है, चित्त और चित्त-वृत्तियों को पावनता की किसी गंगा में नहला-धुला लिया जाए। हमारे जीवन की हर नीति दूसरों के लिए भी यथार्थ आदर्श बने, तो ही हमारे अस्तित्व की सार्थकता है।

चित्त पर मलिनता आती है संकल्प की कमजोरियों के पिछले दरवाजे से। बर्तन पर धूल जमनी स्वाभाविक है। अगर खुश मिजाज के साथ उसे साफ किया जाए, तो विशुद्धिकरण भी आनन्ददायी होगा। मुंह-लटकाए दिल से चित्त को कभी ईश्वर का सामीप्य नहीं दिलाया जा सकता है। ईश्वर बिम्ब है तो ऐश्वर्य उसकी आभा। क्या राख जमे आइने में किसी का चेहरा झलकेगा। बिम्ब-दर्शन के लिए दर्पण-दर्शन की उज्ज्वलता अनिवार्य है।

ईश्वर उत्सव है, और उत्सव उत्सुकता से मनाया जाना चाहिये। ईश्वर उत्सव रूप है, रस रूप है। रसमयता ही एकाग्रता की आधारशिला है।

एक बात तय है कि चित्त कर्त्ता नहीं है; चित्त करण है। चित्त ने न तो अपने पर अशुद्धि की मैली कथरी ओढ़ी है और न ही वह शुद्धि की पेशकश करेगा। आखिर व्यक्ति ने ही उसके पात्र में जहर घोला है और वही उसे निर्विष करने का उत्तरदायी भी है। शुद्धि की पहल वही कर सकता है, जिसने अशुद्धि की भूमिका निभाई। जिन सीढ़ियों से व्यक्ति नीचे फिसला है, उन्हीं से सम्हलकर ऊपर चढ़ना होगा।

चित्त अपने-आपमें एक शक्ति है और यह शक्ति चेतना के ही बदौलत है। यदि हम चित्त को हमारे अन्तःकरण के अर्थ में स्वीकार कर लें तो विशुद्धि के दायरे सहज और ऋजु हो जाएंगे। इन्द्रियां अपना काम करती हैं, किन्तु इन्द्रियों के संस्थान का निर्देशक तो चित्त ही है। भीतर से जैसे निर्देश मिलते हैं, इन्द्रियां उनका अमल करती है। इन्द्रियों की रोशनी बाहर से जुड़ी है। आंख, कान, नाक के अपने-अपने क्षितिज हैं। शुद्धि से उनका सीधा संबंध नहीं है। वे तो चाय की प्याली को दुकान से दफ्तर तक पहुंचाने वाली निमित्त मात्र हैं। इसलिए चित्त अगर शुद्ध हो जाए तो इन्द्रियों की शुद्धता आपो-आप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संभावित है। आखिर चपरासी को रिश्वत लेने का पाठ पदाधिकारियों से ही सीखने को मिलता है। अन्तरशुद्धि बहिर्शुद्धि का अनिवार्य आधार है।

मनुष्य इन्द्रियों के जरिये ही भीतर के भावों की तरंगों को बाहरी जगत् में मूर्तरुप देता है, किन्तु उसकी सम्पूर्ण गतिविधियों का आधार-सूत्र चित्त ही है। इसीलिए यह इन्द्रियों का निर्देशक है। अगर एक बात दिमाग में घर कर ले कि चित्त को इन्द्रियों का निर्देशक होते हुए भी आत्मा को सलामी देनी ही पड़ती है , यदि द्रष्टाभाव जीवन्त हो जाये, तो चित्त का संस्कारजन्य शोरगुल मन्दा पड़ जायेगा। तटस्थ-पुरुष के लिए चित्त चरणों का चाकर है।

चित्त का बोध हमें इसकी क्रियाओं के द्वारा होता है। यदि वह सन्तप्त हो जाए तो शरीर की सारी गतिविधियां उससे प्रभावित होंगी ही। आंख सही भले ही हो, किन्तु दर्शन के बाद होने वाले निर्णय का निर्णायक तो भीतर विराजमान चित्त ही है। इन्द्रियों की गतिविधियों के तार चित्त से जोड़ दिये जाने के कारण ही सुख-दुःख के बांसों की झुरमुट के टी-री-टी-टुट-टुट सुनाई देते हैं। मनुष्य द्वारा चित्त के आधीन हो जाना ही जीवन की सबसे बड़ी अशुद्धि है। वो व्यक्ति सम्राट है, जिसने चित्त की बागडोर बखूबी सम्हाल रखी है।

चित्त विचारों, संस्कारों, धारणाओं की फसल का बीज है। वे चाहे अच्छे हों, चाहे बुरे महाशून्य की अनुभूति में रोडे ही हैं। अच्छे-बुरे का द्वन्द्व ही तो तनाव की नींव है। विचारों में व्यक्ति अयोध्या जाये या अकूरी, बाहरी रास्तों को ही नापेगा। तटस्थता आत्मसात् हो जाये तो व्यक्ति न तो चित्त के मुताबिक रहेगा, न चित्त के खिलाफ। वह रहेगा जीवन की विपरीत अवस्थाओं से अप्रभावित/अछूता।

चित्त की हू-ब-हू पहचान के बाद प्रवृत्ति रहती है, किन्तु वृत्ति नहीं। प्रवृत्ति अनिवार्यता है, वृत्ति फिसलना है। वृत्ति चित्त की फुदफुदाहट है। चित्त-शून्य पुरुष द्वारा होने वाली प्रवृत्ति मनुष्य को कभी भी आड़े हाथों नहीं बांधती। वृत्ति विकृत हो सकती है। ध्यान विकारों से ही नहीं, विचारों से भी मुक्ति का अभियान है।

विचार चित्त की वासना है। वासना प्रक्षेपण है। वस्तु का मूल्य मनुष्य की वासना में है। पत्थर सिर्फकांच ही नहीं है, हीरा भी है; मन की वासना बुझ जाए, तो कैसे होगा हीरा महिमावान् और काच का अपमान। विचारों में वासना का बसेरा हो जाने के कारण ही तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य के प्राण किसी तोते में न रहकर तिजोरी में अटके पड़े है। वासना से ही तो चित्त को भिगोया है। निचोड़ो जरा कसकर चित्त को उसकी सुकावट के लिए।

शाश्वत के घर प्रवेश पाने के लिए विचार-शून्यता अनिवार्य है। मैं हिन्दु, मैं मुसलमान, मैं पुरुष, मैं स्त्री, मैं सुखी, मैं दुःखी, मैं त्यागी, मैं भोगी—ये सब भीतर की ही विचार-रेखाएं है। हर रेखा दरार की शुरुआत है और हर दरार उपद्रव की वाचक है। विचार शून्यता/चित्त-विशुद्धता अन्तर में विराजमान हो जाए, तो उपद्रव को उल्टे पांव खिसकना ही होगा।

विचार/संस्कार उस समय ज्यादा उभरते हैं, जब कोई शान्त बैठने की चेष्टा करता है। ध्यान शान्त चित्त बैठने की ही पहल है। ध्यान की घड़ियों में आने वाले विचार सोये-सोये दिखने वाले स्वप्न-चित्रों से भिन्न नहीं है। स्वप्न-मुक्ति के लिए चित्त का परिचय-पत्र पढ़ना जरूरी है। जो चित्त को परखने की कोशिश करता है, उसके सपने लेने की आदत खुद-ब-खुद ढहने लगती है। चित्त ही चुप्पी साध ले, तो स्वप्न भटकाव कहां!

यद्यपि सपने दिनभर के दुःखी जीवन में दिखने वाली रजनीगंधा इन्द्रधनुषी रंगीनियां हैं, पर सपने के लड्डुओं से पेट नहीं भरता। स्वप्न सत्य नहीं, मात्र विचारों के द्वन्द्व का सागर-की-लहरों में नजर-मुहैय्या होने वाला प्रतिबिम्ब है। ध्यान का प्रभाव मन पर जम जाये, तो चंचलता हिमाच्छादित हो जायेगी, स्थिरता आंख खोल लेगी।

आत्म-शुद्धि अन्तर्यात्रा का सधा कदम है। आत्म-शुद्धि ही जीवन-शुद्धि है। चित्त-शुद्धि जीवन-शुद्धि की अनिवार्य शर्त है। काया-कल्प के पीछे पड़ने वाले लोग जीवन-कल्प पर विचार भी नहीं करते। शरीर, विचार और मन—तीनों की शुद्धि ही आत्म-शुद्धि की तैयारी है। स्वयं का पात्र मंज जाये, तो ही पीयूष-पान का मजा है।

मानसिक एकाग्रता के लिए जलधारा, दीप-ज्योति, सूर्य-किरण, परमात्म-प्रतिमा, शब्द-मंत्र वगैरह प्रतीक चुने जाते हैं। ये आलम्बन सारे जहान में भटकाव से हटाव में मददगार हैं। परमात्मा की परमशक्ति/शक्ति की सम्भावना स्वयं व्यक्ति के अन्दर है। भीतर का दीपक जलाने के लिए किसी प्रकार के प्रबंध की जरूरत नहीं है। वह तो ज्योतित ही है। दीपक के इर्द-गिर्द आवरण है। अनावरण करें दीप का, रोशनी बहेगी आर-पार।

ध्यान स्वयं को बेनकाब करने का ही प्रयत्न है।

ध्यान की सिद्धि के लिए चित्त की प्रसन्नता अपरिहार्य है। दुःखी-व्यथित आदमी ध्यान में व्यथा-कथा की ही प्रस्तावना लिखेगा। जब स्वयं को खुश महसूस करें, तभी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान के द्वार पर दस्तक दें। परम प्रसन्नता का समय ही ध्यान करने का सही समय है, फिर चाहे वह समय रात से जुड़ा हो या प्रभात से। ध्यान हमारे जीवन का अमृत-मित्र बन जाये, तो ही ध्यान का सही आनन्द है। श्वांसों का प्रेक्षण, चिन्तन का अनुपश्यन ही ध्यान नहीं है, ध्यानपूर्वक खाना, सोना, चलना, बोलना—सब ध्यान ही है। कोई भी क्रिया ध्यान-शून्य न हो। किसी भी क्रिया को करते समय मानसिक एकाग्रता एवं शक्ति-घनत्व का प्रयोग हो। ध्यान हमारे अस्तित्व का अंग तभी है, जब उसके बिना जीवन विरहिनी की कविता बन जाये।

चित्त तो भीतर का चक्का है। आन्तरिक एकाग्रता साधने के लिए उसकी तेजतर्राहट रोकनी जरूरी है। उसकी छितराती वृत्तियों और चंचलता पर अंकुश लगाने का नाम ही एकाग्रता है। एकाग्रता में पड़ने वाली दरारों को मिटाने के लिए चित्त-शुद्धि की पहल अनिवार्य है।

चित्त के रास्ते से संस्कारों के कई कारवां गुजरते हैं। संस्कार-स्मृति-संकर न कर पाये, यह ध्यान रखना बेहद जरूरी है। चित्त को साफ-सुथरा करने के लिए बैर की बजाय प्रेम को बढ़ावा दें। स्वयं के दोषों को याद कर आंसुओं का धौला ताज न बनाकर स्वयं के गुणों को सींचने का दिलोजान से प्रयास करें। कषाय, वासना, डर को भीतर न दबाकर उनका रेचन करें। किसी पर पत्थर फेंकने की बजाय माला के मनके चलाएं। उन निमित्तों से भी दूर रहें, जिनसे चित्त मलिन/विचलित हो। ऊर्जा को सही दिशा में योजित करें। चित्त को सही दिशा में लगाना ही जीवन का रचनात्मक एवं सृजनात्मक उपयोग है।

चित्त की विशुद्ध स्थिति में ही आत्मा की परमात्म-शक्ति मुखर होती है। जरुरत है प्रसन्नतापूर्वक चित्त को मांजने की, जीवन में सौहार्द एवं सौजन्य को न्यौता देने की। बाहर घूमती चेतना का समीकरण करें। सर्वतोभावेन ध्यान में रसमय हो जाएं, समाधि हमें प्यार से छाती से लगाएगी। पहले टपकेंगी समाधि की बूंदें, फिर आएगी बरसात, एक दिन ऐसा होगा जब डूबे मिलेंगे समाधि की बाढ़ में।

किन्तु, ध्यान-समाधि के इस वृक्ष की हरी छांह को पाने के लिए हमें सर्वप्रथम चित्त को उस दलदल से निकालना होगा, जिसका संबंध असमाधि एवं भटकाव से है। अन्तरजगत् की विकृतियों को सभ्यता और संस्कृति का पाठ पढ़ाना ही चित्त-शुद्धि का उपक्रम है। हम सिखाएँ चित्त को संस्कृत होना। संस्कृत पढ़ना अलग चीज है, पर संस्कृत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होना विकृतियों से विमुक्त होने का साधु-अभियान है। निर्विकार चित्त ही मानवता को द्वन्द्व के शिकंजों से मुक्त करने की पृष्ठ-भूमि है।

चित्त दर्पण की भांति है। इस पर विकारों-विचारों की धूल जम जाती है। उस धूल को पोंछना ही जीवन में निर्मलता की दस्तक है।

मनुष्य की चित्त-अशुद्धि से पहली मुठभेड़ तब होती है। जब वह बाहरी चकाचौंध को आत्मसात् करने की कोशिश करता है। मनुष्य जहां भी असार में सार को और सार में असार को आरोपित करता है वहीं वह अन्धकार की ओर अपने दो कदम बढ़ा बैठता है। जड़ को चेतन और चेतन को जड़ मानना ही मनुष्य का अज्ञान है। मानना कोरी भ्रान्ति है। जीवन में चाहिये ज्ञान की भोर। जानना अभिनव क्रान्ति है। जड़ को चेतन मानने से वह चैतन्य-ऊर्जा से अभिमण्डित नहीं हो जाता। जड़ कभी चेतन नहीं हो सकता और चेतन कभी जड़ नहीं। एक दूसरे पर किया जाने वाला भ्रान्त निक्षेपण ही चित्त पर कीचड़ की परत चढ़ाना है।

वस्तु, अवस्था या परिस्थिति में जीवन-बुद्धि का आरोपण चित्त की मौलिक अशुद्धि है। यदि मनुष्य पदार्थ और चेतना के बीच भिन्नता का बोध कायम रखे, तो अशुद्धि को अन्तर्जगत से कोसों दूर खिसकना पड़ता है। ध्यान इस मौलिक भिन्नता को दर्शाने वाला विवेक-दर्शन है।

जिन लोगों को धूम्रपान की आदत है, क्रोध या चिड़चिड़ापन का घेराव है, बाहर के राग के कारण तनाव का अन्तर्मन में जबरन डेरा है, वे ध्यान की दवा का सुबह-शाम अवश्य सेवन करें। अपनी ऊर्जा को केन्द्रित कर ध्यान में समग्रता से जीना चित्त की अशुद्धियों को कानूनन दिया जाने वाला देश निकाला है। चित्त शुद्धि ही मनुष्य के लिए अन्तरशांति की आधारशिला है। मानवता को शान्ति से प्रेम है और विश्व को मानवता से। शान्ति विश्व का व्यक्तित्व है और मनुष्य का धर्म उस व्यक्तित्व के लिए स्वयं को सर्वतोभावेन समर्पित करना है। मानवता के मूल्यों से जीवन की समग्रता जोड़ना अपने कर-कमलों से विश्व को अभिनन्दन-पत्र प्रदान करना है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करें, चैतन्य-दर्शन

कर्म का आधार विचार है और विचार का जन्म-स्थान मन है। फसल अंकुरण के कारण है और अंकुरण बीज के कारण। तीनों परस्पर सगे-संबंधी हैं। प्रगाढ़ता इतनी है कि तीन में से किसी एक में होने वाली हचलच शेष को भी प्रभावित करती है।

मन, वचन, शरीर जड़ भले ही हों, पर चेतना का सारा व्यवसाय इन तीनों का व्यूह-रचना के अन्तर्गत है।

चित्त चेतना का ही स्तर है। यों समझिये कि चित्त चेतना का प्रवेश द्वार है। चित्त वह कारवां है, जिसमें अच्छे-बुरे के दोस्त-दुश्मन संग-संग चलते हैं। अच्छे बुरे के बीच होने वाला कलह ही मानसिक तनाव है। ध्यान है चित्त का अनुशास्ता। बिना इस अंकुश के चित्त का हाथी काबू से बाहर है। मानसिक स्वास्थ्य तो चित्त के अच्छे-बुरे संकल्पों के नियंत्रण से ही संभव है।

विचार मन की सूक्ष्म तरंग है। कर्म और कुछ नहीं है, मन की सूक्ष्म तरंगों की अभिव्यक्ति है। लकवा खाये मन का कर्म कहां! विचारों की तरंगों का प्रवाह मन के तंत्र पर निर्भर है। बाहर से सम्पर्क का ईंधन न मिले, तो मन का मौन होना नैसर्गिक है। बिना पेट्रोल के कैसे चल पायेगा वाहन। ईंधन की कटौती और बढ़ोतरी पर ही वाहन की चाल है।

मन का परिचय मैं भविष्य की कल्पना से कराऊंगा। चित्त मन से अलग अस्तित्व है। चित्त है अतीत का खण्डहर और मन है भविष्य की कल्पना। वर्तमान अतीत और भविष्य के प्रास्ताविक तथा उपसंहार के बीच का फैलाव है। दृष्टि चाहे अतीत में जाए या भविष्य में, साधक साध्य से ही कहलाएगा।

अतीत चित्त है और भविष्य मन। वर्तमान है—अतीत और भविष्य के मध्यवर्ती मार्ग पर पदचाप।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्तमान व्यक्तित्व है। वर्तमान अतीत बने, भविष्य वर्तमान के द्वार पर दस्तक दे, उससे पहले वर्तमान शाश्वत के लिए पहल कर ले।

मेरा विश्वास वर्तमान है,वर्तमान में है। वर्तमान में कैसी सुस्ती! नींद लेने के लिए मना कहां है। पर नींद आज ही लेनी क्या जरूरी है? नींद कल लेनी है, आज तो जागना है पीले पड़ रहे पत्ते को। आज की जागृति आने वाले कल के लिए सुखद नींद है। समाधि उस नींद का ही तो अपर नाम है।

समाधि की पहली सीढ़ी संबोधि है। समझ के साथ होने वाली जागरूकता ही संबोधि की परिभाषा है। अतीत को पढ़ना समझ है और भविष्य को चित्त पर संस्कार की परत के रुप में न जमने देना जागरूकता है। समझ का नाता मस्तिष्क से है, जबिक संस्कार का संबंध चित्त से है। संस्कार विचारों की लहर है। संस्कारों का काफिला बनता/बढ़ता है चेतना की बाहरी सैर से।

विचारों का सरोवर शान्त सोया रहे, तो अच्छा ही है। उसमें फेंका गया छोटा-सा एक कंकर मात्र एक ही लहर का कारण नहीं बनता, अपितु वह आन्दोलित करता है सम्पूर्ण सरोवर को, सरोवर की ठेठ आखिरी बूंद को। सारा-का-सारा सरोवर लहरों से तरंगति और विचलित हो उठता है। इसलिए मनुष्य को विचारों से वैसे ही निकल जाना चाहिये जैसे जंगल से रेलगाड़ी निकला करती है।

वह मित्र गुफा में जाकर बैठा है। क्या यह पलायन है? पलायन भगोड़े करते हैं। गुफा क्रांति का प्रतीक है। अन्तरराष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए वह योजना-कक्ष है। गुफावास चेतना की वापसी का अभियान है। मन शान्त और अकम्प हो जाये, तो शहर भी महागुफा में प्रवेश है। आईनों में फिर खुद के चेहरे की झलक तो मुखर होती है, पर खतम हो जाती है प्रतिबिम्बों में बिम्ब को देखने की भावधारा।

मन विचारों की तरंगों से शरीर को कर्म करने के लिए प्रेरित करे, उससे पहले उसकी दिशा मोड़ देनी चाहिये। प्रत्याहार हीं प्राणायाम-से-फैलती प्राण-शक्ति को वापस लौटाता है। प्राणायाम से प्राणों का विस्तार होता है और प्रत्याहार से मूल स्त्रोत की ओर वापसी।

बाहर की ओर श्वास जाना प्राणायाम है, भीतर की ओर श्वास लेना प्रत्याहार है। प्राणायाम और प्रत्याहार की इस लयबद्धता का नाम ही जीवन है। यदि यही प्रक्रिया चेतना से जुड़ जाये, तो अनन्त उज्ज्वल संभावनाएं साकार हो सकती हैं। व्यक्ति स्वयं को बाहर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ले जाए अनन्त तक और भीतर ले जाए शून्य तक। महाजीवन की भगवत् सम्पदा भीतर की शून्यता और बाहर की पूर्णता में है। पहल के लिए जरूरत है प्राणशक्तियों की भीतर में बैठक बनाने की। अन्तरशक्तियों को स्थितप्रज्ञ बनाने का नाम ही कुम्भक है।

चैतन्य-शिखर की यह यात्रा हमारे व्यक्तित्व के क्रिया-तन्त्रों का सम्मान है। शरीर, मन, विचार, चित्त या मस्तिष्क सबकी धमनियों में आखिर मौलिकता किसकी है, मूलतः अन्दर कौन है, किसका प्रवाह है, इसके प्रति जिज्ञासा होनी ही चाहिये। जिसने यह जानने की चेष्टा की कि मेरा जीवन-स्त्रोत क्या है, मैं कौन हूं, वह सम्बोधि-मार्ग का पांथ है। जिज्ञासा संबोधि की सहेली है। समाधि तो वहां है, जिसकी स्वयं को जानने की चेष्टाएं सफलता का प्रमाण-पत्र ले चुकी हैं। समाधि वह तट है, जिसे पाने के लिए कई तूफानों से लड़ना पड़ सकता है। जो तूफान से जूझने के लिए हर संभव प्रस्तुत है, उसके लिए हर लहर सागर का किनारा है।

समाधि का सागर जीवन से जुदा नहीं है। जीवन और समाधि के बीच कुछ घड़ियों/अरसों का विरह हो सकता है, किन्तु शाश्वत विरह के पदचाप सुनाई नहीं दे सकते। यदि मनुष्य कृतसंकल्प हो और अपने संकल्पों के लिए सर्वतोभावेन समर्पित हो, तो समाधि का नौका-विहार भंवर के तूफानी गट्ठों में भी बेहिचक होता है।

मुझे तो आखिर वो पाना है जो हकीकत में 'मैं' हूं। उस 'मैं' की उपलब्धि ही तो महाजीवन के द्वार का उद्घाटन है। यदि मैं की उपलब्धि में मृत्यु भी हो जाए, तो वह मेरे द्वारा मेरे ही लिए होने वाली शहादत है। अरिहंत मेरी ही पराकाष्टा है। और अरिहंत की मृत्यु, मृत्यु नहीं, वरन्, महाजीवन का महामहोत्सव है। मैं ऐसी ही मजार का दिया जला रहा हूं, जो जीवन को मृत्यु-मुक्त रोशनी दे।

हमें पार होना है हर घेरे से, हर सीमा से, हर पर्दे से। आखिर असीम सीमा के पार ही मिल सकता है। सीमाओं के पार चलने के लिए स्वयं को दिया जाने वाले प्रोत्साहन ही जीवन का संन्यास है। यदि फैलाना हो तुम्हें अपने आपको, तो हाथ को ले जाओ अनन्त तक। यदि विस्तार से ऊब गये हो तो लौटा लाओ स्वयं के जीवन के महाशून्य में; बसा है जो शरीर के पार, विचार के पार, मन के पार।

शरीर का तादात्म्य टूटना ही विदेह-अनुभूति है। विचारों द्वारा मौनव्रत लेना ही जीवन में मुनित्व का आयोजन है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन के पार चलना ही अन्तरात्मा में आरोहण के लिए 'सिंगनल' पाना है। 'मैं' तो मन से भी दो कदम आगे हूं। मुझे तो अभी तक पार करनी है कई सीढ़ियां।

आत्म-स्त्रोत रुंधा पड़ा है मन, वचन और शरीर के तादात्म्य की काली चट्टानों से। चट्टानों को हटाना ही स्त्रोत के विमोचन का आधार है। सौन्दर्य-दर्शन के लिए पर्दों और घूंघटों का उघाड़ना अनिवार्य है।

शरीर को अपने अनुशासन में रखने के लिए हठ-योग है और मन की वैचारिक फुदफुदी पर नियंत्रण पाने के लिए मंत्र-योग है। जिनका शरीर पर नियंत्रण है और विचारों पर अनुशासन है, वे बिना आसन और मंत्र-साधना के भी योगी हैं। सत्य तो यह है कि जीवन के बाहरी और भीतरी परिवेश पर नियंत्रण करना ही जीवन-योग से मुलाकात है। जीवन-योग हर योग से ऊंचा है। राज-योग जीवन-योग से दो इंच ऊपर नहीं है। जीवन-योग को साधने के लिए राज योग है। विपश्यना या प्रेक्षा भी जीवन-योग के लिए है।

जीवन-योग का मतलब है उस तत्त्व से मिलन जो सिर्फव्यक्ति के जीते जी ही जीवित नहीं रहता, अपितु मृत्यु के बाद भी जिसका अन्त्येष्टि-संस्कार नहीं किया जा सकता। वह आत्म-तत्त्व ही जीवन योग का आधार है। मृत्यु के नाखून उसे खरोंच तक नहीं लगा पाते। मृत्यु सत्य नहीं, मृत्यु एक झूठ है। उसकी पहुंच चोलों के परिवर्तन तक सीमित है। मैं तो पार हूं मृत्यु की हर पैठ के।

शरीर, विचार और मन पदार्थ हैं, जबकि आत्माऊर्जा। अपनी ऊर्जा को अपने लिए समग्रता से उपयोग करना ही अन्तर-यात्रा है। इस यात्रा की शुरुआत है अपने आप से। मित्र! जरा पूछो स्वयं से—मैं कौन हूं?

मैं कौन हूं—यह मंत्र नहीं है, यह जिज्ञासा है। मैं अहंकार का प्रतीक नहीं है, बल्कि मैं उस संभावना को संबोधन है जिसकी मौलिकता जीवन के नखशिख तक जुड़ी है। जीवन की एकाग्रता अपनी समग्रता के कन्धे पर मैं से ही फली-फूली है। मैं अहंकार से होता है। जहां भाषा अन्तर-जीवन से मैं की परिभाषा पूछती है, वहां तो उल्टा अहंकार दुलत्ती मार खा बैठता है; किन्तु जहां अहंकार का मस्तक झुकता है वहीं स्वयं से स्वयं की मौलिकता पूछने का भाव जन्मता है।

'मैं' पार है—मेरे शरीर से, मेरे विचार से, मेरे मन से। अन्तर में आरोहण मन, वचन और शरीर की हर गतिविधि के पार है, इसलिए अपने आपको यह पूछना मैं कौन हूं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हत्तन्त्री के तार-तार में 'मैं कौन हूं' के मार्के का संगीत त्वरा से झंकृत करना अहम् से जन्मे 'मैं' को खुली चोट है। यह चोट जीवन के मौलिक 'मैं' की खोज का प्रयास है। अपने आप से पूछा जाने वाला यह प्रश्न चैतन्य-दर्शन के लिए अपनी जिज्ञासा को प्रकट करता है।

जीवन की देहलीज पर आत्म-जागरण का प्रहरी चौबीस घण्टे लगाना जरूरी है। साधना जीवन से अलग-थलग नहीं है। जीवन जीवन्तता का परिचय-पत्र है और जीवन्तता जागरण की सगी बहिन है। जागरण और जीवन्तता को आपसपुरी का व्यवहार बिना किसी नानुच के निभाना ही होता है। सोने का जागरण से कैसा संबंध! दुश्मन को तो दूर से ही सलामी अच्छी है। शरीर के द्वारा ली जाने वाली नींद तो शरीर का भोजन है, किन्तु अन्तःकरणं द्वारा ली जाने वाली उबासियां प्रमत्तता की पृष्ठभूमि है। समाधि तो जागती हुई नींद का नाम है। समाधि एक ऐसी निमग्नता है, जिसमें जगी हुई नींद के सिवा कुछ भी नहीं बचता।

समाधि को जीवन की परछाई बनाने के लिए हमें जागरूकता के साथ सम को जीवन का हृदय बनाना होगा। सम की जरूरत है जीवन में आने वाली प्रतिकूल परिस्थितियों में स्वयं को अनुद्विग्न और असन्तुलित होने से रोकने के लिए। सम का उपयोग है सन्तुलन के लिए।

जीवन की जमीन काफी उबड़-खाबड है। रोडों और भाटों की किलेबन्दी यहां कदम-कदम पर है। जीवन के मार्ग पर अवरोधक चिह्न आने नामुमकिन नहीं है, किन्तु उस अवरोधों से विचलित हुए बिना लक्ष्य की ओर बढ़ते चलना आत्म-संकल्पों के लिए साहसपूर्वक संघर्ष करना है।

जीवन में आने वाली हर सफलता और असफलता, अनुकूलता और प्रतिकूलता की दायीं-बायीं दिशाओं में स्वयं का अन्तर-संतुलन बनाये रखना ही समाधि की व्यावहारिकता है क्या तुमने नहीं देखा है बांस से बंधी रस्सियों पर नाच करते किसी कलाकार को? दायें-बायें के बीच सन्तुलन ही जीवन के रस्सी-नृत्य का आधार है।

इसलिए सम को जीवन का अभिन्न अंग बनाने वाला ही तनाव-मुक्त शान्ति-साम्राज्य में प्रवेश पाने का अधिकारी है। आखिर समाधि भी सम का ही विस्तार है। संवर भी सम से ही बना है। सम्यक्त्व और सम्बोधि भी सम की गोदी में ही किलकारियां भरते हैं। मन, वचन और काया की हर प्रवृत्ति के मध्य यदि सम को ही मध्यवर्ती बना दिया जाए, तो भौतिकता भी आध्यात्मिकता में लील जाएगी। मन, वचन, काया और कर्म का अन्तरात्मा से जगने वाला प्यार ही चैतन्य-दर्शन की प्राथमिक भूमिका है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाधि की छाँह में

पौ जन्म है, प्रभात बचपन है, दोपहर जवानी है, सन्ध्या बुढ़ापा है, रात मृत्यु है। जीनव एक बिना रुकी यात्रा है। पूर्व में उगा सूरज पश्चिम की ओर कदम-पर-कदम बढ़ाता है। हर कोई जीवन में कुछ-न-कुछ कमाता है, पैदा करता है। बांझ अभागा माना जाता है। बाहर का कमाया-जमाया यहीं धरा रह जाता है। अपने भीतरी जीवन में कुछ पैदा किये बिना चले जाना स्वयं का बांझपन नहीं तो और क्या है?

रात जीवन-कहानी का विराम है। सन्ध्या आ रही है। काल उपहास करे, उससे पहले सन्ध्या को सार्थक कर लेना सफेद बाल वालों की अनुभव-प्रौढ़ता है। जिन्दगी बहुत बीत चुकी है। शेष बची थोड़ी जिन्दगी के लिए भी आंख खुल जाये, तो लाखों पाये। यह जरूरी नहीं है कि जो काम पूरी जिन्दगी में नहीं होता, वह थोड़े समय में नहीं हो सकता। विद्यार्थी साल भर मेहनत कहां करता है! परीक्षा की घड़ी ज्यों-ज्यों करीब आती है, मानसिकता उसके मुताबिक तैयार होती चली जाती है। परीक्षा के दिनों में समय कम, पर लगन अधिक होती है। यह लगन ही सफलता की बुनियाद है।

व्यक्ति को अपने समय की दूसरे सभी कामों से थोड़ी-थोड़ी कटौती करनी चाहिये और घड़ी-दो-घड़ी का समय ध्यान में लगाना चाहिये। अन्तरशक्तियों के सम्पादन एवं जागरण के लिए रात को सोते समय और सुबह उठते समय ध्यान में स्वयं को सक्रिय अवश्य कर लेना चाहिये। घड़ी भर किये गये ध्यान का प्रभाव चौबीस घड़ियों तक तरंगित रहता है। दवा की एक गोली भी दिन भर स्वास्थ्य की लहरें फैला सकती है। जिसे एक बार ध्यान का रंग चढ़ गया, वह उतरना सहज नहीं है। दूध पीने के बाद भला समुन्दर के पानी को पीने की चाह कौन करेगा!

ध्यान इस धरती पर स्वर्णिम सूर्योदय है। ध्यान हमें सिखाता है घर आने की बात, नीड़ में लौटने की प्रक्रिया। चित्त परमाणुओं की ढेरी है। परमाणु जीवन-जीवी नहीं होते। ध्यान चित्त को चैतन्य बनाने की गुंजाइश है। लोग समझते हैं कि ध्यान मृत्यु है, वह हमें अपनी चित्तवृत्तियों को रोकना सिखाता है। जबकि ऐसा नहीं है। ध्यान से बढ़कर कोई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवन नहीं है। वह हमें रुकना या रोकना नहीं सिखाता, वरन् लौटना सिखाता है। वह तो यह प्रशिक्षण देता है कि इसमें गति करो। जितनी तेज रफ्तार पकड़ सको, उतनी तेज पकड़ लो। जब स्वयं में समा जाओगे, तो स्थितप्रज्ञ बन जाओगे। जहां अभी हम जाना चाहते हैं, वहां गये बिना ही सब कुछ जान लेंगे। उसकी आत्मा में प्रतिबिम्बित होगा सारा संसार। परछाई पड़ेगी संसार में हर क्रिया-कलाप की उसके घर में पड़े आईने में। यह असली जीवन है। यह वह जीनव है, जिसमें दौड़-धूप, दंगे-फसाद, आतंक-उग्रवाद की लूंए नहीं चलतीं। यहां तो होती है शान्ति, परम शान्ति, सदाबहार।

मन सक्रिय है। ध्यान मन की सक्रियता को हड़पता नहीं है। उसे निष्क्रिय करके शव नहीं बनाता, बल्कि चेतना के विभिन्न आयामों पर उसे विकसित करता चलता है। जिस मन के कमल की पंखुड़ियां अभी कीचड़ से कुछ-कुछ छू रही हैं, ध्यान उन्हें कीचड़ से निर्लिप्त करता है। सूरज की तरह उगाकर उसे अपने सहज स्वरूप में खिला देता है। यानी उसे वास्तविकता का सौरभ दे देता है। यह प्रक्रिया निष्क्रियता और जड़ता प्रदान करने की नहीं है। यह तो विकासशीलता का परिचय देती है।

नाभि में कुण्डलिनि सोयी है। उसे जागृत कर ध्यान चक्रों का भेदन करवाता है। जब व्यक्ति ध्यान के द्वारा चक्रों का भेदन करता है, तो वह नीचे से ऊपर की यात्रा करता है। यह ऊर्ध्वारोहण है, एवरेस्ट की चढ़ाई है। षड्चक्रों का भेदन वास्तव में षड्लेश्याओं का भेदन है। इन चक्रों के पार है वीतरागता, जहां साधक को सुनाई देता है ब्रह्मनाद, कैवल्य का मधुरिम संगीत।

ध्यान वस्तुतः आत्म-शक्ति की बैटरी को चार्ज करने का राजमार्ग है। अब यह हम पर निर्भर है कि हम उस बैटरी को कब चालू करें, कब उसका उपयोग करें और उसकी शक्तियों का लाभ लें। आज न केवल बाहरी खतरे बढ़े हैं, वरन् भीतरी खतरे भी बहुत बढ़-चढ़ गये हैं। सच्चाई तो यह है कि बाहर से भी ज्यादा भीतरी खतरे बढ़े हैं। इसलिए आज समस्याओं की पहेलियों को सुलझाने के लिए ध्यान अचूक है। हमें अधिक समय न मिले, तो दर-रोज सुबह चौबीस मिनट ध्यान अवश्य करें। शत्रुपक्ष की बातें छोड़ने की चेष्टा करें और अपने घर में सजी चीजों का आनंद लें। घर लौटने का रस पैदा होते ही मन की एकाग्रता सधेगी।

रस जगना जरूरी है। 'रसो वैसः' वह रस रूप है। अपना घर तभी अच्छा लगेगा, जब इसके प्रति रसमयता जगेगी। रसमयता मन की एकाग्रता की नींव है। पिएं हम रसमयता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के प्याले-पर-प्याले, जिससे सफल हो सके ध्यान, पा सकें हम ध्यान के जरिये अपने घर को, लक्ष्य को, मंजिल को।

स्वयं की एकरसता ही समाधि है। रसमयता का ही दूसरा नाम एकाग्रता है। मन की चंचलता रसमयता का अभाव है। जैसे पके हुए बाल एक लम्बे जीवन की दास्तान हैं, वैसे ही रस की परिपक्वता ध्यान की मंजी हुई कहानी है।

व्यक्ति का ध्यान के बिना कोई अस्तित्व नहीं है। ध्यान एक व्यभिचारी का भी हो सकता है। त्रासना और वासना से संबंधित बिन्दुओं पर वह एकाग्रचित्त रहता है। पर यह ध्यान अशुभ है। वह इसलिए, क्योंकि यह ध्यान उत्तेजना, विक्षोभ एवं आक्रोश को जन्म देता है। वह हिमालय का शिखर नहीं, अपितु सड़क का सांड है।

जो स्वयं को स्वयं की नजरों में आत्म-तृप्त और आह्लाद-पूर्ण कर दे, वही ध्यान शुभ है। यह बाहरी संघर्ष से पलायन नहीं है। ध्यान शक्ति भी देता है और शान्ति भी। शक्ति पुरुषार्थ को प्रोत्साहन है और शान्ति उसकी मंजिल। सुबह के समय किया जाने वाला ध्यान शक्ति के द्वार पर दस्तक है और संध्या के समय किया जाने वाला ध्यान शांति की ड्योढ़ी पर। सुबह तो रात भर सोयी-लेटी ऊर्जा का जागरण है। जबकि सन्ध्या दिन भर मेहनत-मजदूरी कर थकी-मांदी चेतना की पहचान है। सुबह अर्थात् सम्यक् बहाव और संध्या अर्थात् सम्यक् ध्यान। सुबह/शक्ति कुण्डलनी से चेतना के ऊर्ध्वारोहण की यात्रा की शुरुआत है। सन्ध्या/शान्ति उस यात्रा-यज्ञ की पूर्णाहुति है। शक्ति-जागरण के लिए पद्मासन, सिद्धासन, प्राणायाम भी सहायक-सलाहकार हैं और शान्ति-अभ्युदय के लिए शवासन, सुखासन भी अच्छे साझेदार हैं।

आसनपूर्वक ध्यान स्वास्थ्य-लाभ की पहल है। ध्यान के लिए शरीर का स्वस्थ रहना अपरिहार्य है। आसन इसीलिए किये जाते हैं। आसन का संबंध ध्यान से नहीं, अपितु शरीर से है। आसन एक तरह के व्यायाम के लिए है। भूख लगे, जीमा हुआ पचे, शरीर-शुद्धि हो, यही आसन की अन्तरकथा है। ध्यान शरीर-शुद्धि नहीं, बल्कि चित्त-शुद्धि है। ध्यान के लिए तो वही आसन सर्वोपरि है, जिस पर हम दो-तीन घंटे जमकर बैठ सकें।

स्वस्थ मन के मंच पर ही अध्यात्म के आसन की बिछावट होती है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए मन की निरोगिता आवश्यक है और मन की निरोगिता के लिए कषायों का उपवास उपादेय है। विषयों से स्वयं की निवृत्ति ही उपवास का सूत्रपात है। क्षमा, नम्रता और संतोष के द्वारा मन को स्वास्थ्य-लाभ प्रदान किया जा सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाधि स्वास्थ्य का विपक्ष नहीं है। यह शरीर को एकत्रित ऊर्जा देकर स्वास्थ्य-लाभ की दिशा में सहायिका बनती है। सांसों पर संयम करना, चित्त के बिखराव को रोकना और इन्द्रियों की अनर्गलता पर एड़ी देना— यही तो समाधि के खास हेतु हैं और आयु-वर्धन तथा जीवन-पोषण के लिए भी यही मजबूत सहारे हैं।

आसन शरीर का एकान्त कर्मयोग है। यह शरीर को श्रम का अभ्यासी बनाये रखने का दत्तचित्त उपक्रम है। जो तन्मयतापूर्वक काम करता है, वह कई तरह के साधनों को साध लेता है। अध्यात्म का अर्थ यह नहीं होता है कि सब कुछ काम छोड़-छाड़ दो। काम से जी-चुराना अध्यात्म नहीं है, अपितु काम को तन्मयता एवं जागरूकतापूर्वक करना अध्यात्म की जीवन्त अनुमोदना है। निष्क्रियता अध्यात्म की परिचय-पुस्तिका बनी भी कब! अध्यात्म का प्रवेश-द्वार तो अप्रमत्तता है। प्रमाद छोड़ कर दिलोजान से काम करते रहना इस कर्म-भूमि का महान् उद्योग है।

उद्योग अर्थात् उद् + योग=ऊंचा योग। उद्योग की बुनियाद श्रम है और श्रम करना ऊंचा योग है। अगर श्रम ठीक है, तो उद्योग करना कहां पाप है! यह तो जीवन की साधना का एक जरूरतमन्द पहलू है। अपनी मेहनत की रोटी खाना पौरुष का पसीना निकालना नहीं है, वरन् पसीने के नाम पर उसका उपयोग करते हुए, उसे जंग से दूर रखना है।

अपने हाथों से तन्मयतापूर्वक श्रम करना पापों से मुक्ति पाने का आसान तरीका है। दूसरों द्वारा कोई काम करने की बजाय स्वयं करना अधिक श्रेयस्कर है। खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते हर समय होश रखना स्वयं को गृहस्थ-सन्त के आसान पर जमाना है। ध्यान-योग की यही व्यावहारिकता है।

दिन संसार है; रात उससे आंख मुंदना है। दिन में अपनी वृत्ति फैलाओ, ताकि जीवन की गतिविधियां ठप्प न हो जाए और सांझ पड़ते-पड़ते सूर्यकिरणों की तरह उनका संवरण कर लो। यही चित्त का फैलाव और संकोच है। यदि रात को स्वप्न-मुक्त निद्रा भी ली, तो भी वह चित्त की एकाग्रता ही है। ध्यान का काम स्वप्न-मुक्त/निर्विकल्प चित्त का प्रबंध है। जब किसी आसन पर बैठे बिना ही बिना प्रयास किये ध्यान हो जाय, तो ही वह जीवन का इंकलाब है। जब ध्यान अभ्यास और सिद्धान्त से ऊपर जीवन का अभिन्न अंग बन जाये, तभी वह अन्तरमन में परमात्मा के अधिष्ठान का निमित्त बनता है।

स्वयं-के-द्वारा-स्वयं-में देखने की प्रक्रिया स्वच्छ ध्यान है। स्वयं से मुलाकात हो जाने का नाम ही आत्मयोग है। ध्यान है अन्तर्यात्रा। वह भीतर का बोध कराता है। मन का हर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संवेग वह सुनाता है। ध्यान के समय मन का भटकाव फिसलन नहीं है, अपितु अन्तरंग में दबे-जमे विचारों का प्रतिबिम्ब है। ध्यान अगर ऊपर-ऊपर होगा, तो वह ऊपर-ऊपर के विचार जतलाएगा। जो यह कहते हैं कि ध्यान के समय हमारा मन टिकता नहीं, वे ध्यान नहीं करते, वरन् ध्यान के नाम पर औपचारिकता निभा रहे हैं। ध्यान ज्यों-ज्यों गहरा होता जाएगा, त्यों-त्यों विचार भी गहरे होते जाएंगे। वे बड़े पके हुए और सधे हुए फल होंगे। समाधि के क्षणों में आने वाले विचार आत्म-ज्ञान की झंकार है। समाधिमय जीवन में उभरे विचार स्वयं की भगवत अभिव्यक्ति है।

समाधि समाधानों का केन्द्र है। समाधान तो हजारों किस्म के होते हैं, पर समाधि समाधानों-का-समाधान है। यह उत्तरों-का-उत्तर/अनुत्तर है। भला, जो जगमगाहट सूरज में है वह ग्रह-तारों में कहां से हो सकती है? उसकी उजियाली को बादल ढांक नहीं सकता। इसलिए समाधि अन्तर-व्यक्तित्व की विकास की समग्रता है। ध्यान इसमें मददगार है। अचेतन मन को राहत देना ध्यान की प्रफुल्लता है। रोजमर्रा की तनाव-भरी जिन्दगी में भी मानसिकता तथा प्रफुल्लता को अंकुरित करना ध्यान की मौलिक देन है।

ध्यान और समाधि कोई चमत्कार नहीं है। यह चित्त के साथ एकाग्रता तथा वास्तविकता की दोस्ती है। चमत्कार मायाजाल भी हो सकता है, पर समाधि बाजीगरी और मदारीगिरी नहीं हो सकती। चमत्कार हर आदमी नहीं कर सकता, पर समाधि हर आदमी पा सकता है। तन्द्रा टूटी कि समाधि की देहरी पर पांव रखा।

किसी ने मुझसे पूछा कि मंदिर में घण्ट क्यों बजाया जाता है? क्या भगवान को जगाने के लिए?

मैंने कहा, नहीं। मंदिर में घण्ट बजाया जाता है अपने आपको जगाने के लिए, स्वयं को तन्द्रा से उबारने के लिए। ताकि दुनिया-जहान के बिखराव और भटकाव को रोककर मंदिर में एकाग्रचित हो सके। मंदिर हमारी श्रद्धा का घर है। वह हमारे चित्त की एक उज्ज्वल भाव-दशा है। जहां चित्त शान्ति और समाधि का आलिंगन करे, वही मंदिर है। घण्टा भीतर के लिए जाग-घड़ी है। उसे सुनकर यदि खुद जग गये, तो खुदा जगा है। खुद भी न जगे, तो खुदा को क्या जगाओगे! वह जागृत के लिए जागृत और सुप्त के लिए सुप्त/लुप्त है।

ध्यान हमें भीतर से आठों पहर जगाए रखता है। वासना की तन्द्रा ध्यान-प्रहरी को आन्दोलित नहीं कर सकती। इन्सान जकड़ा है वासना के पंजों में। उसकी जड़ें गहराई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तक हैं। मन में जितनी गहरी वासना है, उतनी ही गहरी मुक्ति की भावना होगी, तभी पुनर्जन्म की जड़ उखड़ सकती है। जीवन का फूल सोये-सोये न मुरझा जाये, इसके लिए सावचेत रहना जीवन-कर्त्तव्य है। प्राप्त क्षण को बेहोशी में भुला बैठना वर्तमान को ठुकराना है। वर्तमान का अनुपश्यी ही अतीत के नाम पर भविष्य का सही इतिहास लिख पाता है। वर्तमान से हटकर केवल भूत-भविष्य के बीच जीवन को पैंडुलम की तरह चलाने वाला अधर में है।

वर्तमान जीवन की मौलिकता है। वह देह नहीं, वह प्राण है। कज्जल/धवल देह के भीतर पालखी मारे जमा है एक जीवन-साधक। उसे पहचानना ही जीवन की सच्चाइयों को भोगना है। वहां बिन बादल बरसात होती है, बिन टकराहट बिजली चमकती है। मूक है वहां भाषा/भाषण। अनुभव के झरने में आवाज नहीं, मात्र अमृत स्नान होता है। समाधि उस जीवन-साधक से साक्षात्कार है। यह स्थिति पाने के लिए हमें पार करने होंगे समाधि के चरणों को। समाधि मार्ग नहीं समाधि लक्ष्य है, मंजिल है।

समाधि के तीन चरण हैं— एकान्त, मौन और ध्यान। एकान्त संसार से दूरी है, मौन अभिव्यक्ति से मुक्ति है और ध्यान विचारों से निवृत्ति है। घर-भर के सभी सदस्य अपने-अपने काम से बाहर गए हुए हैं। हम घर में अकेले हैं। यह हमारे लिए एकान्त का अवसर है। कुछ समय के लिए घर भी गुफा के एकान्तवास का मजा दे सकता है। अभिव्यक्ति रुकी, तो दोस्ती-दुश्मनी के सामाजिक रिश्ते अधूरे/थमे रह गये। भला, गूंगों का कोई समाज/संबंध होता है। जब किसी से कुछ बोलना ही नहीं है तो विचार क्यों/ कैसे तरंगित होंगे। निर्विचार-ध्यान ही समाधि का प्रवेश द्वार है।

व्यक्ति रात-भर तो मौन का साधक बनता ही है, किन्तु वह सोये-सोये। दिन में नींद नहीं होती, जाग होती है, पर मन बड़बोला रहता है। अध्यात्म में प्रवेश के लिए एकान्त उपयोगी है और मौन भीड़ में भी अकेले रहने की कला है। जीवन में मौन अपना लेने से व्यावहारिक झगड़े तथा मुसीबतें भी कम हो जाएंगी।

मौन विचारों की शक्ति का ह्रास नहीं; अपितु उसका एकत्रीकरण है। भाषा आन्तरिक ऊर्जा को बाहर निकाल देती है, किन्तु मौन ऊर्जा-संचय का माध्यम है। बहिर्जगत से अन्तर्जगत में प्रवेश के लिए मौन द्वार है। स्वयं की नई शक्तियों का आविर्भाव करने के लिए मौन प्राथमिक भूमिका है। इसलिए मौन अपने आप में एक ध्यान-साधना है। यह वाणी-संयम का प्रहरी है, शक्ति-संचय करने वाला भण्डार है, सत्य को अनुक्षण बनाए रखने वाला मंत्र है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिसने मन, वचन और काया के द्वार बंद कर दिए हैं, वही सत्य का पारदर्शी और मेधावी साधक है। उसे इन द्वारों पर अप्रमत्त चौकी करनी होती है। उसकी आंखों की पुतलियां अन्तर्जगत के प्रवेश-द्वार पर टिकी रहती हैं। बहिर्जगत के अतिथि इसी द्वार से प्रवेश करते हैं। अयोग्य और अनचाहे अतिथि द्वार खटखटाते जरूर हैं, किन्तु वह तमाम दस्तकों के उत्तर नहीं देता, मात्र सच्चाई की दस्तक सुनता है। वह उन्हीं लोगों की अगवानी करता है, जिससे उसके अंतर-जगत का सम्मान और गौरव-वर्धन हो।

समाधि भीतर की अलमस्ती है। चेहरे पर दिखाई देने वाली चैतन्य की प्रसन्नता में इसे निहारा जा सकता है। यह किसी स्थान-विशेष, की महलनुमा सोनैय्या संरचना नहीं है, न ही कहीं का स्थानापति होना है, वरन् अन्तरंग की खुली आंखों में अनोखे आनंद की खुमार है। वह हार में भी मुस्कुराहट है, माटी में भी महल की जमावट है। समाधि शून्य में विराट् होने की पहल है। वासना-भरी प्यासी आंखों में शलाई घोंपने से समाधि रोशन नहीं होती, अपितु भीतर के सियासी आसमान की सारी बदलियां और धुंध हटने के बाद किरण बनकर उभरती है।

समाधि तो स्थिति है। वहां वृत्ति कहां! प्रवृत्ति की संभावना से नकारा नहीं जा सकता। वृत्ति का संबंध तो चित्त के साथ है जबकि समाधि का दर्शन चित्त के पर्दे को फाड़ देने के बाद होता है। चेतना का विहार तो चित्त के हर विकल्प के पार है। समाधि में जीने वाला सौ फीसदी अ-चित्त होता है, मगर अचेतन नहीं। चेतना तो वहां हरी-भरी रहती है। चेतना की हर संभावना समाधि की सन्धि से प्रवर्तित होती है। उसे यह स्मरण नहीं करना पड़ता कि मैं कौन हूं। उसके तो सारे प्रश्न डूब जाते हैं। जो होता है, वह मात्र उत्तरों के पदचिह्नों का अनुसरण होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

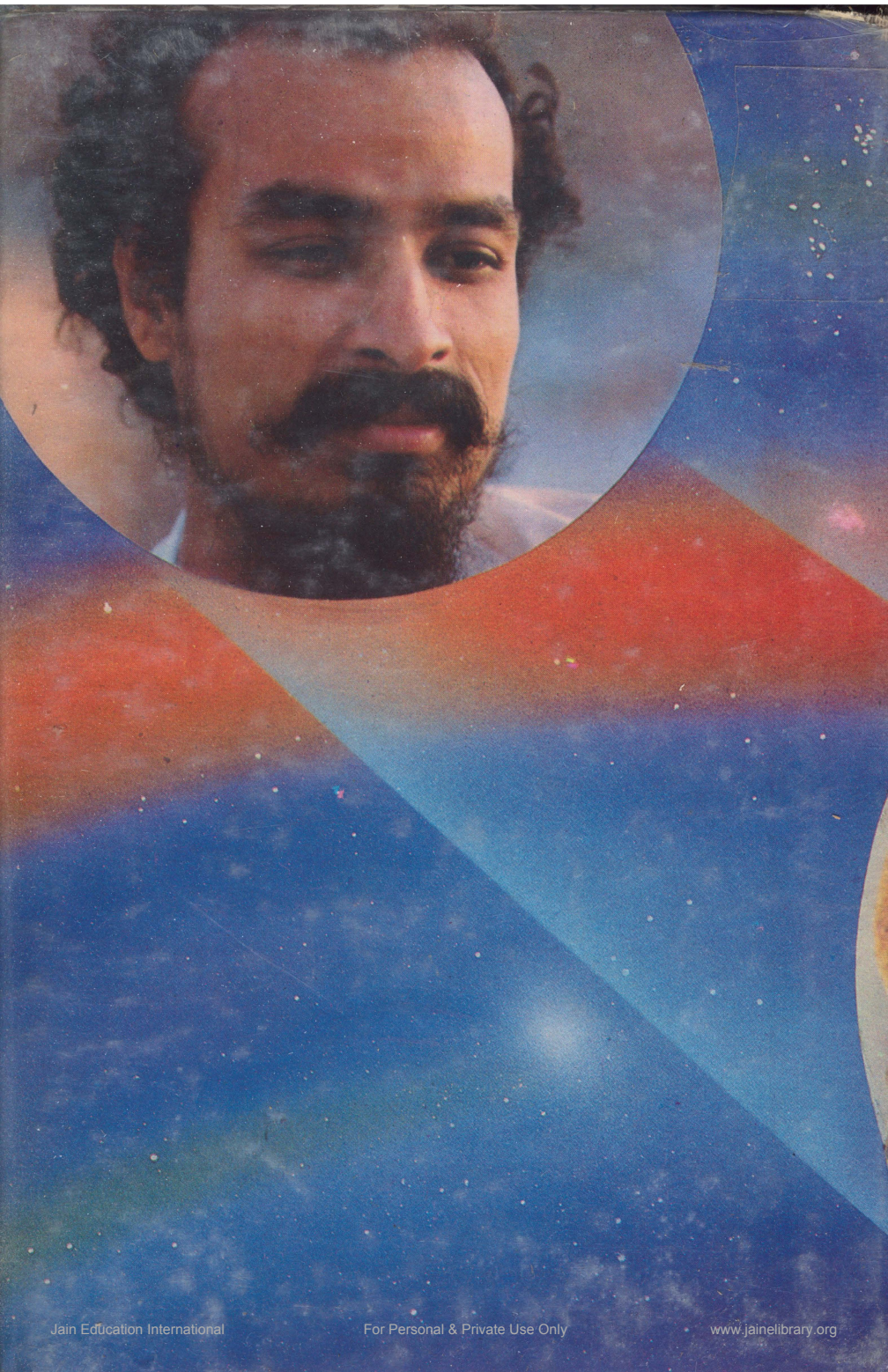

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org